क्या हो ? उस ससार का क्या हो ? धर्म धारण करता है। और उस धर्म को जो धारण करता है, वही साधु है, वही तपस्वी है, वही ऋषि है, वही महान है।

'अग्नि-पथ' एक कथा है—अगारो के पथ पर हँसती-मुस्कराती, विदेह बनकर चली चलने वाली एक ऐसी ही महान् आत्मा की, एक ऐसी ही तपस्विनी, विदुषी, परम साध्वी की। मुझे उनकी छाया मे, उनके चरणो के पीछे-पीछे एक-एक कदम रखते हुए आगे बढ़ते जाने का सौभाग्य मिला है। वह सौभाग्य आज मुझे भी उपलब्ध है और उसमे मुझे अपने जीवन की धन्यता की, जो अनिर्वचनीय अनुभूति होती है वह शब्दो मे कैसे प्रकट हो सकती है ?

और यह मार्ग तो सभी के लिए खुला है। ज्ञान और सत्य का यह सूर्य तो सभी को अपना प्रकाश मुक्त होकर प्रदान कर रहा है। प्रिय पाठक ! किसी दिन यदि गम्भीरता से विचार करेंगे तो आपके सामने एक ऐसा अद्भुत मार्ग खुलता हुआ दीख पडेगा, जो आपको अपने जीवन की अनन्त ऊँचाइयो तक ले जा सकेगा।

मैंने कहा, कि जीवन एक सग्राम है। देश, काल, परिस्थिति से तथा अपने ही भीतर स्थित अनेक राग-द्वेषो, कषायो और दुर्भावनाओ मे।

'अग्नि-पथ' जिस महान साध्वी के जीवन-सग्राम की कथा का एक अंग है, उन्हे मैं प्रणाम करती हूँ।

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन की मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिसने मुझे अपनी कृति को लिखने मे प्रेरणा दी तथा इसके प्रकाशन का भार भी अपने ऊपर लिया। आशा है, सहृदय पाठक भी मेरे उत्साह मे रही हुई भूलो को क्षमा करते हुए अति-उदारतापूर्वक इसे ग्रहण करेंगे।

—कमला जैन 'जीजी'

प्रकाशकीय

चरितोपन्यास 'अग्नि-पथ' अपने पाठको के कर-कमलो मे पहुँचाते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। बडे-बडे नीति ग्रन्थ जन-मानस को जो चीज नही दे सकते वह एक लघुकथा प्रदान कर देती है। सस्था के सदस्य महानुभावो की यह इच्छा थी कि स्मृति प्रकाशन से कुछ ऐसा साहित्य भी प्रकाशित हो, जो जीवन निर्माण के साथ-साथ मनोरजन भी करता हो। सस्था का उद्देश्य जन-कल्याणकारी साहित्य का प्रकाशन करना है, जो लोकोपयोगी भी हो। 'अग्नि-पथ' इन उद्देश्यो की पूर्ति करेगा। जहाँ यह मनोरजन की सामग्री प्रस्तुत करेगा, वहाँ यह जीवन को उन्नत बनाने का मार्ग भी प्रस्तुत करेगा।

'अग्नि-पथ' एक जैन साध्वी के जीवन चरित को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमे आपको दृढ आत्मबल के दर्शन होगे, साथ ही सुन्दर पारिवारिक चित्र भी देखने को मिलेगे।

आज का युग अल्पश्रम से अधिक सुख प्राप्त करने का युग है। हर व्यक्ति इसी प्रयास मे लगा है, किन्तु भौतिक सुख से सतोप नही मिलता। आत्मिक-सुख मिलने पर ही सन्तोष होता है। आत्मिक-सुख के लिए उत्तम ग्रन्थो का पठन आवश्यक है। कथानक युक्त ग्रन्थ बरबस मन को आकर्षित कर लेते हैं। 'अग्नि-पथ' भी

पाठको का मन अपनी ओर खीचेगा तथा जीवन को प्रशस्त बनाने का मार्ग प्रस्तुत करेगा।

इस पुस्तक के द्वारा स्मृति प्रकाशन कथासाहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र मे पदार्पण कर रहा है।

इसी भावना एव कामना के साथ कि इसके पठन मे आत्मोत्कर्ष हो, यह पुस्तक प्रेमी पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

निवेदक

पीपलिया बाजार
ब्यावर

सुगनचन्द कोठारी
मत्री
मुनि श्री हजारीमल, स्मृति प्रकाशन

द्वितीय संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक 'अग्नि-पथ' की रोचकता और उपयोगिता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जिस पाठक ने भी इसे पढा, वह भाव-विभोर हो गया, और दुबारा पढने को पुस्तक सभालकर रखने का प्रयास किया। कुछ ही समय मे इसका प्रथम सस्करण समाप्त हो गया और पुस्तक की मांग बराबर आती रही। अब नया द्वितीय सस्करण पॉकिट साइज मे पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है—

अमरचन्द मोदी
मत्री
मुनि श्री हजारीमल, स्मृति प्रकाशन

प्रस्तावना

सडक ने एक दिन मील के पत्थर से कहा—"तुम लोग मेरी अगल-बगल मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक चौकीदारो की तरह क्यो खडे हो ? मेरी रक्षा के लिए, या मुझे अपने दायरे मे बन्दी रखने के लिए ?"

मील का पत्थर सडक की भोली बात पर हँसा—"हम न तो तुम्हारी रक्षा के लिए है, न बन्दी बनाने के लिए, हम तो एक पैमाना मात्र हैं, आने-जाने वाले यात्रियो को मजिल का ज्ञान कराते रहे, ताकि वे हार-थक कर बैठ न रहे।"

'अग्नि-पथ' के पन्ने उलटते समय भी मुझे ऐसा ही कुछ अनुभव होने लगा। जीवन की लम्बी राह पर इसमे ऐसे कुछ पैमाने खडे किये गये है, मील के पत्थर लगाये गये हैं, जिनसे यात्री को मजिल का ज्ञान भी होता रहे, उसकी गति का अनुमान भी होता रहे। जीवन के हर मोड पर रुकने, विश्राम करने और आगे की यात्रा पथ पर बढने के लिए नया साहस एव स्फूर्ति सजोने के लिए इसमे एक ऐसी सामग्री सकलित हुई है जो वर्तमान जीवन-दर्शन को नया बोध देने मे सर्वथा सक्षम है। मैं उन्हे जीवन के सही पैमाने, अग्नि-पथ के प्रदीप कह सकता हूँ।

कभी कहानिया, नाटक और उपन्यास शिक्षा के लिए, उपदेश

देने के लिए या मनोरजन के लिए लिखी जाती थी, पर आज उनकी दिशा बदल गई है, उनका स्वर बदल गया है। आज की कहानी, उपन्यास और कविता मे जीवन की समस्याओ का रेखाचित्र उभर कर आता है। लेखक अपनी सूक्ष्म-दृष्टि से समाज की ज्वलन्त समस्याओ को परखता है, उन्हे उभार कर रखता है। वह शब्दहीन समस्याओ को स्वर देता है, अरूप कथाओ को रूप-रङ्ग देकर सजाता है। पाठक अपनी ही मूक मनोभावनाओ को मुखर होती देखता है और वह उस पर मुग्ध हो उठता है। पर, मै मानता हूँ, अनुभव करता हूँ, उपन्यास और कहानी को पढते हुए अपनी अन्तर समस्याओ मे खो जाने वाला पाठक, पुस्तक खत्म करने के बाद एक अपूर्णता, एक अतृप्ति का अनुभव करता रह जाता है। प्रश्नो की एक लम्बी उधेडबुन उसके हृदय को मथने लगती है, समस्याएँ उसे अपने मे उलझा लेती है, वह उत्तर खोजता है, समाधान टटोलता है, तब तक कहानी खत्म हो जाती है। आँखे निराश होकर पुस्तक पर से उठकर कही शून्य मे कुछ टटोलती रह जाती है।

वर्तमान कहानी, उपन्यास, नाटक और चित्रपट की सबसे बडी दयनीय स्थिति यही है कि वह समस्याओ को सुलझाते हुए स्वय समस्या बन जाता है। वह समस्याओ को कुरेद-कुरेद कर उघाडता है, पर उन पर समाधान का परिवेश डालने मे स्वय को असमर्थ पाता है।

'अग्नि-पथ' इस दिशा मे एक नया और स्वस्थ प्रयोग लगता है। जीवन की मूल समस्याएँ इसमे भी उभरी है, पर उनके साथ समाधान भी आया है। हर समस्या अपने साथ समाधान लेकर आई है, हर प्रेरणा अपने साथ दृष्टि लेकर आई है। इसका सत्य-कथ्य

सहज है, पर निरा सहज ही नही, उद्बोधक भी है। इस उपन्याम की सबसे बडी विशेषता मुझे यही लगी।

'अग्नि-पथ' की शैली उपन्यासिक है, पर इसकी कथावस्तु उपन्यासिक मात्र नही, वह एक जीया गया जीवन है, सत्य घटना है, एक तेजस्वी नारी के जीवन मे बीता हुआ सत्य है, इसलिए इसका महत्व उपन्यास से कुछ अधिक है, जीवन-चरित्र मे भी कुछ आगे चला गया है।

एक जैन साध्वी की जीवन घटनाओ को लेकर उसे इतने सरस, स्वाभाविक और उन्मुक्त हृदय से प्रस्तुत करना—वास्तव मे एक नया प्रयोग है। सम्भवत लेखिका का यह प्रथम प्रयोग होगा, पर प्रथम जैसा लगता नही है। इसकी शैली, सहजता और समस्या को गहराई से स्पर्श कर उसे समाधान की ओर ले जाना वास्तव मे शैली और चिन्तन की प्रौढता के सूचक हैं। साध्वी चरित्र वहन कमला 'जीजी' स्वय इस लेखन से आत्मतोष अनुभव करती है या नहीं, मैं नहीं कह सकता, पर इसे पढते समय मुझे अत्यन्त आत्म-तोष मिला, और मैं समझता हूँ पाठक भी ऐसा ही अनुभव करेगे

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रमणिका

१
हाथ क्यों बाँधे ?



मानव-जीवन एक महायात्रा है। किन्तु इस यात्रा का आदि और अन्त क्या है ? कोई भी तो जान नही सका इस सनातन रहस्य को। फिर भी मनुष्य को कही रुकना नही है, विराम नही लेना है और केवल चलते ही चले जाना है—आगे और आगे।

और कितना विचित्र है यह ससार ? कैसा अद्भुत, कैसी बहुरगी है यह लीला ? कल तक जहाँ सब कुछ था वहाँ आज कुछ भी नही, खुशियो से लबालब भरा हुआ सुख का सागर जहाँ लहराता था वहाँ आज हाहाकार करता हुआ मरुस्थल फैला है। कैसी आग, कैसी घुटन, कितनी पीडा होगी इस सूखी और जलती हुई रेत के विस्तार मे ? कौन इसे जाने ? कौन इसका हिसाब करे ?

फूल कितने सुन्दर होते है ? उनमे कैसी मधुर गध होती है ? उनकी पाखुरियाँ कितनी कोमल होती है ? जी चाहता है फूलो को गले से लगा लिया जाय।

किन्तु अगार ? दहकते हुए अगारो को छूने का मन किसका होता है ? किसमे वह शक्ति है कि जलते अगारो को अपने ओठो से लगाले ?

काल बली है। कर्म प्रबल है। खिले हुए फूलो पर जलता हुआ अगार गिरता है, तब सुख के स्वप्न जलकर राख हो जाते है।

तब परीक्षा का प्रारम्भ होता है—कडी परीक्षा, कठिन परीक्षा, महान मानव-जीवन की महायात्रा की एकमात्र पहली और अन्तिम परीक्षा।

विरले ही होते है जो इस परीक्षा का साहस के साथ सामना करते है। किन्तु जो पुरुषार्थी साहस के साथ इस परीक्षा को चुनौती दे बैठते है, वे विजयी होते है। ऐसे पुरुष-पुंगवो से महाकाल भी थर्रा उठता है और उन्हे मार्ग देकर एक ओर हट जाता है। तब काल पर मनुष्य का विजय-घोष होता है और वे कालजयी आत्माएँ समस्त सृष्टि के लिए शाश्वत आलोक-स्तम्भ बन जाती है।

विचित्र है ससार ! कल तक सभी कुछ होता है और आज कुछ भी नही रहता, शेष रहती है एक मुट्ठी भर राख। किन्तु कुछ लोग होते है, जो फूलो को गले लगाते हुए अगारो के पथ पर चलने के अभ्यासी होते है। ऐसे लोग उस राख की ढेरी मे से एक महान जीवन का निर्माण करते है। और विस्मित, विमुग्ध ससार उस पुनर्निर्माण की कथा कह उठता है—

"अरे ओ . . !"

"कौन है ऊपर ?"

"बोलता क्यो नही ? ऊपर झरोखे मे कौन है ?

"क्यो क्या बात है ? हम है यहाँ, ऊपर कोई काम है ?" जवाब आया और एक अति सुन्दर, ग्यारह वर्ष की कन्या ने झरोखे की खिडकी मे से झाका।

"हम है" युवक ने मुँह बिगाडते हुए कहा, "जरा इधर तो आओ नीचे।"

'अच्छा।" कहती हुई बालिका बडी शान से नीचे आर

कराहते हुए युवक के सामने निस्सकोच खडी हो गई। उसकी प्रत्येक गति से चपलता फूटी पडती थी।

युवक ने देखा यह तो बडी अल्हड-सी बालिका है जिसके हाथ थोडी देर पहले ही उसने हँसी-हँसी मे एक रस्सी के टुकडे से बाँध दिये थे। क्योकि वह रग से भरे हुए टब मे चूना उठा-उठा कर डाल रही थी। वह कन्या उसकी भाभी की बहन थी और भाभी के साथ ही आई थी। उसने बनावटी गुस्से से कहा—

"तुमने ऊपर से यह पत्थर क्यो फेंका ?"

"मेरी मर्जी ।"

"वाह री मर्जी तुम्हारी, मेरे घुटने मे लग गई न ! बताओ पत्थर क्यो फेंका ?"

"तुमने मेरे हाथ क्यो बाधे ? मुझे क्यो छुआ ?"

युवक ने चकित होते हुए हैरानी से कहा—

"क्या हो गया छू दिया तो ? मै कोई हरिजन हूँ क्या ?"

हरिजन नही हो तो क्या हुआ, मेरी मा ने कहा है कि— "किसी भी पुरुष को छूना नही चाहिए। अगर कोई लडकी किसी को छू ले तो ।"

"तो क्या ?" बालिका के मुँह की बात छीनते हुए युवक ने पूछा और बडी उत्सुकता से उस बालिका के चेहरे पर अपने नेत्र जमा दिये।

"तो वह उसका पति हो जाता है। अब तुम्ही बताओ मैं किसी और से शादी कैसे कर सकती हूँ ?"

युवक उस ग्यारह वर्ष की लावण्यवती कन्या उमा की ओर

बौखलाया-सा देखता रहा। बड़ी कठिनाई से उसके मुँह से शब्द निकले—

"तुम किसी और से शादी नही कर सकती ?"

"कैसे कर सकती हूँ, तुमने मुझे छू जो दिया। बार-बार क्यो उसी बात को पूछते हो, समझ मे नही आता क्या ?" बालिका ने गम्भीरता का नाटक करते हुए कहा, किन्तु उसकी अल्हड़ता वैसी ही थी।

युवक तो उस नन्ही-सी जान की यह गभीर बात सुनकर अभिभूत-सा खड़ा था। अपने-घुटने मे हो रहे दर्द को भी वह भूल गया। कुछ सोचकर उसने निश्चयपूर्ण स्वर मे कहा—

"अच्छा मुझसे तो हो सकती है न तुम्हारी शादी ?"

"हाँ, तुमसे तो हो सकती है।" बालिका ने बड़ी समझदारी से बाँये-दाँये दोनो तरफ एक-एक बार सिर को घुमाते हुए कहा।

"ठीक, तो मैं फिर तुमसे ही शादी कर लूँगा।"

"मुझसे कर लोगे ? शादी ? और उस काली लड़की का क्या होगा जिससे तुम्हारी सगाई हुए दो साल हो चुके है ? हमारे गाँव की ही तो लड़की है वह, क्यो जी ! पैसा देखकर ही सगाई कर ली क्या ? पैसा तो तुम भी कमा कर ला सकते थे।"

युवक पागल-सा हुआ जा रहा था। सोच रहा था कि क्या इसके मस्तिष्क मे पूर्व जन्म का कोई ज्ञान शेष है कि जिसके कारण इतनी-सी बच्ची इस तरह की बाते कह रही है।

उसने धीरे से कहा—"वह सम्बन्ध मैं तोड़ दूँगा।"

'वाह ! क्या कहोगे ? यह कि तुम काली हो इसलिए मैं

तुमसे शादी नही कर सकता ।" और यह कहते-कहते उमा खिला-खिलाकर हँस पडी ।

"मै उससे नही, अपने माता-पिता से कहूँगा कि वह लडकी मुझे पसद नही है ।"

"हाँ, यह ठीक है । तो अव मैं जाऊँ ? जीजी ढूंढ रही होगी मुझे । वडी देर हो गई ।" और वह चलने लगी ।

पर युवक ने उसका रास्ता रोकते हुए व्यग्रता से पूछा—

"तुमने मुझे तो वचनवद्ध कर लिया पर अपनी वात भी तो कहो ।"

"मै ? मैं क्या कहूँ, मैने तो तुम्हे अपना पति मान लिया न ।"

"तुमने तो मान लिया, पर तुम्हारे माता-पिता नही मानेगे तव ?"

"उन्हे मानना पडेगा । मैं कह दूँगी कि मै जीजी के देवर जी से शादी करूँगी और किसी से नही ।"

युवक को मानो अव भी विश्वास नही हो रहा था । उसने हिम्मत करके हौले से उसका हाथ अपने हाथ मे लेने का प्रयत्न किया और कहा—

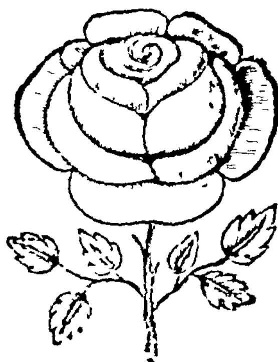
"उमा ! तुम अपनी वात पर दृढ रह सकोगी ? तुम्हारा वादा पक्का है ?"

"हांजी हां, पक्का ! विल्कुल पक्का ! क्या तुम्हे विश्वास नही होता ?"

"होता है ।"

"तो बस, अब मुझे जाने दो।" और उमा धीरे से अपना हाथ छुडाकर घर मे चली गई। इस बार युवक के छू देने पर उसने विरोध नही किया था।

भावुक युवक बडी देर तक वहाँ खडा-खडा कुछ सोचता रहा और फिर वहाँ से चल दिया।



२

माँ के बिना



उमा सिर्फ सात दिन की थी जब उसकी माता का देहान्त हो गया था। अपनी मासूम आँखो से वह माँ को पूरा देख भी नही पाई थी। पिता जगतनारायण अपनी सती साध्वी पत्नी को खोकर और सिर्फ सात दिन की दुधमुँही बच्ची की चिन्ता के कारण अर्धविक्षिप्त-से हो गये थे। किन्तु इस बडी भारी चिन्ता को उनकी भाभी ने दूर किया और उस बच्ची को माँ की तरह हृदय से लगाकर उसका पालन-पोषण करना शुरू किया। रुपये-पैसे की कमी नही थी। जगतनारायणजी के यहाँ लाखो की जमीन-जायदाद थी, बडा भारी कारोबार था। उस इलाके के राजा के वे दाहिने हाथ थे। बिना बन्दूक लिए और वर्दीधारी अर्दली के वे घर से बाहर नही निकलते थे। बडे ही तेज मिजाज के व्यक्ति थे। कहा जाता है कि एक बार अकाल के समय प्रजा की सहायता न करने के कारण वे राजा साहब को सिंहासन से पटक कर उनकी छाती पर चढ बैठे थे और तभी हटे थे जब उनसे सहायता का वचन ले लिया था। उसी समय उन्होने अपने पास का भी सब नकद रुपया और सोना प्रजाजनो मे बाँट दिया। परिणामस्वरूप घर मे बहुत लडाई-झगडा हुआ। भाई-भाभी के बुरा-भला कहने पर पत्नी को लेकर घर से बिना कुछ भी लिए निकल गये और ग्यारह वर्ष तक लौटकर नही आए।

इस प्रकार सात दिन मे उमा ने माँ को खोया और पिता से भी वर्षो दूर रही। किन्तु विधाता की लीला विचित्र होती है। इतना उतार-चढाव सिर पर से गुजर जाने पर भी उसके प्रति बडी माँ के लाड-प्यार मे कोई कमी नही आई। एक धाय और दूसरी गाय इन दो माताओ का उसके लिए इन्तजाम करके वह असीम स्नेहपूर्वक उमा का पालन करती रही। उमा की एक बडी बहिन सदा ननिहाल मे रहती थी। वह वही बडी हुई थी और उसका विवाह भी वही से हुआ था। उमा अत्यन्त बुद्धिमान और खुश मिजाज थी। मजाक करने मे तो वह गाँव की सब कन्याओ को मात करती थी। छोटा गाँव था अत सबके यहाँ उसका खूब आना-जाना था। रजवाडे मे भी वह प्राय जाया करती थी। राजमाता उसे बहुत प्यार करती थीं। उसके प्रफुल्ल व्यक्तित्व तथा सुन्दर स्वास्थ्य को देखकर कोई भी यह नही कह सकता था कि वह बिना माँ की लडकी होगी।

शैशव के दस वर्ष समाप्त होने और ग्यारहवे वर्ष मे प्रवेश करने पर वह अपने सुन्दर स्वास्थ्य के कारण तेरह-चौदह वर्ष की दिखाई देती थी। पुराने विचारो के होने के कारण उसकी बडी माँ व पिताजी ने उसके लिए योग्य वर की तलाश आरम्भ कर दी थी। उसकी असली माँ तो थी नही, बडी माँ के लिए, कितना भी हो आखिर वह एक पराई धरोहर ही थी, इसलिये योग्य वर ढूँढ-ढाँढ कर हाथ पीले करके वे निश्चिन्त हो जाना चाहते थे। □

३

बात की धनी

●

रामनारायणजी भोजन करने बैठ रहे थे । हाथ धोते हुए वे अपनी पत्नी से बोले—

"उमा कहाँ है ? दिखाई नही दे रही है ।"

"क्यो, खाना नही खाया जाएगा क्या उसके बिना ?"

"वाह ! खाना क्यो नही खाया जाएगा, खूब खाया जाएगा, मैंने तो यो ही पूछ लिया—दिखाई नही दी इसलिए ।"

"मैं जानती हूँ आपका यो ही पूछना ! लाडली बेटी के बिना गले मे कौर नीचे नही उतरता ।" गुणवती ने कहा ।

"लाड तुम करती हो ज्यादा या मैं ?"

"मैं ? मैं कहाँ करती हूँ उसे लाड ? कल ही तो मैंने उसे कितना डाँटा था ।"

"हाँ डाँटा था, पर इसलिए कि वह भरपेट खाना नही खा रही थी ।" और कहते-कहते ही वे तथा गुणवती दोनो ही हँस पडे ।

"अच्छा मजाक छोडो, और बताओ कि वे जन्म-पत्रियाँ जो मँगाई थी उनका क्या हुआ ?" गुणवती ने बडी उत्सुकता मे पूछा ।

"जन्म-पत्रियाँ मिलवाई थी । तीन जगह मिलती हैं । एक तो इन्दौर मे । वहाँ करदे क्या ?"

"नही, वह लडका साँवला और दुबला-सा है।"

"अच्छा रतलाम मे? वह लडका तो सुन्दर है और स्वस्थ भी।"

"वहाँ भी इच्छा नही होती।"

"क्यो?"

"उसकी माँ सौतेली है, सगी नही।"

"तो तुम क्या उमा की सगी माँ हो? तुम अपनी बेटी को इतना प्यार करती हो तो उसकी माँ अपने बेटे को नही कर सकती?" रामनारायणजी ने जरा परिहास करते हुए कहा। पर गुणवती गभीर हो आई थी, बोली—

"मेरी बात छोडो, मेरे क्या और कोई सतान है? एक ही तो यह लडकी मिली है। इसे भी प्यार नही करूँगी?"

"एक या अनेक सतान होने से फर्क नही पडता उमा की माँ! प्यार तो किसी को अपना समझने मे होता है। मै तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ।"

"तो तुम क्या उसके सगे बाप हो जो कृतज्ञता प्रदर्शित कर रहे हो?" अबकी बार गुणवती ने भी हँसते हुए कहा और दोनो फिर एक बार खिल-खिला पडे। पर हँसते-हँसते ही एकदम गुणवती उदास हो गई। उसने पूछा—

"लालाजी का पता मिला, आजकल कहाँ है?"

"हाँ पता तो है ही। इन्दौर मे है और किसी गाँव मे चौकीदारी करता है। मैने पता लगाकर घर आने के विषय मे कहलाया तो दो टूक जवाब भेज दिया कि यदि मुझे लेने आये तो यहाँ से भी चला जाऊँगा। वैसे कभी आ जाऊँगा, जब मेरी इच्छा होगी।

क्या बताऊँ, उस दिन मुझे न जाने क्या हो गया था जब मै बबुआ से लड पडा, सोना आदि दे देने के कारण।" रामनारायण बहुत ही उदास हो गये।

"तो तुम मुझे भेज दो।' गुणवती ने आजीजी करते हुए कहा, "मैं मना कर ले आऊँगी उन्हे। कम से कम बिटिया की शादी मे तो आ जाए।"

"तुम कहाँ जाओगी, मै ही कोशिश करूँगा।" कहते हुए राम-नारायण उठ ही रहे थे कि उमा दौड कर आई और अपनी बडी माँ के गले से लिपट गई—

"माँ भूख लगी है।"

"तू गई कहाँ थी पगली! तेरे दादा तो तुझे कब से याद कर रहे है, क्या ससुराल चली गई थी?"

"नही अभी तो रानी माँ के पास गई थी रजवाडे मे, पर ससुराल से भी तो अभी आई हूँ चार दिन हुए।"

"क्या ?"

"कहा तो, माँ ।"

"क्या कहा? पागल है। ससुराल तू अपनी गई थी या तेरी जीजी की ।"

"गई तो जीजी की ससुराल थी, पर अब वह मेरी भी हो गई।"

"तेरी हो गई? सो कैसे?" गुणवती को उमा की बात सुन-कर विस्मय हो रहा था। सोच रही थी कि यह लडकी भी कैसी हँसी करती है।

"माँ, वह जीजी के देवर है न · ?"

"कौन सुभाष· ?"

"नही, उनसे बडे।"

"चम्पकराम ? तो तू स्वय नाम क्यो नही लेती ?" अब गुणवती ने कुछ आशकित और चिन्तित होते हुए पूछा।

"हाँ, उन्होने मुझे छू दिया।"

"तो क्या हुआ छू दिया तो, पागल है। चल बैठ, मेरे साथ खाना खा ले।"

"नही माँ, पूरी बात सुन लो! मै एक दिन चूना उठा-उठा कर खूब बडे सारे रग के भरे हुए टब मे डाल रही थी तो उन्होने मेरे हाथ बाँध दिये।

"फिर क्या हुआ ?" गुणवती ने जल्दी से टालने की गरज से उससे पूछ लिया।

"फिर मैने ऊपर झरोखे मे जाकर एक बडा सारा पत्थर उठाकर ऊपर से पटक दिया। वह उनके घुटने मे लगा। उन्होने नाराज होकर इसका कारण पूछा तो मैने कह दिया कि तुमने मुझे छू क्यो दिया ? अब तो मैं किसी और से शादी कर ही नहीं सकती। मेरी माँ ने कहा है कि लडकी अपने पति के अलावा और किसी को भी नही छूती।"

"क्या कहा तूने क्या कहा ?" गुणवती ने आँखे फाड़ते हुए उसके दोनो हाथ पकड कर पूछा।

"यही तो कि मै अब किसी और से शादी नही कर सकती। उन्होने कहा—अच्छा, मुझसे ब्याह करना चाहती हो ? मैने कहा—हाँ ; तब उन्होने कहा "ठीक है, मै तुमसे ही शादी करूँगा।"

"तू क्या पागल हो गई है उमा ! उनकी तो सगाई हो भी चुकी है दो वर्ष हुए।"

"पर उन्होंने कहा था कि वे उस सगाई को तोड देगे। पक्का वायदा किया है।"

"किया है पक्का वायदा। यह क्या गुड्डे-गुडियो का खेल है ? तू ही ऐसी पुरखिन कैसे वन गई ?" गुणवती ने वहुत ही परेशान होते हुए कहा।

"कुछ भी हो मां ! होगा तो यही तुम देख लेना। मै और कही भी शादी नही करूँगी। तुमने ही तो मुझे शिक्षा दी है। और मैने उन्हे अपना पति मान लिया है। अगर ऐसा न हुआ तो…।"

"तो क्या होगा ?" गुणवती ने उसके मुँह की वात छीनते हुए क्रोध से कहा—

"तो क्या होगा, यह अभी तो मैं ठीक-ठीक नही वता सकती, पर अच्छा नही होगा यह निश्चित है।"

गुणवती खाना-पीना भूल गई और पति के पास दौडी। जाकर उसने हांफते-हांफते सारी वात कह सुनाई। सुनकर राम-नारायण वडे गभीर और परेशान हो गए। तुरन्त कुछ उत्तर नही दे सके। सोच-विचार कर पत्नी को शात करते हुए वोले—

"तुम घवराओ मत, मैं अभी तो कही और उसकी शादी तय कर नही रहा हूँ। कुछ दिन चुपचाप देखता हूँ। अगर सुभाषिणी के देवर की सगाई टूट जाएगी और उनके यहाँ से कोई सदेश आएगा तो सोचूंगा। लड़का अत्यन्त सुन्दर, स्वस्थ और समझदार है, करना भी पडे तो कोई दुख नही। पर हां, अपनी तरफ से ऐसी दुनिया से

उलटी बात नही कहलवाऊँगा। नही तो चार व्यक्ति मुझे ही बुरा-भला कहेगे।"

"पर उमा की माँ! बिटिया तुम्हारी, अपने बाप की तरह ही दृढ विचार की है। और फिर तुमने उसे दिन-रात जो शिक्षा दी है वह व्यर्थ नही जा सकती। हमारी उमा इतनी छोटी होने पर भी बहुत बडी है। बडी समझदार है। वह कोई काम ऐसा नही करेगी जिसके कारण तुम्हे दुख उठाना पडे। तुम जाओ, खाना खाओ और उसे भी खिला दो। वह सुखी होगी।"

"जाती हूँ।" कहती हुई गुणवती न जाने मन मे क्या-क्या सोचती हुई वहाँ से उठकर चल दी। □



४

पिता और पुत्र

"बाबूजी ।"

"हाँ ।"

"अब आपकी तबियत कैसी है ?"

"ठीक है बेटा, अब तो बिलकुल स्वस्थ हूँ, साधारण बुखार ही था । हाँ, जरा खाँसी ने परेशान कर दिया था ।"

"आपके दवा लेने का समय हो गया, दे दूं ?" चम्पक ने उठते हुए कहा ।

"दे दो । पर दवा अब दी नही जाती, बन्द कर देना ।" कहते हुए उन्होने चम्पक की लाई हुई दवा ली और बिस्तर पर लेट गये ।

चम्पक उनके पैरो के पास ही बैठ गया और आहिस्ते-आहिस्ते पिता के पैर सहलाने लगा । कुछ क्षणो की नीरवता के बाद उसने धीरे से कहा—

"बाबूजी ।"

"हाँ, क्या बात है ?"

"कुछ कहना चाहते हो ? कहो न ।" उत्तर न पाकर बाबू प्रतापनारायण ने कुछ आग्रह से पूछा । उन्हे अपने इस सुशील तथा

गुणवान बेटे पर बडा गर्व था। बडी तृप्ति से उसकी ओर देखते हु उन्होंने फिर कहा—

"क्या बात है, बोलो, रुपये-पैसे की जरूरत है ? न हो कुछ दिन घूम-घाम आओ, बहुत दिन से कही गए नही हो।"

"नही बाबूजी, वह बात नही है।"

"फिर ?" बडी उत्सुकता से अपने स्वस्थ पुत्र के सुन्दर चेहरे की ओर देखते हुए उन्होने फिर पूछा।

"बात यह है कि मैं वह सगाई छोडना चाहता हूँ।"

"क्यो ? सगाई हुए तो दो वर्ष हो गए। पिताजी ने यह सम्बन्ध किया है, वे नाराज हो जायेगे। और फिर ऐसे कामो मे बिना वजह कोई परिवर्तन किया जा सकता है ! जाओ खेलो, खाओ, खुश रहो। ऐसी बाते नही करते।"

"नही बाबूजी ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।" प्रताप ने बडी ही आजीजी से कहा।

"पर बात क्या है ? सगाई हो चुकी है। बीस हजार का जेवर भी उनके यहा जा चुका है, ना करने से तूफान मच जाएगा। जेवर तो जाएगा ही, मगर साथ ही साथ जबरदस्त बुराई और हो जायेगी। घर मे सब मेरे खिलाफ हो जायगे। पिताजी, भाई साहब आदि सबको मैं क्या कहूँगा ?" प्रतापनारायण ने कुछ खिन्न होते हुए कहा।

"कुछ भी हो बाबूजी, वह लडकी मुझे शुरू से ही पसन्द नही है। आप सभी यह जानते हैं। मुझ पर दबाव डालकर ही यह सम्बन्ध किया गया था। पर अब मैंने निश्चय कर लिया है कि [illegible]

से लिहाज के कारण मैं जीवन-भर के लिए दुखी होना नही चाहता ।"

"तो तू ही अपने दादाजी से जाकर कह ऐसी बात । मेरी तो पिताजी से बात करने की हिम्मत नही । कौन उनकी बुरी-भली सुनेगा । और फिर, उस सगाई को छोड देगा तो करेगा कहाँ ? स्वयवर रचाएगा क्या अपने लिए ?" अपने मौजी स्वभाव के कारण पुत्र से ही हँसी करते हुए प्रतापनारायण बोले ।

चम्पक हँस पडा और धीरे से बोला—

"नही, वह नई भाभी की बहिन है न ?"

"कौन उमा ? जो अभी तीन-चार दिन हुए गई है । वहू की बहन ? वह तो बडी ही प्यारी बच्ची है । कितनी चपल, हँसमुख ! दस-बारह दिन मे ही वह मुझसे बहुत हिलमिल गई थी । वही मुझे दवा दिया करती थी, रोज खाना खिलाती थी । सब तरह मेरी सेवा करती थी ।" और प्रतापनारायण को याद आ गया कि कितनी ही बार उन्होंने उसे देखकर सोचा था—काश ! यह मेरी बहू होती ! कितनी सुन्दर है वह । चेहरा कैसा चमकता है उसका । चार-छ दिन ही वह यहाँ रही थी पर, पर जैसे घरभर को उसने मुग्ध कर लिया । उसके लिये कहने पर तो पिताजी अवश्य मान जायेंगे । वह उनकी भी तो लकडी छिपा दिया करती थी रोज और कहती थी—दादाजी मेरे सिर पर हाथ रख लो, मै हूँ तुम्हारी—सहारे वाली लडकी । दादाजी हँसते हुए कहते थे—अरे, तू लडकी नही है वरन् वहू की बहन है—छोटी वहूरानी । और वह शरमाकर भाग जाया करती थी । कितना आकर्षण है उस नन्ही-सी बच्ची मे ! लगता है जैसे स्वर्ग से कोई देवी ही कन्या बनकर इस पृथ्वी पर आ गई हो ।

प्रतापनारायण की विचारधारा चलती ही रहती अगर चम्पक उसे भंग न कर देता।

"तो बाबूजी ।"

"हाँ हाँ, जा तू, मैं देख लूंगा।"

पिता से यह जवाब पाकर चम्पक आश्वस्त हो चल दिया। वह जानता था कि पिताजी एक बार किसी बात का निश्चय कर लेने पर उससे विमुख नहीं होते।



२

दुल्हन बदल गई

●

चम्पकराम का अनुमान सत्य था। उसके पिता ने चम्पक से हुई बाते अपने पिता तथा भाई से कही। दादाजी बहुत नाराज हुए। घर छोडकर चले जाने की धमकी भी दी। प्रतापनारायण को समझाया भी कि इससे हमारी शान मे भारी बट्टा लगेगा। दूसरे, सगाई पर जो आभूषण आदि भेजे जा चुके है वे भी नही मिलेगे, लडकी वालो से झगडा हो जाएगा, आदि।

प्रतापनारायण ने सब कुछ सुना पर फिर भी दृढ शब्दो मे अपनी बात को दोहराया और कहा कि सगाई छोड देने मे ही कुशल है अन्यथा चम्पक कुछ कर बैठेगा तो लेने के देने पड जायेगे। उससे कुल का नाम रोशन हो यह नही होगा, उलटी शान किरकिरी हो जायेगी।

अन्त मे बडी परेशानी और आशकाओ के बावजूद यही तय हुआ कि पिछली सगाई तोड दी जाय। हुआ भी वही। लडकी वालो ने जेवर तो नही दिया और ऊपर से अनेक प्रकार की धमकियाँ दी। बुरा-भला कहा, पर होनहार होकर रहा। चम्पक की सगाई वहा से छूटकर बडे भाई रमेश की ससुराल मे ही उमा से हो गई। वही उमा जिसकी सारी चपलता और अल्हडता के बावजूद भी सारा गांव उसे खूब प्यार करता था।

विवाह की घडी आई। किन्तु उसी उमा को विवाह के अवसर पर आँसू बहाते देखकर सभी परेशान थे। प्रत्येक दस्तूर के समय उसकी आँखें बरस पडती। बारात आई, और उमा की सारी सहेलियाँ सुन्दर दूल्हे को देखने के लिए भाग गई। एक रमा बची जो उसकी सबसे प्रिय सखी थी।

रमा ने उसे खुश करने के लिए बहुत प्रयत्न किये और उसे ऊपर ले जाना चाहा। किन्तु वह टस से मस न हुई। बडी हैरानी से रमा बोली—

"उमा, तूने भी अपनी पसन्द से शादी की है न ?"

"हाँ।" मानो बडी गहराई से आवाज आई हो।

"तो फिर तू खुश क्यो नही, आज तो बारात आई है।"

"खुश तो हूँ, बहन !"

"तो फिर चल, मैं तो छत पर वर राजा को देखने जा रही हूँ, तू भी चुपके से जालियो मे से देख लेना।"

उमा ने कोई उत्तर नही दिया तो रमा उससे लिपट गई और बोली—

"क्या हुआ है उमा तुझे ? मुझे भी नही बताएगी ?"

अब उमा फूट-फूट कर रो पडी और जब आवेग कुछ कम हुआ तो बोली—"रमा, मुझे बाबूजी की बहुत याद आ रही है। माँ तो सात दिन की छोडकर चल दी थी पर बाबूजी तो विद्यमान है। बचपन मे ही उनका स्नेह नही मिला और आज भी वे नहीं हैं। कैसी अभागी हूँ मैं, तू ही बता क्या इस अवसर पर मैं खुश रह सकती हूँ ? कोशिश तो बहुत करती हूँ मगर ।" उमा की शेष बात उसके मुँह मे ही रह गई और किसी के पुकारने की आवाज आई—

"रमा ! रमा ! उमा ! कहाँ हो तुम ?"

"क्या है धाय माँ ! इतना क्यो चिल्ला रही हो ?" रमा बोली। उमा की धाय माँ को उसकी सभी सखियाँ धाय माँ ही कहती थी।

"अरे बाबूजी आ गए। छोटे बाबूजी ..।"

"क्या कहा ? पिताजी ? पिताजी आ गए ?" उमा पागल की तरह उठी।

"हाँ। हाँ। वे आ रहे हैं, देखो !" लेकिन उमा तो दरवाजे के बाहर जा चुकी थी, कौन सुनता वहाँ ?

"बाबूजी, बाबूजी !" कहती हुई उमा विक्षिप्त की तरह अपने दस वर्ष से बिछडे हुए पिता के पैरो के पास गिर पडी। जगतनारायण ने अपने कांपते हुए हाथो से उसे उठा लिया और अपनी बेटी को हृदय से लगाकर उसके मस्तक पर हाथ फेरते रहे। पिता-पुत्री का यह अपूर्व मिलन देखकर सभी की आँखो मे आँसू आ गए, पर शीघ्र ही सब अपने-अपने को सभाल कर चल दिये। बारात दरवाजे पर आ चुकी थी।

उमा का मन नाच उठा। उसकी सारी उदासी व दुख कपूर की तरह उड गया। उसके हृदय मे खुशी का सागर लहराने लगा। चम्पक का मधुर व्यक्तित्व पुन उसके कल्पना-लोक मे उभर आया और दबी हुई प्रफुल्लता से उसका सुन्दर चेहरा अनेक गुनी आभा से चमकने लगा।

विवाह का आयोजन बडा शानदार रहा। दोनो ही पक्ष सम्पन्न थे अत किसी प्रकार के मनोमालिन्य की नौबत आ सके ऐसी सभावना ही नही थी। उमा के ससुर प्रतापनारायण अत्यन्त समझदार और दूरदर्शी थे। वर्षो से दूर रहने पर और विशेषकर विवाह के अवसर पर भी पिता के उपस्थित न होने से लडकी के मन की

क्या अवस्था होगी, इसका उन्होंने सहज ही अनुमान लगा लिया था। परिणामस्वरूप वे अपनी मोटर लेकर स्वय गए और अपने समधी जगतनारायणजी को मनाकर किसी प्रकार अपने साथ ले कर आए।

भाई को तो जगतनारायणजी इन्कार कर चुके थे किन्तु प्रताप-नारायणजी की बात को नही टाल सके और अपनी कन्या के विवाह पर उन्हे आकर सम्मिलित होना पडा। विवाह के समस्त अनुष्ठान उनके आ जाने से अनेक गुनी प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न हुए। भाई रामनारायण और भाभी गुणवती की खुशी का पार नही था। अजीब स्थिति थी उनकी। कभी तो उनकी आँखे भाई के आने की खुशी मे बरसती और कभी उमा के चले जाने के दु:ख से छलछला उठती।

विदा होने से पहले रानी माँ ने उमा को गढ मे बुलाया और अनेक कीमती वस्तुएँ उपहार मे दी। रानी कल्याणी उसे सचमुच ही बहुत प्यार करती थी। विदाई का दृश्य अपूर्व था। सारे गाँव के स्त्री-पुरुष छल-छलाती आँखो से उसे विदा करने आये थे। सबका आशीर्वाद लेकर नेत्रो मे आँसू और हृदय मे मधुर अरमान लिए हुए उमा अपनी ससुराल आ गई। वहाँ जिसने भी उसे देखा, सराहा। सभी की प्रसन्नता अनिर्वचनीय थी। 

६

भोली वधू



विवाह के बाद एक दिन चम्पकराम की भाभी ने उनके पास आकर कहा—

"लाला जी !"

"जी !"

"जी से काम नही चलेगा, निकालिए अपना बटुआ ! आज हमे मन चाहा इनाम मिलना चाहिए ।"

"भैया वो है उधर, उन्हे जरा खुश कर देना, मन चाहा इनाम मिल जाएगा ।" चम्पक ने भाभी सुभाषिणी से मजाक करते हुए उत्तर दिया ।

"रहने दीजिए अपने भैया को । उन्हे तो अपने कारोबार से ही फुरसत नही मिलती । मै तो आपसे मांग रही हूँ, मेरा अधिकार है ।"

"पर मै गरीब तुम्हे क्या दूंगा भाभी ! तिजोरी की चाबी तो उधर ही है भैया के पास, जरा ले आओ न जाकर, फिर देखना क्या इनाम देता हूँ तुमको ।"

"कुछ नही चाहिए हमे, रहने दीजिये । इनाम मांगा तो लगे बाते बनाने ।" सुभाषिणी ने कृत्रिम क्रोध करते हुए मुंह फेर लिया ।

"अच्छा, अच्छा । नाराज मत होओ भाभी ! बन्दा हाजिर है,

मैंने तो सिर्फ इसलिए अर्ज की थी कि कई दिन हो गए इस शादी की झझट मे भैया थक गए होगे जरा दो बोल बोलकर ···· खैर जाने दीजिये, अभी आपकी इच्छा नही है तो। फरमाइये किस बात का इनाम दूं ?"

"वाह कितना परिश्रम किया है आपकी शादी मे हमने, पहले तो उस सूर्पनखा से पीछा छुडवाया और फिर ।"

"मेनका का पीछा किया।" चम्पक ने भाभी की बात काटते हुए कहा।

"मजाक नही लाला जी! सचमुच ही वह लडकी कुरूप तो है ही, उसके अलावा बडी मुंहफट और झगडालू भी है।"

"कौन तुम्हारी बहन उमा ?" चम्पक ने फिर भाभी की बात काटते हुए उसे चिढाया।

सुभाषिणी खिलखिलाकर हँस पडी। हँसते-हँसते बोली—"हाँ मेरी बहन ही तो, अभी जाकर देख लेना। मन के लड्डू फोडते रहे हो अब तक, अब आटे-दाल का भाव मालूम होगा।"

"पता है, पता है, मुझे भी। यह देखो पत्थर पटककर घुटना फोट दिया था, निशान अब भी है।"

देवर-भाभी हँस पडे। भाभी ने कहा—

"अच्छा लाला जी, अब जाइये, बहुत देर हो गई, मन ही मन गालियाँ दे रहे होंगे।"

"कौन भैया ?" चम्पक ने फिर बाजी उलटने की कोशिश की।

"आपके भैया नहीं, आप। मन मे सोच रहे होंगे कि कितनी

देर कर दी। प्रतीक्षा असह्य हो रही होगी। पर उमा तो सो गई है, बच्ची है न! मुझसे तो सात वर्ष छोटी है। घबरा गई इन सब झझटो के कारण। और अब अधिक परेशान मत करना अच्छा! मैं तो चलती हूँ अब।"

"अरे, अरे, ठहरो तो भाभी! एक काम है।"

"क्या ?"

"यह लो।" चम्पक ने अपनी जेबमे से दो अत्यन्त सुन्दर और एकसी मालाएँ निकाली और उनमे से एक अपनी भाभी को देकर बोला—

"यह माला एक आदमी गिरवी रख गया है, भैया की तिजोरी मे रखवा देना।"

गिरवी के बहाने देवर से इतना सुन्दर इनाम पाकर सुभाषिणी बहुत प्रसन्न हुई और मुस्कराते हुए बोली—

"और वह दूसरी माला ?"

"यह तो मैंने बनवाई है गिरवी रखने के लिए।"

सुभाषिणी ने हँसते हुए चुटकी ली—खोटी तो नही है ? आपका साहूकार बडा तेज है, खरे-खोटे की पहचान बडी जबर्दस्त है उसकी, घर पर अब जाइये, देर मत कीजिये, वह है उधर दरवाजा।" कहते हुए सुभाषिणी ने अपने देवर के कधे पकड कर उसका मुंह कमरे की तरफ कर दिया। और स्वय चल दी।

अपूर्व प्रसन्नता और उमग भरे हृदय से चम्पक अपने कमरे की ओर बढा। अनेक नवीन कल्पनाओ से उसका मन उद्वेलित हो रहा था। सोच रहा था कितनी परेशानियो के बाद वह उमा को पा सका है। इस अल्प अवस्था मे ही उसका तन और मन कितना

सुन्दर है। सब कहते है वह अत्यन्त चपल और हँसमुख है, पर मुझे तो ऐसा नही लगा। लेकिन उसकी विचारधारा थोडा-सा आगे बढते ही भग हो गई क्योकि सामने ही कमरे का दरवाजा था। उछलते हुए हृदय से उसने दरवाजा खोला। पर खोलते ही स्तब्ध रह गया। वहाँ कोई नही था। उसे याद आया कि भाभी ने तो कहा था वह थक जाने के कारण सो गई है। अचानक ही उसकी दृष्टि कमरे के अन्दर की छोटी-सी कोठरी पर पडी। उसका दरवाजा अन्दर से बन्द था। वह समझ गया कि उमा उसके अन्दर है।

कोठरी मे एक छोटे से रोशनदान के अलावा हवा के प्रवेश का और कोई रास्ता नही था। अत चम्पक यह सोचकर घबरा गया कि अन्दर बैठी हुई उमा का दम घुट रहा होगा। दौडकर वह कोठरी के समीप पहुँचा और दरवाजा खट-खटाते हुए पुकारा—

"उमा ! दरवाजा खोलो।"

"दरवाजा खोलो उमा ! तबियत घबरा जाएगी, पागलपन मत करो। बाहर आओ, देखो मैं तुम्हारे लिए कितनी सुन्दर चीज लाया हूँ।"

कोई उत्तर न पा चम्पक निराश हो गया। पर कुछ विचार-कर बोला—

"ठीक है जैसी तुम्हारी मर्जी, मै तो सोता हूँ, बडे जोर से नीद आ रही है।" और वह जाकर बिस्तर पर लेट गया। नीद न आने पर भी सो जाने का बहाना करने लगा। उसका अनुमान था कि मुझे सोया हुआ जानने के बाद ही उमा बाहर निकलेगी। हुआ भी यही। करीब आधा घण्टे बाद दरवाजा धीरे से खुला।

चम्पक जाग ही रहा था। आहट पाकर वह चौकन्ना हो गया।

अधखुली आंखो से देखता रहा, बोला कुछ नही। मन-ही-मन उसे वडी हँसी आई यह देखकर कि उमा ने पैरो की बजने वाली पैंजनियाँ अपने दाहिने हाथ मे ले रखी है और बाएँ हाथ से जरीदार लहँगे को थाम लिया है। चम्पक की ओर देखती हुई उमा दवे पाँव आगे वढी और कमरे के दरवाजे को धीरे से खोला। आश्चर्य मे डूबा हुआ चम्पक सोच ही नही पाया कि वह क्या करे, पर उमा के वाहर निकलते ही तुरन्त उठ कर खडा हो गया। और दरवाजे पर आकर देखने लगा।

अँधेरे मे उमा चुपचाप आगे बढ रही थी पर दस-बारह कदम ही गई होगी कि उसका एक पैर किसी छोटे से गड्ढे मे जा पडा। शायद ऊखल थी वह। चम्पक हैरान होकर आगे वढने वाला ही था कि उसकी दृष्टि फिर आगे की ओर चलती हुई उमा पर जा पडी। ऊखल मे से पैर निकाल कर वह रवाना हुई पर थोडा-सा जाते ही एक वडी सी भट्टी मे जिसमे शादी से पहले मिठाइयाँ वनी थी, गिर पडी।

चम्पक अव एक क्षण का भी विलम्ब न करके दौडा और अपनी नवविवाहिता रूपसी पत्नी को फूल की तरह गोद मे उठाकर कमरे मे ले आया। उमा ने कोई विरोध नही किया, वह मुस्करा रही थी। चम्पक ने गहरे स्नेह से उसके ललाट को चूम लिया और उसे पलग पर बैठा दिया बोला—

"वडी पगली हो तुम।"

"कौन कहता है ?" उमा ने चट से प्रश्न किया।

"मै कहता हूँ।"

"तुम तो झूठ बोलते हो।" उमा निस्सकोच बोली।

"वाह, झूठ कैसे, सच तो कहा है।"

"नही! सारा गाँव कहता है कि तेरह वर्ष की होने पर भी मैं अठारह साल की दिखती हूँ और अकल तो मुझ मे बीस वर्ष की लडकी के जितनी है।"

"हाँ, यह तो मैं भी मानता हूँ उमा कि तुम बहुत ही होशियार और समझदार हो। पर इतनी समझदार होकर भी तुम दबे पाँव भाग कहाँ रही थी, बताओ?"

"जीजी के पास।"

"क्यो?"

"नीद आ रही थी मुझे।"

"तो यही सो जाती, तुम्हारा ही तो है यह कमरा, मैंने मना किया था क्या सोने को?"

"मना तो नही किया, पर हमे शरम आती है।" उमा ने कुछ सकुचाते हुए कहा।

"चम्पक उसके भोलेपन पर मुस्करा दिया। बोला—

"अच्छा उमा! तुम मुझे अपने गाँव की बाते सुनाओगी? मै सुनूंगा।"

"सच?" उमा का चेहरा चमक उठा। वह जल्दी-जल्दी बोली—"किसकी बातें बताऊँ? सहेली की रानी माँ की, काली गाय, धाय माँ या अपने तोते की! किसकी बाते सुनाऊ?"

चम्पक उसके उतावलेपन पर हँस पड़ा। बोला—

"आज तो तुम अपनी रानी माँ के बारे मे बताओ। कल सहेली के बारे मे और परसों ।"

"अरे, तो अब सुनोगे भी या आज, कल और परसो ही करते रहोगे, सुनो न जल्दी।"

"अरे बाप रे, गलती हो गई। एक बार माफ कर दो अब नही बोलूंगा।" कहते हुए चम्पक का हृदय खुशी के मारे झूम उठा। उसने धीरे से अपनी बालिका वधू के कोमल और कमनीय हाथो को अपने हाथो मे ले लिया और बडी एकाग्रता से सुनने का नाटक किया।

उमा बड़े उत्साह से गढ की और रानी माँ की बाते बता चली। वे उसे बहुत ही प्यार करती है। कभी कोई खास अवसर हो तो पहले ही उसे बुला लेती है। उनके यहाँ रोज जाना पडता है, नही तो बहुत नाराज होती है, बोलती नही, और उसे बडी मुश्किल से उनके गले मे बाँहे डालकर मनाना पडता है। प्रतिज्ञा भी करनी पडती है कि अब रोज आऊँगी। गढ के झूले बडे शानदार हैं, वह खूब झूलती है। आदि आदि ...।

चम्पक मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर निहारता हुआ सब बाते सुनता रहा। पर जब उसने देखा कि उमा की पलकें नीद के मारे बोझिल हो रही है तो धीरे से उसने उसे शैय्या पर लिटा दिया।

"उमा ने विरोध नही किया, बोली—

"बस अब कल सुन लेना, मुझे बहुत जोर से नीद आ रही है।"

"तो सो जाओ।"

"अच्छा।" कहकर वह पति के वक्ष मे निस्सकोच मुंह छिपाकर दो मिनट मे ही सो गई। और भूल गई कि अभी थोडी देर पहले ही तो उसने कहा था, "हमे शरम आती है।" □



कसा छकाया ?

●

"ए हरिया !"

"क्या है बहू जी ?"

"देख, आज एक काम करेगा ?" उमा बोली ।

"क्यों नही करूँगा, मैं यहाँ हूँ किसलिये ? आप बताओ तो सही ! बारह साल का हूँ तो क्या हुआ, बडों-बडों के कान काटता हूँ ।"

"शाबाश, अच्छा तो देख, ले ये कपडे पहन ले और सब जेवर भी ।" उमा मुस्कुराहट दबाती हुई बोली ।

बेचारा हरिया भौंचक्का रह गया । सोचने लगा—यह भी कोई काम है । उसने घबराकर कहा—

"नहीं नहीं, यह क्या ? यह तो आपके कपडे और गहने हैं । मैं लडका हूँ इन्हें कैसे पहनूं ? ये सब आप पेटी में रख दीजिये बहूजी ! कपडे तो मेरे ही ठीक हैं । कपडों का क्या, उनसे शान थोडे ही घटती-बढती है, अक्ल चाहिये सिर्फ ।"

बीच में ही उसकी बात काटते हुए उमा ने कहा—"सुन तो तू । अपनी ही कहे जा रहा है ।" देख आज तेरे छोटे बाबू तो यहाँ हैं नहीं गाँव गये हैं ।"

"हाँ तो क्या हुआ ?" भोले हरिया ने पूछा ।

"तू यही सो जा बाबूजी के कमरे मे, मुझे डर लगता है। तू यहाँ सो जाना, मैं इसके पास वाले कमरे मे सो जाऊँगी।"

"हाँ तो इसमे कौन बडी बात है बहूजी! मै तो रोज ही यही रहता हूँ, कही भी सो जाता हूँ। पर ये कपडे आप रख दो, मै क्या लडकी हूँ ?"

"नही रे! देख, अगर तू ऐसे सोएगा तो बाबूजी कहेगे कौन है यहाँ, और तू ये कपडे पहन लेगा तो मै कह दूंगी कि मेरी सहेली है।"

"नही बहूजी! आप कह देना कि हरिया है। मुझे यह सब अच्छा नही लगता।"

"देख पाँच रुपये दूंगी तुझे। एक दिन का तो काम ही है, तेरा क्या बिगडता है ?"

पाँच रुपये के नाम से गरीब हरिया के मुँह मे पानी आ गया। उसने सोचा—ओह! पाँच रुपये मे कितनी सारी चीजे आ जायेगी। लड्डू, डोरी, पतग, अच्छे जूते और बचे हुए पैसो की वह चाट-पकौडो खाएगा। आह—अभी सवेरा हो जाता तो कितना अच्छा रहता।

हरिया को चुप देखकर उमा समझ गई कि युक्ति काम कर गई। उसने कपडे दे दिये और वह जाकर पहन आया। कुछ गहने भी उसे उमा ने पहना दिये। रेशमी लहँगे ओढनी मे हरिया लडकी बना अपने आपको निरखता ही रहा। उमा ने कहा—

"अच्छा जा, रात काफी हो गई, तू जाकर छोटे बाबूजी के पलग पर ही आराम से सो जा।"

"नही नही, मै तो जमीन पर ही सोऊँगा।"

"वाह ! मेरी सहेली नीचे कैसे सोएगी ? कपडे नहीं खराब हो जाएँगे उसके ? तू है कैसा हरिया ?"

बुद्धू हरिया फिर क्या कहता ? सोचने लगा—आज वह कितने आनन्द से हाथ भर भीतर धँस जाने वाले पलग पर सोएगा । सोचता-सोचता वह चला गया और सवेरा होते ही पाँच रुपये पाने और मनचाही चीजे खरीदने के स्वप्न देखने लगा ।

उधर उमा खूब खुश होती हुई बगल वाले कमरे मे जाकर लेट गई । सोचने लगी—कैसा आनन्द आएगा जब श्रीमानजी कमरे मे घुसेगे । आहा, आहा, क्या कहेगे वह हरिया को देखकर । उस अनुपम दृश्य की कल्पना कर वह खुद ही ताली पीटकर हँसने लगी, खूब हँसी और फिर चुपचाप पति के आने की प्रतीक्षा करने लगी । उसके मजाकिया कामो मे एक की वृद्धि और हो गई । घर मे किसी से भी हँसी करने मे वह चूकती नही थी । पर फिर भी सब उससे खुश रहते थे और उसे प्यार करते थे । सबसे ज्यादा प्यार उसके ससुर का था ।

यथासमय चम्पक गाँव से लौटा और कुछ देर नीचे बैठक मे पिता को अपने कार्य की जानकारी कराकर ऊपर अपने कमरे मे आया । उमा साँस रोके हुए किवाडो की सध मे से सब देख रही थी । चम्पक कमरे मे घुसते ही चौंका । सोचने लगा, शादी को एक वर्ष होने आया पर आज तक कभी भी उसने अपने आने से पहले उमा को पलग पर सोए हुए नही देखा । सदा जागती हुई या जमीन पर सोती हुई ही मिलती है । आज क्या कारण है ? वह आशकित हुआ कि कहीं उसकी तबियत खराब तो नही हो गई । वह एकदम पलग के पास गया और उस पर बैठकर उमा के हाथ को अपने हाथ मे लेने की कोशिश करते हुए बोला—

"उमा, क्या बात है आज ..।"

पर बात उसके मुंह मे ही रह गई और जैसे विजली का करण्ट लग गया हो। वह चौंककर खडा हो गया गरीब हरिया को पलग पर से खीचकर उसने नीचे खडा कर दिया और तडाक से एक चाँटा उसके गाल पर लगाते हुए बोला—

"नालायक, तेरी यह हिम्मत ?" बेचारे हरिया की नीद उड भी नही पाई और पाँचो अगुलियो के निशान लिये वह रोता हुआ बाहर निकल गया।

उमा अब तक कमरे के दरवाजे से चिपकी खडी थी और हँसी पर काबू पाने का प्रयत्न कर रही थी। पर हरिया के गाल पर चाँटा पडते ही वह भी रसोईघर की ओर भागी तथा चम्पक के लिये खाना परोसने लगी।

चम्पक का दिमाग भन्ना गया था, पर कुछ ही देर मे उसका क्रोध असली न रहकर नकली बन गया। वह सोच रहा था कितनी शैतान है उमा। रोज कुछ न कुछ उपद्रव करती ही रहती है। आफत का परनला है, पर नसीब कैसा लेकर आयी है कि कोई इससे नाराज भी तो नही होता। सबसे अधिक तो पिताजी ने इसे सिर पर चढा रखा है। कुछ कहते ही शुरू कर देते है "मेरी बहूरानी लक्ष्मी है , मैं जानता हूँ इस लक्ष्मी को ।" चम्पक सोचता ही रहता कुछ न कुछ, अगर समीप ही रखी टेबिल पर उमा के द्वारा थाली रखने की आवाज न आई होती।

"लो खाना खालो।" उमा ने दबी हुई मुस्कुराहट चेहरे पर लिए हुए कहा।

"भूख नही है।"

"क्यो नही है भूख ?"

"नही है वस, कोई जवर्दस्ती है क्या ? मुझे तुम्हारे ये वाहियात मजाक पसन्द नही है।"

"तो मैंने क्या किया ? बुरा तो किया आपने, इतनी जोर से क्यो मारा विचारे को ? मैंने तो उसे पाँच रुपये दिये थे, और सोच रही थी आहा, मेरे गहने-कपडे पहने हुए आपको कैसा लगेगा वह, और आप ऐसे हे कि वस ।"

"तो पाँच रुपये उसे वैसे ही दे दिये होते । गनगोर किसलिये वनाया था ?" पाँच रुपये देने की बात सुनकर चम्पक का गुस्सा कुछ ठडा पड गया था ।

"यो ही देने से फिर जव-तव लेने की उसकी आदत पड जाती न !"

"वाह ! तो उससे यह काम कराया था ?" कहते-कहते चम्पक हँस पडा । उमा भी खिलखिला उठी ।

"खाना खाओ न, ठण्डा हो रहा है ।"

चम्पक ने कौर तोडा पर अचानक ही कुछ ध्यान आते ही पूछ बैठा—

"तुमने खा लिया ?"

"अभी कहाँ, आप तो अभी झगड ही रहे है ।" वह रूठकर बोली ।

"उमा ! मैंने तुमसे कितनी वार कहा है कि तुम खा लिया करो । मुझे प्राय देर हो जाती है आने मे ।"

"पर, मैं पहले कैसे, भला तो है ही नहीं ।"

चम्पक इस बात को खूब अच्छी तरह जानता था कि उमा

लौटकर आने तक वह एक ग्रास भी मुंह मे नही डालती। चाहे कितनी भी रात क्यो न चली जाए। उसने इतनी देर के कारण मन ही मन पश्चात्ताप किया और एक गुलाबजामुन उठाकर जबर्दस्ती उमा के मुंह मे ठूंस दिया। उमा परेशान होते हुए बोली—

"हटो। मुझे भी तुम्हारे ये वाहियात मजाक पसन्द नही।"

पर चम्पक माना नही। उसने अपने साथ ही अपनी वधू को खिलाया, छोडा नही।



८

नहीं जाना मुझे !

●

दो-चार दिन फिर शान्ति से बीत गये और उमा ने कोई नई शैतानी नहीं की तो चम्पक का चौकन्नापन कुछ कम हो गया। पर एक दिन फिर जब वह घर में आया तो सन्न रह गया। देखा कि घर में कोहराम मच रहा था। उसकी चचेरी भाभी धाड़ें मार कर रो रही थी और मुहल्ले की औरतें उनका साथ दे रही थीं। चम्पक घबराकर ऊपर गया, उमा से मालूम करने कि बात क्या है? जाकर देखा तो उमा बौखलाई हुई खड़ी थी। उसे देखते ही वह रुँआसी होकर बोली—

"तुम कहाँ थे इतनी देर? हाय राम, मैं क्या करूँ अब?"

चम्पक समझ गया कि उसने फिर कोई कारस्तानी की है और बात बिगड़ गई है। बोला—

"क्या हुआ, बड़ी भाभी रो क्यों रही हैं?"

"यों ही रो रही हैं, मैंने मजाक में कहलवा दिया कि आपकी दादी जी गुजर गईं तो रोने बैठ गईं, न कुछ पूछा-ताछा, न कुछ और, इस कोहराम का इतना विस्तार हो गया। अब कैसे समझाऊँ? कब से तुम्हारी राह देख रही थी कि जाकर समझा दो। जरा जल्दी से जाओ न उन्हें समझा दो।"

चम्पक को हँसिया के नाम से उस दिन का वह गनगौर वाला

दृश्य याद आ गया। और उसकी याद आते ही हँसी आने वाली ही थी कि उसने अपने को रोक लिया और झूठमूठ गुस्सा करते हुए बोला—

"मै क्यो समझाऊँ जाकर, जैसा करती हो भुगतो, अच्छा हुआ अब अकल ठिकाने आएगी। रोज कुछ न कुछ खुराफात करती रहती हो।"

"नही-नही, मेरी कसम ! अब कभी नही करूँगी। आप तो जाओ जल्दी नही तो न जाने क्या होगा ?"

चम्पक ने कोई जबाब नही दिया पर सचमुच ही परिस्थिति की गम्भीरता को समझते हुए झट चल दिया। थोडी देर बाद ही जब रोना-धोना बन्द हो गया और चम्पक लौट आया, तब उमा के जी मे जी आया और वह पति के लिए खाना लाने गई।

चम्पक ने खाना खाते समय कहा—"उमा ! तुम्हारा यह बचपन कब जाएगा ?"

"मरूँगी तब।" उमा ने तडाक से उत्तर दिया।

"झूठी कही की, शैतान ! अभी तो गिडगिडा रही थी कि फिर कभी नही करूँगी कुछ भी।" चम्पक बनावटी गुस्से से बोला।

'गई सो गई" उमा हँस पडी। चम्पक भी हँसने लगा। हँसते-हँसते बोला—

"पर उमा, हमारी शादी को साल भर हो गया। अब तुम बडी हो गई हो, कब तक इस प्रकार घरभर को परेशान करोगी ? कुछ नई वारदात किये बिना क्या तुम्हारा खाना हजम नही होता ?"

"खाना तो हजम हो जाता है पर मेरा मन नही लगता।"

८

नहीं जाना मुझे !

●

दो-चार दिन फिर शान्ति से बीत गये और उमा ने कोई नई शैतानी नही की तो चम्पक का चौकन्नापन कुछ कम हो गया। पर एक दिन फिर जब वह घर मे आया तो सन्न रह गया। देखा कि घर मे कोहराम मच रहा था। उसकी चचेरी भाभी बाढें मार कर रो रही थी और मुहल्ले की औरतें उनका साथ दे रही थी। चम्पक धडाधड ऊपर गया, उमा से मालूम करने कि बात क्या है ? जाकर देखा तो उमा बौखलाई हुई खडी थी। उसे देखते ही वह रुँआसी होकर बोली—

"तुम कहाँ थे इतनी देर ? हाय राम, मैं क्या करूँ अब ?"

चम्पक समझ गया कि उसने फिर कोई कारस्तानी की है और बात बिगड गई है। बोला—

"क्या हुआ, बडी भाभी रो क्यो रही हैं ?"

"यो ही रो रही है, मैंने मजाक मे कहलवा दिया कि आपकी दादी जी गुजर गईं तो रोने बैठ गईं, न कुछ पूछा-ताछा, न कुछ और, इस कोहराम का इतना विस्तार हो गया। अब कैसे समेटूं मै ? जब से तुम्हारी राह देख रही थी कि जाकर समझा देते। जरा जल्दी से जाओ न उन्हे समझा दो।"

चम्पक को हरिया के नाम से उस दिन का वह गनगौर वाला

दृश्य याद आ गया। और उसकी याद आते ही हँसी आने वाली ही थी कि उसने अपने को रोक लिया और झूठमूठ गुस्सा करते हुए बोला—

"मै क्यो समझाऊँ जाकर, जैसा करती हो भुगतो, अच्छा हुआ अब अकल ठिकाने आएगी। रोज कुछ न कुछ खुराफात करती रहती हो।"

"नही-नही, मेरी कसम ! अब कभी नही करूँगी। आप तो जाओ जल्दी नही तो न जाने क्या होगा ?"

चम्पक ने कोई जवाब नही दिया पर सचमुच ही परिस्थिति की गम्भीरता को समझते हुए झट चल दिया। थोडी देर बाद ही जब रोना-धोना बन्द हो गया और चम्पक लौट आया, तब उमा के जी मे जी आया और वह पति के लिए खाना लाने गई।

चम्पक ने खाना खाते समय कहा—"उमा ! तुम्हारा यह बचपन कब जाएगा ?"

"मरूँगी तब।" उमा ने तडाक से उत्तर दिया।

"झूठी कही की, शैतान ! अभी तो गिडगिडा रही थी कि फिर कभी नही करूँगी कुछ भी।" चम्पक बनावटी गुस्से से बोला।

"गई सो गई" उमा हँस पडी। चम्पक भी हँसने लगा। हँसते-हँसते बोला—

"पर उमा, हमारी शादी को साल भर हो गया। अब तुम बडी हो गई हो, कब तक इस प्रकार घरभर को परेशान करोगी ? कुछ नई वारदात किये बिना क्या तुम्हारा खाना हजम नही होता ?"

"खाना तो हजम हो जाता है पर मेरा मन नही लगता।"

आगे उमा कुछ नही बोली, वह कुछ उदास हो गई। देखकर चम्पक ने कहा—

"साल भर से पीहर नही गई हो इसलिए न ? उमा, मैंने तुम्हे शादी के बाद से ही माता-पिता के यहाँ नही भेजा। इसके लिए तुम मुझे जो चाहे कहलो, चाहे जितना नाराज होलो, रोज शैतानी करो, मै सब कुछ सहने को तैयार हूँ, पर तुम्हे भेजने को तैयार नही। मेरा मन निश्चित रूप से कहता है कि अगर तुम गईं तो वापिस इस जीवन मे कभी नही मिल सकोगी।"

उमा ने तुरन्त अपना हाथ पति के मुंह पर रख दिया और बहुत ही नाराज होकर बोली—

"फिर वही बात · · मैं कब कह रही हूँ जाने को ? नही जाना मुझे। क्या मैंने बार-बार वहाँ से लेने आने वाले व्यक्तियो को लौटा नही दिया ?" कहते हुए उसने स्नेहपूर्वक स्वामी के गले मे अपनी बाँहे डाल दी और उनके वक्ष मे अपना मुंह छिपा लिया। बोली—"कौन चाहिये तुम्हारे अलावा और मुझे ?"

अत्यन्त प्यार से उमा के मुंह की ठोडी पकड कर उसे ऊँचा उठाते हुए चम्पक बोला—"तुम तो नही जाना चाहती उमा ! पर तुम्हारे पिताजी तो बहुत ही नाराज हो रहे है और लिख रहे है कि अब मै स्वय लेने आ रहा हूँ। अपने पिताजी का उग्र स्वभाव तुम जानती ही हो। मेरी बात का कौन विश्वास करेगा कि मेरा मन क्या कहता है।"

"नही, मैं नही जाऊँगी, तुम मना कर देना।"

"कोशिश करूँगा, पर शायद हो नही सकेगा ऐसा।"

"हो सकेगा, खूब हो सकेगा। अभी चिट्ठी लिख दीजिए कि न आएँ यहाँ, कोई लाभ नही व्यर्थ परेशान होने से।"

पर ऐसा सचमुच ही नही हो सका और उमा के पिता जगत-नारायण तीन दिन बाद ही उसे लेने आ गये । वे बहुत कुपित थे, फिर क्या होता । उमा ने ससुराल वालो से चम्पक की अनिच्छा के बावजूद मना करना ठीक नही समझा और चम्पक लिहाज के कारण कुछ कह नही सका । जगतनारायण जी ठहरे नही । बेटी के यहाँ पानी भी वे नही पीते थे अत उसी दिन खडे-खडे तैयारी करवाकर उमा को लिवा गये ।

उमा के हृदय मे पीहर जाने की रचमात्र भी खुशी नही थी । नाना प्रकार की आशकाओ से भरे हृदय को लिये आँसू बहाती हुई किसी प्रकार वह कमरे मे पति के पास आई, पैर छूने को झुकी ही थी कि चम्पक ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया, कहा—

"जा रही हो उमा ! प्रसन्न रहना और जल्दी लौट आना कौन जाने ।"

उमा आगे न सुन सकी, उसी क्षण पति के पैरो पर लोट गई और फूट-फूट कर रो पडी ।

चम्पक ने फीकी हँसी हँसते हुए उसे उठाया और उसके आँसुओ से भीगे हुए चेहरे को हथेलियो मे थामे हुए सिंदूर मडित ललाट को चूम लिया । कुछ क्षण अपलक नेत्रो से देखता रहा, और फिर गहरी नि श्वास लेकर धीरे-धीरे उसे कमरे से बाहर भेज दिया । टूटता हृदय, और सूजी हुई आँखे घूँघट मे छिपाए हुए उमा मोटर मे जाकर बैठ गई । चम्पक शून्य मे देखता हुआ विक्षिप्त-सा खडा रहा । 

९

क्रूर काल मुस्काया

●

उमा की वडी माँ गुणवती वेटी के लिए पलके बिछाए बैठी थी। शादी से पहले उसने कभी भी पुत्री को अपनी आँखो की ओट नही किया था। पर अव एक साल से उसे देख भी नही पाई थी। वार-वार लिवाने वाले जाते और लौट आते थे अत उसका मन वुझ-सा जाता था। इस वार देवर जी को उसने वार-वार वडी आजिजी से कहा था—

"लाला जी, उमा को लेकर ही आना और वहाँ रुकना नही, मेरी कमम है तुरन्त लौटना।"

और अगले दिन जिस समय वाहर तागे की आवाज आई वह वावली-मी दौडी और अपनी वेटी को कलेजे से लगा लिया। उमा का शरीर सालभर मे और कुन्दन की तरह चमकने लगा था। उसे अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर देखकर गुणवती की आत्मा तृप्त हो गई। पर उसे यह देखकर वडा -आश्चर्य हुआ कि माता-पिता के मिलने पर जैसी खुशी लडकियो मे होनी है उसका नामो-निशान भी उमा के चेहरे पर नहीं था। उमका चेहरा भावहीन-सा दिखाई दे रहा था। पर गुणवती ने इसे सफर की थकावट समझा और उसे अन्दर ले गई। ठण्डे पानी का गिलाम उमा के हाथो मे थमाती हुई वोली—

"बेटी, बडी निर्मोही हो गई तू तो।"

"नही तो माँ।" उमा ने जवाब दिया।

"एक साल हो गया तू आई नही। मैंने सुना है तूने ही मना कर दिया था।"

"नही माँ ऐसी तो बात नही है, भेजा नही था वहाँ से।"

"क्यो?" जरा तुनक कर गुणवती बोली—"बेटी अपने पीहर आएगी ही नही क्या? कैसे है जमाई बाबू? पर हाँ उमा, तू इतनी उदास क्यो है? क्या मेरे जमाई का स्वभाव अच्छा नही। तेरा चेहरा कितना उतरा हुआ लग रहा है। अब तू यही रह प्रसन्नता से। जैसे उन्होने इतने दिन नही भेजा, हम भी यहाँ से नही भेजेगे।"

"नही, नही, माँ।" उमा और कुछ न कह सकी, रो पडी वह।

'यह कैसी बात है? गुणवती समझ नही पाई। खुश भी नही है और यहाँ रहना भी नही चाहती। न जाने कितना डरा दिया है मेरी बच्ची को। खैर जाने दे, उठ नहा-धोकर कुछ खाले, मुँह सूखकर कितना-सा हो गया है।"

उमा को मैके आए पन्द्रह दिन ही हुए थे पर उसे लगता था जैसे पन्द्रह महीने बीत चुके हो। रोज सोचती कोई सदेश आएगा, लिवा ले जाने के लिए। पिताजी के घर मे आते ही वह उत्सुकतापूर्वक देखती कि शायद कुछ कहेगे अब। और अचानक वह दिन भी आया। एक दिन शाम को रामनारायण जी ने घर आकर पत्नी को बताया कि उमा की ससुराल से सदेश आया था कि हम लिवाने आ रहे है।

"फिर आपने क्या जवाब दिया?" गुणवती ने पूछा।

"मैने कहलवा दिया है कि दो महीने वाद आएँ। गनगौर के अवसर पर हम उमा को भेजेंगे।"

सतोप की सास लेते हुए गुणवती ने कहा—"वहुत अच्छा किया। भला ऐसे कैसे भेज दे ? एक ही तो मेरी विटिया है। शादी से भी अधिक देकर तव भेजूँगी इसे, अभी तो कुछ तैयारी ही नही हो पाई। लालाजी का तो कोई ठिकाना रहता नहीं। कुछ दिन यहाँ रहे न रहे और चल दिये।"

पर अन्दर वैठी हुई उमा का चेहरा फक हो गया। और ठडी सास उसके कलेजे को चीरती हुई निकल गई। वह सोच रही थी, पन्द्रह दिन ही न जाने कैसे निकल पाए हैं, दो महीने अव कव वीतेंगे। पति की वात कि—"लगता है हम जीवन मे" वार-वार याद आती रहती थी। उसका मन कही नही लगता। अव वह गढ मे भी अधिक नही जाती, सखियो से भी नहीं मिलती। हालाकि इतने दिन वाद आई थी पर मानो विल्कुल ही वदल कर। किसी ने सच्ची खुशी उसके चेहरे पर नही देखी, सव हरान थे।

एक दिन हरिया आया। इसी गाँव मे उसकी वुआ रहती थी, उसके यहाँ किसी शादी मे आया था। आते ही पहले वह अपनी मालकिन से मिलने चला आया। उमा को वह वहुत चाहता था।

हरिया को देखते ही उमा का चेहरा प्रफुल्लित हो गया। वह तुरन्त पूछ वैठी—

"तेरे छोटे वावू कैसे है हरिया ? स्वस्थ है न ? कैसे रहते हैं ? कौन उनका कमरा साफ करता है, कौन खाना खिलाता है, तू ?"

हरिया बेचारा इतने प्रश्नो का उत्तर एक साथ कैसे देता, फिर भी बोला—

"बहूजी, बाबूजी तो आप आई उसी दिन से गाँव पर जाकर रहने लगे है। एक-दो बार बडे बाबूजी से मिलने आए, पर घटा-आधा घटा ठहरकर ही चल दिये। दूध, दही, मीठा सब छोड दिया है। शाक-रोटी के अलावा कुछ नही खाते। आपका कमरा तो आप आई तभी से बन्द है। बाबूजी ने एक दिन भी नही खोला, न ही उसमे कभी सोए।

उमा जडवत बैठी रह गई, कुछ न कह सकी। बडी कठिनाई से कहा—

"हरिया! अपने बाबूजी से कहना, आकर जल्दी से जल्दी ले जायँ।"

"पर आपके पिताजी ने तो अभी भेजने से मना कर दिया है।"

"नही, तू उन्हे तुरन्त आने को कह देना।"

"अच्छा" कहकर हरिया चला गया और उमा ने उसी दिन से प्रतीक्षा करनी शुरू कर दी। पर दिन एक-एक कर बीत चले, कोई भी उसकी ससुराल से नही आया। उमा घुलने लगी। उसकी सहेलियाँ गुणवती से कहती—"चाची, उमा को क्या हो गया, बिल्कुल ही बदल गई है। न पहले की तरह बोलती है, न हँसती है।"

गुणवती भी अब उमा को पहचान गई थी। नारी होने के

शोभा देती है। पति से बढकर उसके लिए और क्या हो सकता है ? पर अब यह सब सोचने से क्या होता, तीर तो हाथ से छूट चुका था। गनगौर पर भेजने को कहला दिया था। इस निश्चय को बदलने के लिए पति से कहने की उसकी हिम्मत नही थी, अत भारी दिल और भरी-भरी आँखो से पुत्री को देखती हुई उसे अधिक से अधिक प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती थी।

गुणवती बडी उमग से उमा की विदाई के लिए तैयारियाँ कर रही थी। गहने, ककडे, वर्तन खिलौने और नाना प्रकार की चीजो का घर मे अम्बार लग गया।

उमा बडी माँ के प्यार का अनुमान लगाकर मन ही मन बडी कृतज्ञ हो रही थी। उसका मन नाना प्रकार के भावो का केन्द्र बना एक-एक दिन गुजार रही थी। यद्यपि पति के बार-बार कहे हुए वचन उसे याद आते और उसे आशकित करते रहते। किन्तु समय-समय पर उधर के कुशल समाचार पाकर सतोष होता, फिर भी कभी-कभी न जाने क्यो गहरी उदासी उसके हृदय को घेर लेती और वह काँप उठती। अनेक राते उसने जागकर विताई और पति के लिए शुभ-कामना की।

धीरे-धीरे गनगौर का मेला समीप आया। घर मे धूम-धाम बढ गई। गुणवती बेटी के लिए मन-माफिक तैयारियाँ करके खुश थी, पर यह सोचकर कि अब वह चली जाएगी, उदास भी। अभी ही साल भर मे आई है और अब न जाने कब आएगी, यह ध्यान आते ही उसकी आँखो से टप-टप आँसू गिर पडते। पर वह चुपचाप उन्हे पोछ लेती। उमा को मालूम ही नही पडता कि कैसे हर्ष-विषाद मे उसकी माँ के दिन बीत रहे है।

आखिर बडी प्रतीक्षा के बाद गनगौर का दिन भी आ गया।

एक दिन पहले ही समाचार आ गये थे कि उमा को लिवाने के लिए कल शाम को चार बजे जँवाई बाबू स्वय ही आ रहे है, यह भी मालूम हुआ कि बिटिया की ससुराल मे भी भारी तैयारियाँ हुई है। अनेक प्रकार के मेवे, मण्ठिान और हीरे के कगन उमा के लिए आ रहे है। साथ मे नाचने, गाने वालियाँ भी आयेगी ससुराल वाले बडे अमीर है। कहते है कि पचास लाख रुपये देकर उन्होने तेरह गाँव बसाए है।

गनगौर के दिन रामनारायण और गुणवती तो मानो पागल से हो गये। उन्हे सूझ ही नही रहा था कि क्या करें और क्या न करे। प्रात काल के बाद दस, बारह और दो भी बजने आए। बस दो घटे बाद ही दामाद चम्पकराय आ जायेंगे। कितनी प्रसन्नता की बात है। बाबू रामनारायण ने फाटक के बाहर बन्दूके लिए हुए वर्दीधारी पुरुषो को तैनात कर दिया और अन्दर आँगन मे बधावे गाने के लिए स्त्रियाँ तैयार होकर बैठ गई।

उमा का हृदय धडक रहा था। उसे उसकी सहेलियो ने अप्सरा की तरह सजा दिया। उमा ने संकोचवश मना भी किया पर बडी माँ की आज्ञा थी अत उसकी एक भी नही चली। घडी ने तीन बजाए और ठीक उसी समय उमा की दाहिनी आँख जोरो से फडक उठी। घबराहट के मारे उसका कलेजा दहल गया। पति के वे शब्द उसे फिर याद आ गये और उसकी आँखो के आगे नाना भाँति की आशकाओ के कारण मानो अँधेरा छा गया। पर वायु का प्रकोप मानकर उसने किसी तरह अपने हृदय को थामा और अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगी।

साढे चार बजे के करीब, दूर से ही उमा के ससुराल वालो

की मोटर दिखाई दी। घर भर मे खुशी का कोलाहल मच गया। ज्यो ही मोटर समीप आई बन्दूके छुडवा दी गई ।

पर यह क्या, मोटर रुकते ही सबने देखा कि उसमे से सिर्फ मुनीम और हरिया ही उतरे है, और उनके चेहरे भी गभीर और रूखे हैं।

बाबू रामनारायण के पैर मानो जमीन मे चिपक गये। बडी कठिनाई से उन्होने पूछा—

"जमाई बाबू कहाँ है ? वे नही आये ?"

"नही, छोटे बाबू नही आये उनकी तबियत ठीक नही है। आप बहूरानी को अभी हमारे साथ भेज दीजिये।"

"रामनारायण सिर पकडकर वही बैठ गए और बडी कठिनाई से बोले—

"अच्छा, सब सामान रखवा लीजिये, मैं मँगवाता हूँ।"

"नही नही, बाबूजी ! सामान सब अभी आप यही रहने दीजिये। बहूरानी को ही सिर्फ हमारे साथ भेज दीजिये जरा जल्दी कीजिये।"

रामनारायण चुपचाप अन्दर गये। गुणवती को सब मालूम हो गया था और वह रो रही थी। उमा की आँखो मे एक भी आँसू न था, वह शून्य मे टकटकी लगाए न जाने क्या सोच रही थी।

अतत कडा हृदय करके माता-पिता ने कन्या का हाथ थामा और उसे बाहर लाकर मोटर मे बैठा दिया। पूरा घर स्त्री-पुरुषो से भरा था पर लगता था कि जैसे सबके सिर पर गाज गिर गई हो। रामनारायण सोचने लगे कि क्या किसी कारण से वे लोग नाराज हो गये है।" □

१०

माँग सूनी हो गई

ज्यो ही मोटर की घर्र-घर्र उमा के कानो मे पडी, उसकी चेतना लौट आई और उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। हरिया पीछे ही बैठा था, उससे पूछा—

"तेरे छोटे बाबू क्यो नही आए हरिया ?"

"कही गमी हो गयी है इसलिए।" सिखाए हुए हरिया ने उत्तर दे दिया।

कही गमी हो गई है, क्या मतलब ? उमा सोचती रही। क्या भाभीजी की दादी गुजर गई, जिनके लिए एक दिन मैंने उन्हे सताया था। मेरे झूठ बोलने का ईश्वर ने कैसा फल दिया है कि महीनो से हँसी, खुशी के साथ की गई सारी तैयारियाँ आज व्यर्थ हो गई। मेरे सारे गहने-कपडे जिन्हे मै बडे चाव से उन्हे दिखाना चाहती थी वही रह गए। अब वह सब सामान कब आएगा ? पर खैर, न सही सामान, मै तो आज जा रही हूँ। कब वह क्षण आएगा जबकि उन्हे देख सकूँगी। उनके चरणो पर गिर सकूँगी। पर ओह ! मेरा हृदय बैठा-सा क्यो जा रहा है ? शायद स्वामी से मिलने की खुशी मे। कैसा लगेगा, जब मै उनके पास होऊँगी ? खूब नाराज होकर कहूँगी—"मुझे क्यो डरा दिया था इतना कि मेके मे एक दिन भी निश्चित होकर नही रह सकी। मुझे नही भेजने के लिए बहाना

बनाया था क्या ?'' ओ हो, आज मेरी मेहदी भी कितनी अच्छी रची है ? सामान रह गया तो क्या हुआ, यह तो मेरे साथ ही है। मेहदी से रचे हाथो को देखकर इन्हे कितनी खुशी होती है ! कई बार तो मेरी हथेलियाँ चूमकर उन्हे अपने गालो से चिपकाए ही बैठे रह जाते हैं। आज क्या करेगे ? अब तो रात भी हो गई, घर पहुँचने-पहुँचते बारह बजेगे। पता नही कमरे मे कितनी देर बाद आयेंगे। घर मे गमी का वातावरण है न ! अच्छा हुआ छटपटाते रहेगे, मुझे भी तो कितना तरसाया है ? तीन महीने होने आए, एक बार भी देख नही सकी।''

उमा की विचारधारा चलती ही रहती पर सामने की ओर तेज प्रकाश देखकर उसकी आँखे उधर उठ गईं। देखा कोई चिता जल रही थी। और वह सोचने लगी कौन होगा वह, जिसकी दुनिया मिट गई ? होगा कोई, ससार मे तो ऐसा होता ही रहता है। मेरी तो आज दुनिया बस जायगी। अरे, गाँव आ गया। घर भी आने वाला है। उमा शीघ्रतापूर्वक अपने कपडे-लत्ते सभाल कर बैठ गई।

कुछ मिनटो मे ही मोटर झटका खाकर रुक गई। मुनीमजी चुपचाप उतरे और उतरकर एक ओर चल दिये। हरिया ने उससे उतरने के लिए कहा। वह सोचने लगी कि हरिया इतना गम्भीर और अक्लमन्द कब से हो गया।

मोटर से उतरते ही उसने देखा—घर मे कोहराम मचा हुआ था। उसकी सास-जिठानी सभी पागलो की तरह चीख-चीखकर रो रही थी। वह धीरे-धीरे एक कोने की तरफ बढी। अधेरा था, वही धम से बैठ गई। लगता था मानो किसी को उसका आना मालूम नही था। किसी को भी रोने से फुरसत नही थी, होश ही न था। उसने चारो ओर आँखें फैलाई कि शायद स्वामी इधर से उधर आते-

जाते दिख जाएँ पर व्यर्थ हुआ। रात के बारह बज गये तो उसे समझ मे नही आया कि वह क्या करे। उसकी जिठानी उसे पकडकर जोर से रो पडी और दो मिनट बाद बेहोश हो गई। उमा ने बडी कठिनाई से उनके हाथो से अपने आप को छुडाया और डर के मारे गिरते-पडते अपने कमरे की ओर भागी। वहाँ देखा तो कमरा अस्त-व्यस्त और खुला पडा था। जाकर वह अपनी चिर-परिचित चटाई पर गिरकर रोने लगी। सबके रोने-धोने से और पति को न देख पाने के कारण उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। कुछ देर बाद उसका रोना थमा तो वह चुपचाप आँखे खोलकर पडी रही। जरा-सी आहट होते ही उसे लगता 'वे' आ गये पर निराशा ही हाथ आती। ज्यो-ज्यो देर होती वह समझती कि बस, अब घर मे शान्ति होते ही आ रहे होगे।

आखिर वह उठकर बैठ गई और प्रतीक्षा करने लगी। तनिक सी आहट होते ही चौकन्नी होकर देखा तो मालूम हुआ कि हरिया उधर से जा रहा है। उसका मन कुछ-कुछ नाराज हो रहा था, सोचने लगी—दादीजी मर गई तो क्या हुआ, क्या इस तरह मातम मनाया जाता है? ऐसा तो मैने कही भी नही देखा। और क्या ऐसा होता है तो कोई अपनी पीहर से आई हुई पत्नी के पास भी नही जाता? क्या करे वह और किससे कहे, वह ठहरी और सबसे छोटी। किससे बुलवाये और बुलवाने पर कोई क्या सोचेगा कि । हरिया भी तो नही रुका, न जाने क्षणभर मे कहाँ चला गया। उमा का सारा शरीर, मन, प्राण सभी स्वामी की बाहो मे समा जाने के लिए व्याकुल हो उठे।

दो बज रहे थे। वह उठ खडी हुई और दरवाजे से लगी पति की प्रतीक्षा करने लगी। अब तो वे अवश्य आयेगे। न जाने कितनी

वार वे चोर की तरह आया करते थे सबको सोता हुआ जानकर। और आज तो विशेष रूप से घर मे दुख का वातावरण है इसलिए जल्दी आने मे शर्म आई होगी। अधकार मे आँखे फाडे हुए वह थक गई। उसके अग-प्रत्यग दुखने लगे और अवश-सी होकर वह किवाड पकडे-पकडे ही वही बैठ गई। आँखो मे गगा-जमुना वह रही थी।

अचानक ही उसकी विचारधारा दूसरी ओर मुडी—क्या वे मुझसे नाराज हो गये है ? पर मैने क्या कसूर किया है, तीन महीने तक माता-पिता ने नही भेजा तो मैं क्या करती ? पर तीन महीने तो बहुत है। वे कहते थे—उमा, मै तुम्हारे बिना एक दिन भी नही रह सकता। हाय रे, मै भी कैसी हूँ ? अगर जिद कर लेती कि मै जाऊँगी ही तो बाबूजी क्या करते ! भेजते नही क्या ? पर मेरी ही तो जबान नही खुली। मेरे चले जाने पर जिन्होने दही, दूध, मीठा सब त्याग दिया उन देवता के लिए मैंने क्या किया ? इतना भी तो नही कह सकी कि मैं जाऊंगी। इसमे शरम की क्या बात थी ? मैंने इतना बडा गुनाह किया है जिसकी कोई भी सजा काफी नही। पर स्वामी ! तुम एक बार आ जाओ। मै तुम्हारे चरणो की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि अब जीवन भर एक दिन के लिए भी तुम्हे छोडकर नही जाऊँगी। मुझे क्षमा कर दो सिर्फ एक बार। ज्यादा देर के लिए नही, कुछ क्षणो के लिए ही सही पर एक बार आ जाओ ! मैं कम से कम क्षमा माँग लूं, चरण छू लूं फिर चले जाना। अपना काम करना, मैं नही रोकूँगी। अचानक ही उमा चौकी बाहर कुछ आहट हुई थी वह साँस रोककर खडी हो गई। किन्तु पति के स्थान पर जो व्यक्ति भीतर आया वह थी उसकी चौदह वर्षीया ननद।

खूब रोई थी शायद वह भी। गला भर्राया हुआ था, बोली—

"भाभी · ·।"

उमा विक्षिप्त की तरह उसका हाथ पकडकर बोली—

'रानी एक काम करोगी ···· ?"

"कहो, क्या बात है ?" वह टूटते हुए स्वर मे बोली।

"किसी से कहोगी तो नही ?"

'नही कहूँगी, कहो।"

"तो जाकर एक बार अपने भैया को बुला लाओ न ! सिर्फ पाच मिनट के लिए। देखो, पहले तो वे न जाने कितने बहाने बनाकर चक्कर लगाया करते थे। पर अब मैं तीन महीने के बाद आई हूँ तब भी सारी रात हो गई, आए नही। कहना—पांच मिनट को दर्शन दे जायँ ·।"

"हाय भाभी ।" रानी धाड मारकर रो पडी—"अब कहाँ से बुला लाऊँ भैया को ? तुम्हे पता नही—तुम्हारे यहाँ आने की सारी तैयारियाँ करके और तुम्हारे हीरे के कगन अपने सिरहाने रखकर जो सोए तो मेरे भैया फिर उठे ही नही। भगवान जाने उन्हे क्या हो गया था। आज ही शाम को तो मेरे भैया को लोग ले गये। हाय भाभी ! रास्ते मे क्या उनकी चिता भी तुमने नही देखी ? वही तो मेरे भैया के आखिरी दर्शन थे, हाय भैया ! भैया !" रानी फूट-फूटकर रोती रही।

वह देख नही पाई कि कब प्रियतम से मिलने का अरमान लिये ही उमा बेहोश होकर लुढक पडी है। सिर फट जाने के कारण खून की धारा बह निकली है और उनकी माग के सिन्दूर के साथ मिलकर उसका रक्त कुछ और अधिक गाढा दीखने लगा है। □

११

भविष्य के गर्भ में



"मत्यएण वदामि।"

ये शब्द कानो मे पडते ही उमा चौक पडी और उठकर वाहर की ओर भागी। स्वामी के निधन को आज तेरह दिन व्यतीत हो चुके थे किन्तु उसे किसी वात की सुध नही थी। घटो वेसुध पडी रहती और होश आने पर पागलो की तरह इधर-उधर दृष्टि दौडाती। उमे यह भी ध्यान नही रहता कि वह कहाँ है ? कैमी है ? कुछ खाया है या नही ? मोई है या नही ? अथवा कौन उमके पास आया और कौन गया ?

किन्तु आज 'मत्यएण वदामि' ये दो शब्द कानो मे पडते ही मानो उसकी चेतना जाग उठी। उमे पता चला कि घर पर किन्ही सन्त अथवा साध्वीजी का आगमन हुआ है। वाहर आकर उसने मानो एक अलौकिक दृश्य देखा—दो जैन साध्वियाँ अपनी अवर्णनीय कान्ति लिए खडी है और परिवार के व्यक्ति उन्हे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वार-वार वदना कर रहे है। यन्त्रचालित की भाति उमा ने भी वदन किया।

गौर वर्ण और श्वेत परिधान मे विभूषित उन सौम्य मूर्तियो को देखकर उमा का विलखता हुआ हृदय शान्ति का अनुभव करने

लगा। उसके हृदय मे व्यथा का जो सागर उमड रहा था उसकी लहरे भी जैसे तूफान के पश्चात् धीरे-धीरे वेग-रहित होने लगी। वह चित्रलिखित की भाँति खडी रह गई और अनिमेष दृष्टि मे उनकी भव्यता को नेत्रो मे अंकित करने लगी। उसे लगा कि स्नेह और सरलता मानो स्वय ही मूर्तिमान रूप धारण कर उसके सन्मुख आ उपस्थित हुए है।

आर्याओ की दृष्टि भी उमा की ओर गई। विषाद से व्यथित एक अत्यन्त सुन्दर, भोला मुख उन्हे अपलक देख रहा था। मुरझाए गुलाब के सदृश वह चेहरा और उनकी ओर उठी हुई कच्चे दूध सी दो निर्दोष आखे उनके सयम-साध्य निर्विकार हृदय को वेध चली। सगमर्मर की तराशी हुई प्रतिमा के समान अतुल सौन्दर्यमयी एक वाला उनके समक्ष मूक खडी थी। समस्त देह निराभरण थी, किन्तु उसके सुडौल हाथ और पैरो मे लगी हुई मेहदी अभी वैसी ही लाल थी। ऐसा लगता था कि उसके समस्त अरमान, और सारी आकाक्षाये उसे त्याग कर चुके थे किन्तु अकेली मेहदी उस विषाद-मूर्ति से लिपटी हुई थी और उसे उस सकट के समय मे किसी भी प्रकार छोडना नही चाहती थी।

यह देखकर किसका ऐसा वज्र का हृदय होता जो द्रवित न होता? दोनो आर्याओ के हृदय विगलित हो गये और नेत्र भर आये। एक कठिनाई से बडी साध्वी ने अपना हाथ उठाया और आशीर्वाद दिया—

बाले! शान्ति प्राप्त करो। और ऐसा कुछ करो कि जिससे फिर कभी ऐसे दुःख न उठाने पडे। तुम्हारी निर्मल आत्मा का प्रतिबिम्ब मुझे तुम्हारे चेहरे पर दिखाई दे रहा है, और प्रतिभासित हो

रहा है कि निश्चय ही ऐसा होगा। तुम अपने जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाओगी और कालान्तर मे शाश्वत सुख की अधिकारिणी बनोगी।"

यह सुनकर सभी स्तभित हो गए। आर्या गिरिजाकुमारी की दृष्टि असीम व्योम की ओर थी मानो वे इस भौतिक ससार से परे होकर, इसको भूलकर स्थिर चित्त से उन्मुक्त गगन मे अकित किसी अदृष्ट लिपि को पढ रही थी। एकाएक उमा विच्छिन्न लता की तरह उनके चरणो पर गिर पडी और उन्हे ससार की सुधि आई, ध्यान भग हो गया।

गद्गद होकर गिरिजाकुमारी ने उमा के मस्तक पर अपना वरदहस्त फेरा और चिबुक को उठाते हुए उसके परम कातिमय चेहरे पर से बहते हुए, अश्रु बिन्दुओं को पोछा। बडी सावधानी-पूर्वक होने से उसे उठाकर खडा किया कि जैसे वह सगमर्मरी प्रतिमा मैली न हो जाये या टूट न जाय।

कुछ क्षणो के पश्चात् मगल-मत्र सुनाकर दोनो आर्याएं मथर गति से अपने निवास-स्थान की ओर चल दी। उमा मत्रमुग्ध सी उन्हे निहारती रही, जब तक वे उसकी आँखो से ओझल नही हो गई।

आर्या गिरिजाकुमारी के कहे हुए शब्द उसे भविष्यवाणी के समान प्रतीत हो रहे थे किन्तु चौदह वर्ष की उमा समझ नही पा रही थी कि वह भविष्यवाणी सत्य कैसे होगी ? बडी माँ और बडे पिता के असीम लाड-प्यार मे पली हुई और प्रतिक्षण हँसमुख बनी रहने वाली हास्य-विनोद की मूर्ति वह मासूम बालिका आज तेरह दिन से शोक-सागर मे डूबी हुई थी। इन तेरह दिनो मे अनेक बार

उसका हृदय अपने जीवन के अन्त की कामना कर चुका था। दैव-स्वरूप इच्छित पति पाकर भी वह उन्हे रख नही सकी थी और उनका असमय मे ही वियोग उसके अरमानो पर तुषार बनकर आ गिरा था। इस वज्रपात ने उसके हृदय को इन कुछ ही दिनो मे मानो जर्जर बना दिया।

किन्तु वह सोच रही थी कि आज उसके हृदय मे यह मथन कैसा हो रहा है? महान् साध्वी गिरिजाकुमारी ने आज उसके भविष्य का कौनसा दृश्य उसे दिखाया है? कैसी ऊँचाई है वह? और कौन सा वह पथ है, जिसका उन्होने निर्देश किया है? क्या सचमुच ही मै उस ऊँचाई की ओर बढ सकूँगी? सचमुच ही क्या मै उसे पा सकूँगी? अपना जीवन उन्नत बना सकूंगी? क्या मेरी आत्मा सदा के लिये भवबधनो से मुक्त हो सकेगी? पर कैसे होगा यह सब? मुझे तो कुछ भी ज्ञान नही है। वह कल्याणकारी मार्ग मुझे सुझाएगा कौन? कौन मुझे सहारा देगा?

इसी प्रकार के अनेको प्रश्नो का तूफान उमा के मस्तिष्क मे उठ रहा था। किन्तु एक का भी समाधान कर सकने मे वह असमर्थ थी। और परिणामस्वरूप पतवार रहित नौका के समान वह शोक-सागर मे डूब और उतरा रही थी। उसका हृदय किनारा पाने के लिए छटपटा रहा था।

अचानक ही उसकी ननद रानी ने आकर पुकारा—

"भाभी!"

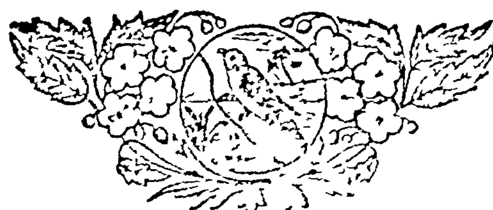
उमा की तन्मयता भग हो गई। पलके उठाकर देखा—उसकी ननद, और उससे भी बढकर सुख और दुख मे छाया की तरह साथ देने वाली सखी रानी उदास और मुर्झाया-सा मुँह लिये हुए उसके पास

खडी है। रोते-रोते उसकी आँखे सूजकर लाल हो गई हैं तथा उनके चारो ओर कालिमा छाई हुई है। भाई का वियोग उस बालिका से भी सहन नही हो रहा है।

उमा ने स्नेह से विगलित होकर दोनो |हाथ बढाये और उसे खीचकर अपने हृदय से लगा लिया। प्यार से उसके चेहरे को थप-थपाते हुए कहा—

"क्या बात है रानी ! रो क्यो रही हो ?"

स्नेह और सान्त्वना भरे शब्दो ने रानी के अश्रुओ का बांध तोड दिया और दोनो ही समवयस्काएं उस नीरव स्थान मे साथ-साथ आँसू बहाने लगी।



१२

नव निर्माण की ओर



काल-चक्र अनवरत घूमता रहा। बात की बात मे छ मास व्यतीत हो गये। उमा का शोक प्रगाढ और गम्भीर हो गया तथा अविराम गति से वहने वाले अश्रु मानो शैशवावस्था त्यागकर लोक-मर्यादा को जानने लगे। अब ये प्रत्येक समय और प्रत्येक के समक्ष बहने मे सकोच का अनुभव करते हुए एकान्त मे ही हृदय के भार को हल्का करते थे।

छ महीनो मे उमा का जीवन एकदम बदल गया था। यन्त्र चालित की भाँति वह अनिवार्य कार्य करती हुई भी बहुधा एकाकी रहा करती थी। आवश्यकता के अलावा अकारण उसे बोलते हुए, किसी ने नही देखा। किसी के पास बैठे हुए नही देखा, हँसते हुए रोते हुए भी नही देखा। धरती माता की गोद मे एक चटाई पर शयन करना और सुबह-शाम दो-दो पतले फुलके खाना ही उसका नियम बन गया।

पूर्व जीवन की सभी मधुर स्मृतिया उसने हृदय के किसी कोने मे सजोती थी। कोई देख न ले, और जान न ले इस भय से एकान्त मे और असमय मे कभी कभी उन्हे उलटती-पलटती रहती थी। और उसके बाद निरानन्द, उत्साह रहित तथा विषादमय भाव से अत्यन्त

सावधानीपूर्वक उन्हें स्वच्छ करके पुन रख देती। दीर्घ-निश्वास लेती हुई हृदय के उस कक्ष से बाहर आ जाती।

आवश्यक कार्यों से बचे हुए समय में वह कोई पुस्तक उठाकर, उसके पन्ने उलटती अथवा आर्या गिरिजाकुमारी की कही हुई बातों पर चिन्तन किया करती। उनके शब्द उसके मस्तिष्क में मानो अंकित हो गये थे और वह नित्य नवीन तरीकों से उन्हें समझने का प्रयत्न करती और विचार करती कि किस प्रकार आर्याजी की भविष्य-वाणी चरितार्थ हो। किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसे अपनी समस्या का कोई हल न मिला, कोई मार्ग नहीं सूझा। असफलता के कारण उसका हृदय अधिकाधिक व्याकुल होता गया और वह उलझनों के अथाह सागर में गोते लगाने लगी। एक दिन की ऐसी अवस्था में उसने एक पुस्तक उठाई और खोली। पुस्तक के बीच के किसी पेज पर उसकी निगाह पड़ी। लिखा था —

"मानव जीवन में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। अपने चर्मचक्षुओं के द्वारा हम इस स्थूल जगत को तो देख सकते हैं, किन्तु जिन ज्ञान-नेत्रों के द्वारा अपने भीतर स्थित चिदानन्द का अवलोकन कर सकते हैं उन्हें खोलने वाले गुरु ही होते हैं।"

रोग से पीड़ित व्यक्ति डाक्टर के पास जाता है और डाक्टर उसके रोग का निदान करके उसे रोग-मुक्त करता है। उसी प्रकार गुरु हमारी आत्मा में विषय विकारों के जो रोग होते हैं उन्हें अपने सदुपदेशरूपी औषध के द्वारा नष्ट करते हैं। गुरु ही समीचीन ज्ञान प्रदान कर आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनों प्रकार के कष्टों का नाश करके मनुष्य को पारमार्थिक विभूतियों का अधीश्वर बनाते हैं। गुरु के अभाव में कुशाग्रबुद्धि मनुष्य भी साधनापथ में निर्बाध अग्रसर नहीं हो सकता। यह अकाट्य सत्य है —

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो,
जानाति तत्व न विचक्षणोपि ।
आकर्णदीर्घामितलोचनोऽपि,
दीप विना पश्यति नाधकारे ।

गुणसागर गुरु के विना विचक्षण वुद्धि वाला मनुष्य भी तत्त्व को नही समझ सकता । कोई व्यक्ति कितने भी विशाल नेत्रो वाला क्यो न हो, बिना दीपक की सहायता लिये अधकार मे नही देख सकता ।

उमा एक मास मे ही यह सब पढ गई । पढते ही जिस प्रकार अन्धकार मे विद्युत् कोध जाती है, ठीक उसी प्रकार उसके हृदय मे भी प्रसन्नता की लहर आई और उसे मार्गदर्शन करा गई । वरिष्ठ साध्वी गिरिजा की भव्य आकृति उसके नेत्रो के समक्ष पुन-पुन आने लगी और वह समझ गई कि उसे सन्मार्ग कौन बतायेगा ? कौन उसे ऊँचाई की ओर अग्रसर करेगा ?

शान्ति और सन्तोप से उसके हृदय की उलझनो और चिन्ताओ का तूफान बैठने लगा । अदम्य उत्साह से उसके नेत्र चमक उठे और सुन्दर तथा उन्नत भविष्य के स्वप्न उसकी आंखो मे तैर चले । वह कल्पना करने लगी उस दिन की, जिस दिन वह सासारिक प्रपचो को छोडकर भगवती गिरिजाकुमारी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलेगी । दुःख, विषाद और अशान्ति से परे होकर शाश्वत सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करेगी और अपने जीवन को नया मोड देगी । एक अवर्णनीय काति उसके सुन्दर चेहरे पर फैल गई और वह पुन विचार सागर मे गोते लगाने लगी ।

किन्तु अचानक ही उसकी विचारधारा भग हो गई । उसके

कानों में सुपरिचित और स्नेह में सने हुए दो अक्षरों ने प्रवेश किया—

"बेटी !"

उमा चौंक पड़ी। देखा—सामने उसके पिता जगतनारायणजी खड़े हैं और उसे पुकार रहे हैं।

उमा उठी और हर्ष-विषाद की अनुपम स्थिति में ही उनके चरणों पर झुक गई।

"आप कब आये पिताजी ?" अस्फुट शब्द निकले।

"अभी आया ही हूँ बेटी !" जगतनारायणजी ने सस्नेह पुत्री के मस्तक पर हाथ रखते हुए उत्तर दिया। कुछ ही मास पूर्व की उल्लासमयी प्रतिमा को आज विषादमयी बनी देख उनका अन्तःकरण फूट-फूटकर रो उठा, किन्तु हृदय को कड़ा करके वे बोले—

"तुम्हें ले चलने के लिए आया हूँ बेटी !"

"कहाँ ?"

"कहाँ ? अपने घर ! जहाँ तुम्हारे बड़े पिताजी अपनी सूनी और व्यथित निगाहों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जहाँ तुम पर सगी माँ से भी अधिक स्नेह रखने वाली तुम्हारी बड़ी माँ, तुम्हें हृदय से लगा लेने के लिए आतुर है, जहाँ तुम्हारा शैशव-काल हँसी-खुशी और शैतानियाँ करते हुए बीता है ! वहाँ का प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तु तुम्हें बुला रही है उमा।"

"लेकिन अब वह उमा कहाँ है पिताजी ? बड़ी अम्मा और दादा ने अत्यन्त जतन से जिस उमा को पाला था वह तो मर चुकी

है। असीम स्नेहजल से [illegible]
गई है। हरिणी की तरह [illegible]
सहज सतत हास्य [illegible]
कुलांचे भरने की शक्ति है [illegible]
ऐसी उमा को ले [illegible]

"ऐसा मत कहो बेटी [illegible]
वर्ष के, किन्तु गौरवोज्ज्वल [illegible]
बालक की तरह रो पड़े। [illegible]
से लगा लिया और उसकी [illegible]
अश्रुजल से प्लावित करने लगे। [illegible]

उमा जब [illegible] की [illegible]
"बाबूजी! मेरे इतने बड़े-बड़े बाल हैं। [illegible]
करा दो मेरी सहेलियों के जैसे।

उन्होंने पूछा था— क्यों?

सब मुझे चिढ़ाती हैं। कहती हैं— [illegible] की चुहिया,
सोलह [illegible] वह मचलते हुए
कह रही थी।

वे तो [illegible] दिये थे पर उनके बड़े
भाई रामनारायण जी ने उसे अपनी गोद में बैठाकर प्यार से
कहा था—

"वाह! बेटी तू तो देवी के समान सुन्दर है, इसलिए [illegible]
[illegible] भी सुन्दर है। वे सब तो भूतनियाँ हैं, भूतनियों के [illegible]
[illegible] और लम्बे बाल होते हैं?"

सुनते ही उमा ताली पीट-पीटकर [illegible]

"आहा !" अब मैं भी उनसे कहूँगी कि भूतनियों के बाल कहाँ से आएँगे ?" और उछलती-कूदती भाग गई थी।

इन बातों के स्मरण से जगतनारायण और भी व्यथित हो उठे। पुत्री के घने, लम्बे और उलझे हुए बालों पर अत्यन्त ममता से उन्होंने हाथ फेरा और जी भरकर विधाता को कोसा कि क्या उसने उमा को यह अनुपम सौन्दर्य इसी प्रकार मिट्टी में मिल जाने के लिए दिया था ? इतनी चचलता, प्रफुल्लता और बुद्धिमत्ता अश्रुओं के वेग में बहाते रहने के लिए प्रदान की थी ?

शशक-शावक की भाँति उमा पिता के हृदय में मुँह छिपाए हुए सिसक रही थी। बाल-शावक जिस प्रकार माँ की गोद से हटते ही शिकारियों के पजे में पड जाने के भय से व्याकुल होता है, उसी प्रकार पिता के हृदय में मा की ममता का अनुभव करते हुए वह उस स्थान से हटते ही नाना प्रकार के दुखों के चगुल में फँस जाने की सभावना से भयभीत हो रही थी। सिर्फ वही स्थान उसे ससार के समस्त दुखों से निरापद, शाति और सतोष का अनुभव करा रहा था।

जगतनारायण के वक्ष में मुँह छिपाए ही वह बोली—"बाबूजी, मुझे यहाँ से ले चलिये।"

"बेटी, मैं तो तुम्हें लिवाने ही आया हूँ, तुम ही तो चलना नहीं चाहती।"

"पर मैं वहाँ चलना नहीं चाहती पिताजी ! मैं वहाँ जाकर कैसे अम्मा और दादा को मुँह दिखाऊँगी ? किस प्रकार रानी माँ के चरण-स्पर्श करूँगी ? अपनी सखी-सहेलियों को मैं ससुराल की

कौन-सी बाते हँस-हँसकर बताऊँगी ? मै नही जाऊँगी पिताजी । वहाँ नही जाऊँगी ।" उमा फूट-फूट कर रो पडी ।

"तो तुम कहाँ चलना चाहती हो बेटी ?"

"मुझे आर्या गिरिजाकुमारी के पास ले चलिये, उनके पास ही मुझे शान्ति मिलेगी ।"

"अच्छा तुम शान्त हो जाओ मैं तुम्हारे ससुर प्रतापनारायण जी से पूछकर तुम्हें आर्या गिरिजाकुमारी के पास ले चलूंगा ।" यह कहते हुए उन्होने पुन पुत्री के आँसू पोछे और उसे सुस्थिर होने का समय देकर धीरे-धीरे बाहर चले गये ।





१३

अब नहीं लौटूँगी

●

दुःख और शोक किस प्रकार मनुष्य को निस्तेज, निरुत्साह और निष्क्रिय बना देते हैं यह बाबू प्रतापनारायण की अवस्था देखकर सहज ही जाना जा सकता था। चम्पक जैसे पुत्ररत्न का वियोग उनसे सहा नहीं जा सका। उनका सशक्त और सुदृढ़ शरीर समय से पहले ही वृद्धत्व को प्राप्त हो गया। असाधारण बुद्धिमत्ता और सहनशीलता विक्षिप्तता में बदल गई और सदा हास-परिहास में रत रहने वाली जिह्वा जैसे मूक हो गई। सच है कम शोक कथनीय, किन्तु महान शोक गूंगा होता है।

किन्तु किया क्या जा सकता है? शोकाकुल रहने वाला मनुष्य लाख प्रयत्न करके भी अपना दुःख मिटाने का सामर्थ्य प्राप्त नहीं कर पाता। कोई भी डाक्टर, वैद्य या अन्य चिकित्सक इस दुःख को दूर करने की औषध का निर्माण नहीं कर पाया। केवल काल ही एक ऐसा धन्वन्तरि है, जो शनैः-शनैः शोक के गहरे घाव पर मरहम का काम करता हुआ उसे भरता है।

छः मास बीत गये। समय ने प्रतापनारायण के पुत्र-वियोग के दुःख का घाव भरने का प्रयत्न किया था, किन्तु घाव कुछ ठीक होने के बाद भी नासूर बनकर रह गया था। अब वे अपने पुत्र को अपनी अनुपम बहु और असाधारण बुद्धिमती पुत्रवधू में ही देखने का

प्रयत्न करते थे। उनकी उदास और मन्त्रवत् डोलती काया को देखकर उनका हृदय करुणा और स्नेह से भर जाता था।

पुत्र के पूर्व-सम्बन्ध को तोडकर बडी कठिनाइयो और परेशानियो को सहन करके भी बडी साध से वह असाधारण लावण्यवती उमा को वहू बनाकर लाये थे। उसका सदा मुस्कराता हुआ प्रफुल्ल मुखडा अब भी उनके नेत्रो के समक्ष नाचता रहता था। और उसका वीणा विनन्दित स्वर आज भी उनके कर्ण-कुहरो मे समाया हुआ था। गांव भर मे उनकी वहू उमा के समान गा सकने वाली नारी नही थी। भतीजी रमा की शादी पर जब एक दिन गीतो के मिले-जुले स्वरो मे उन्होंने एक अत्यन्त सुमधुर और निराला स्वर सुना तो आश्चर्यपूर्वक अपनी कन्या से पूछ लिया—

"रानी! इतने सुन्दर गीत कौन गा रही है आज ?"

"छोटी भाभी,"

"छोटी भाभी कौन, उमा ?"

"हाँ बाबूजी, भाभी बहुत अच्छा गाती है। और घूमर का नाच तो उनके जैसा कोई भी नही कर सकता।"

"अरे वह छोटी सी गुडिया, इतनी होशियार है क्या ?" कहते हुए उनके नेत्रो मे गर्व के कारण आनन्दाश्रु छलक पडे थे। रूपवती और उसी प्रकार गुणवती वहू को पाकर वे अपना भाग्य सराहने लगे थे। सोचते थे कि पुत्र और पुत्रवधू की इस असाधारण जोडी को किसी की नजर न लग जाय।

हुआ भी यही, मनुष्य की नजर लगने पर तो झाड-फूंक की जा सकती थी किन्तु जब विधाना की ही नजर लग गई तो क्या

किया जा सकता था ? बनाने वाला ही जब मिटाने पर उतारू हो जाए तो फिर किसका वश चलता है ?

ऐसा लगता है कि सृष्टिकर्ता उत्तमोत्तम प्राणियों का निर्माण करके भी उन्हें किसी न किसी तरह के अभाव और दुःख के साथ इस मृत्यु-लोक में भेजता है। जब उसने देखा कि उसकी दो उत्कृष्ट कृतियाँ एकत्र होकर किसी भी प्रकार के दुःख-कष्ट का अनुभव न करती हुई सम्पूर्ण सुख भोगना प्रारम्भ कर रही हैं, तो उसे यह सह्य नहीं हो सका। उसने अविलम्ब एक को मिटा दिया।

विधना की इस क्रूर लीला का बेचारे प्रतापनारायण कैसे विरोध करते ? मस्तक पर हाथ धरकर चुपचाप बैठ गए, और अदृष्ट-निर्मित उस एक प्रतिमा की ही सावधानीपूर्वक रक्षा करने लगे। आज जब बाबू जगतनारायण उमा को लिवा जाने के लिए उनकी आज्ञा प्राप्त करने आए तो वे धीरे-धीरे उमा के कमरे की ओर चले और बाहर से ही पुकारा—

"बहूरानी, अन्दर हो क्या ?"

उमा हड़बड़ा कर उठी और मुँह पर अवगुंठन डाल कर खड़ी हो गई। श्वसुर पर उसकी असीम श्रद्धा थी किन्तु लाज के कारण अभी तक वह उनसे बोलती नहीं थी। चुपचाप खड़ी रही। प्रतापनारायण जी की दृष्टि ने क्षणमात्र के लिए अत्यन्त स्नेहपूर्वक पुत्र-वधू को देखा और कहा—

"तुम्हारे पिताजी तुम्हें ले जाने के लिए आए हैं, जाना चाहती हो बेटी ?"

उमा क्या कहती ? मूक ही बनी रही। पिता के साथ

जाने मे किसे आपत्ति हो सकती है, यह सोचकर प्रतापनारायण जी ही पुन बोले—

"अच्छी बात है जाओ ! किन्तु वापिस शीघ्र लौटना । तुम तो जानती ही हो बेटी, कि बडे बेटे-बहू यहाँ रहते नही, अत तुम्ही मेरी धुँधली आँखो की रोशनी हो । तुम्हारे सहारे ही मैं जीता हूँ । तुम्ही मेरे लिए पुत्र और पुत्रवधू दोनो हो । रानी तो ससुराल चली जाएगी, वह कितने दिन यहाँ रहेगी । आर्या गिरिजाकुमारी के दर्शन करके शीघ्र ही पीहर चली जाना ! मैं जल्दी ही वहाँ से तुम्हे लिवा लाऊँगा ।"

इतना कहकर प्रतापनारायण लौट गए और जगतनारायण जी से बोले—

समधी जी ! आप बहू को ले जाइये, किन्तु जल्दी भेज दीजियेगा । मैं स्वय ही लेने आऊँगा । पुत्र तो चला ही गया सदा के लिए, और बहू भी कही चली जाती है तो यह घर अमावस्या की रात जैसा लगने लगता है ।

जगतनारायणजी ने उनके गहरे स्नेह को परखा और उनकी बात स्वीकार करते हुए उमा को तैयार होने के लिए कहने, भीतर की ओर चल दिये ।

जाते समय रानी उमा से लिपट गई—

"जल्दी आना भाभी !"

"क्यो ?"

"क्यो क्या, मेरा मन कैसे लगेगा यहा ?"

"और जब ससुराल जाओगी ?" उमा तनिक मुस्कराई ।

किया जा सकता था ? वनाने वाला ही जव मिटाने पर उतारू हो जाए तो फिर किसका वश चलता है ?

ऐसा लगता है कि सृष्टिकर्ता उत्तमोत्तम प्राणियो का निर्माण करके भी उन्हे किसी न किसी तरह के अभाव और दुख के साथ इस मृत्यु-लोक मे भेजता है। जव उसने देखा कि उसकी दो उत्कृष्ट कृतियाँ एकत्र होकर किसी भी प्रकार के दुख-कष्ट का अनुभव न करती हुई सम्पूर्ण सुख भोगना प्रारम्भ कर रही है, तो उसे यह सह्य नही हो सका। उसने अविलम्ब एक को मिटा दिया।

विधना की इस क्रूर लीला का वेचारे प्रतापनारायण कैसे विरोध करते ? मस्तक पर हाथ धरकर चुपचाप वैठ गए, और अदृष्ट-निर्मित उस एक प्रतिमा की ही सावधानीपूर्वक रक्षा करने लगे। आज जव वावू जगतनारायण उमा को लिवा जाने के लिए उनकी आज्ञा प्राप्त करने आए तो वे धीरे-धीरे उमा के कमरे की ओर चले और वाहर से ही पुकारा—

"वहूरानी, अन्दर हो क्या ?"

उमा हडवडा कर उठी और मुँह पर अवगुंठन डाल कर खडी हो गई। श्वसुर पर उसकी असीम श्रद्धा थी किन्तु लाज के कारण अभी तक वह उनसे वोलती नही थी। चुपचाप खडी रही। प्रतापनारायण जी की दृष्टि ने क्षणमात्र के लिए अत्यन्त स्नेहपूर्वक पुत्र-वधू को देखा और कहा—

"तुम्हारे पिताजी तुम्हे ले जाने के लिए आए है, जाना चाहती हो वेटी ?"

उमा क्या कहती ? मूक ही वनी रही। पिता के साथ

जाने मे किसे आपत्ति हो सकती है, यह सोचकर प्रतापनारायण जी ही पुन बोले—

"अच्छी वात है जाओ ! किन्तु वापिस शीघ्र लौटना। तुम तो जानती ही हो वेटी, कि वडे वेटे-वहू यहाँ रहते नही, अत तुम्ही मेरी धुँधली आँखो की रोशनी हो। तुम्हारे सहारे ही मै जीता हूँ। तुम्ही मेरे लिए पुत्र और पुत्रवधू दोनो हो। रानी तो ससुराल चली जाएगी, वह कितने दिन यहाँ रहेगी। आर्या गिरिजाकुमारी के दर्शन करके शीघ्र ही पीहर चली जाना ! मैं जल्दी ही वहाँ से तुम्हे लिवा लाऊँगा।"

इतना कहकर प्रतापनारायण लौट गए और जगतनारायण जी से वोले—

समधी जी ! आप वहू को ले जाइये, किन्तु जल्दी भेज दीजियेगा। मै स्वय ही लेने आऊँगा। पुत्र तो चला ही गया मदा के लिए, और वहू भी कही चली जाती है तो यह घर अमावस्या की रात जैसा लगने लगता है।

जगतनारायणजी ने उनके गहरे स्नेह को परखा और उनकी वात स्वीकार करते हुए उमा को तैयार होने के लिए कहने, भीतर की ओर चल दिये।

जाते समय रानी उमा से लिपट गई—

"जल्दी आना भाभी !"

"क्यो ?"

"क्यो क्या, मेरा मन कैसे लगेगा यहाँ ?"

"और जब ससुराल जाओगी ?" उमा तनिक मुस्कराई।

"धत यह भी कोई मजाक करने का समय है। तुम जल्दी आना, कब आओगी भाभी?"

"यह मैं क्या जानूं, कौन जाने आऊँ ही नहीं।"

"हाय राम! जाते समय भी कोई ऐसी बात कहता है?" कहते हुए रानी ने भाभी के मुँह पर अपनी हथेली रख दी।

"घबराओ मत रानी! मुझे कुछ नहीं होगा।" कहते हुए उमा ने उसकी हथेली को प्यार से थपथपाया और बाहर आई। ससुर के चरण-स्पर्श किये और रवाना हो गई। □



१४

हृदय-पटल पर नये अक



उस वर्ष भगवती गिरिजाकुमारी का चातुर्मास मारवाड प्रान्त के अशोका नामक गाँव मे था। जगतनारायणजी पुत्री सहित प्रात-काल नौ बजे के लगभग 'अशोका' पहुँचे। उपाश्रय मे प्रवचन चल रहा था। पिता-पुत्री उपयुक्त स्थानो पर जाकर प्रवचन सुनने बैठ गए।

पडाल श्रोताओ से खचाखच भरा हुआ था। परम विदुषी साध्वी गिरिजाकुमारी अपनी गौर-वर्ण भव्य आकृति लिये हुए सामने विशाल पट पर विराजमान थी। उन्हे देखते ही उमा के हृदय मे अवर्णनीय आनन्द और सन्तोष हिलोरे लेने लगा। वह मन्त्र-मुग्ध की भाँति प्रवचन के एक-एक शब्द को हृदयगम करने लगी। आर्या बोल रही थी—

"आत्म-शक्ति पर विश्वास की कमी ही हमारे जीवन मे अनेकानेक कठिनाइयो और असफलताओ का कारण बनती है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है। मन और इन्द्रियां सब उसके अनुचर है। आत्मा की शक्ति के बिना उनमे हिलने-डुलने का भी सामर्थ्य नही है। शरीर तो इस भव-सागर से पार उतरने के लिए सिर्फ एक नौका के समान है जो आत्मा द्वारा सचालित होता है। इतना अवश्य है कि मानव शरीर रूपी नई नौका इतनी सुदृढ होती है कि जिससे हम इस असीम

भव-समुद्र को पार कर सकते है। अव तक हमारी आत्मा ने अनेक योनियो और पर्यायो मे भ्रमण किया है किन्तु इस मानव शरीर के जैसा अन्य कोई शरीर नही मिला, जिसके द्वारा हम आत्मा तथा परमात्मा को जान सकते, साधना कर सकते और आत्म-गुणो का विकास कर सकते। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर इसे निरर्थक खो देना जीवन की सबसे बडी भूल है। इसलिये भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य 'गौतम'' से कहा था—

"समय गोयम मा पमायए।"

भगवान का यह कथन सिर्फ 'गौतम' के लिये ही नही था। ससार के समस्त प्राणियो को इससे सचेत होना चाहिए। जो मनुष्य अपने जीवन-काल मे भोगो मे ग्रस्त रहते है और इस लोक के सम्बन्धियो मे ममता के कारण आसक्ति रखते है, क्षणभर के लिए भी परलोक पर ध्यान नही देते, वे अपने जन्म को वृथा गँवा देते है। उन्हे विचार करना चाहिये—

यस्यास्ति नैक्य वपुषोऽपि सार्द्धम्
तस्यास्ति कि पुत्र-कलत्र-मित्रै: ?
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपा
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।

जिसकी अपने शरीर के साथ भी एकरूपता नही है, उसकी पुत्र, पुत्री और मित्र जनो के साथ एकरूपता कैसे हो सकती है ? जब शरीर ही आत्मा से पृथक् है तो परिवार तो पृथक् होगा ही। शरीर पर मढी हुई चमडी को अलग कर दिया जाए तो रोमकूप क्या शरीर मे रह जाएँगे ? नही, इसी प्रकार जब शरीर ही अपना नही है तो शरीर से सम्बन्ध रखने वाले अन्य पदार्थ अपने कैसे हो सकते है ?''

उमा तन्मय होकर एक-एक शब्द सुन रही थी। उसे लग रहा था, मानो उसके हृदय मे जमी हुए उलझनो की प्रगाढ परतो मे से एक-एक परत उठती चली जा रही है। प्रवचन जारी था—

"आश्चर्य है कि मनुष्य पल-पल मे होने वाले परिवर्तन को देखता हुआ भी अज्ञान और मोह के कारण नेत्र होने पर भी अँधा, कान होते हुए भी बहरा और चेतना होते हुए भी जडवत् बना हुआ है। किन्तु इस स्थिति मे जीवन-यापन करने के पश्चात् क्या होगा? यही कि उसे समय निकल जाने का घोर पश्चात्ताप करना पडेगा।

ज्ञान-हीन प्राणी कहते है—"इस जीवन का अन्त हो भी गया तो क्या हानि है? आत्मा अजर-अमर है, अविनाशी है। न सही इस जन्म मे, अगले जन्म मे आत्मा का कल्याण कर लेगे।" किन्तु बन्धुओ! क्या आपको विश्वास है कि आगामी भव आपका मनुष्य भव ही होगा? विशेष तौर से उनको, जो अपना जीवन भोग-विलास और धन-सचय मे ही व्यतीत करते है, पुन मनुष्य शरीर मिलना कठिन है।"

"इसलिये, जिसे यह जीवन सार्थक बनाना है उसे अपनी आत्मा को उन्नत बनाना आवश्यक है। जीवन की सार्थकता आत्म-कल्याण मे है। आत्म-कल्याण का अभिप्राय अपने विशुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होना है। आत्मा ज्यो-ज्यो अपने स्वरूप को प्राप्त करता जाएगा, त्यो-त्यो इन्द्रियो के विषयो से उसका मन हटता जाएगा और सासारिक पदार्थो पर से उसकी आसक्ति कम होती जाएगी।"

"स्मरण रखो, कि ससार का कोई भी पदार्थ और कोई भी नातेदार प्राणी को मृत्यु से बचाने मे समर्थ नही है। जन्म और मरण से बचाने वाला अगर कोई है तो वह है 'धर्म'। धर्म का

आश्रय लेकर ही मनुष्य शाश्वत सुख की प्राप्ति करके अक्षय सुख का भागी वन सकता है।"

प्रवचन समाप्त हुआ। हर्ष-विभोर जनता जय-जयकार करती हुई लौट गई। उमा आनन्दातिरेक के कारण कुछ समय तक वही वैठी रही और उसके पश्चात् धीरे-धीरे आर्या गिरिजाकुमारी के समीप पहुँची। उन्हे वन्दन किया और हाथ जोडकर खडी हो गई।

आर्या ने अपना हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया। साथ ही उनके नेत्रो ने कुछ समय पूर्व देखी हुई उस सुन्दर प्रतिमा का स्मरण करते हुए अत्यन्त ममता और स्नेह से उसे आपाद-मस्तक निहारा। करुणा और स्नेह मिश्रित भावनाओ ने उनके हृदय को विभोर कर दिया। वोली—

"तुम आ गई? मुझे यही आशा थी। आओ हमारे साथ चलो!" कहते हुए वे अपनी गुरु-भगिनी के साथ पाट से नीचे उतरी और अपने स्थान की ओर रवाना हुई। विमुग्ध उमा साथ-साथ चली।

भोजनादि से निवृत्त होकर दोपहर को उमा गिरिजाकुमारी के समीप जा वैठी। कुछ कहने को उत्सुक-सी उसकी आँखो को देखते हुए गिरिजाकुमारी ने पूछा—

"कुछ कहना चाहती हो वेटी?"

उमा को मन-मागी मुराद मिली। यद्यपि उसने अपने हृदय की व्यथा प्राणपण से दवा रखी थी, किन्तु जिस प्रकार राख से दवी हुई आग अपने आस-पास की राख को गरम रखती है, उसी प्रकार उसके मन की व्यथा निरन्तर उसकी आत्मा को सतप्त कर रही थी।

अपने अशांत मन को शान्त करने का उपाय जानने के लिए ही वह यहाँ आई थी। पूछा—

"भगवती! मुझे शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?"

"शान्ति किसी बाह्य-पदार्थ से नही मिलती उमा! सुख-दुख शान्ति और अशान्ति का उद्‌गम स्थान हृदय ही है।"

"वह कैसे?"

"जिस प्रकार धोकनी चलते रहने पर हारमोनियम के तीव्र अथवा मन्द, जिस स्वर पर अँगुली रखी जाए वही बोलता है, बाकी के स्वर मौन रहते है, इसी प्रकार शरीर मे प्राण-वायु विद्यमान रहने पर कुशल साधक इच्छित भावनाओ को जगाते है, और बढ़ाते है और मुखरित करते है। तथा अनिच्छित भावनाओ को हारमोनियम के अन्य स्वरो की तरह मूक रहने देते है। किन्तु वादक के कुशल होने पर भी संयोगवश अगर उसकी अगुलियाँ अनिच्छित स्वरो पर जा पडती है तो उनकी आवाज आते ही वह तुरन्त उन पर से अगुलियो को हटा लेता है। इसी प्रकार साधक की किसी भूल अथवा असावधानी से हृदय की विकृत भावानाए जाग उठती है तो वह अपनी साधना के अभ्यास के द्वारा उधर से मन को हटा लेता है।"

"साधना कैसे की जा सकती है?" उमा ने जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किया।

"उमा बेटी! साध्य प्राप्ति के लिए किया जाने वाला प्रयत्न ही साधना है। किन्तु साधना आरम्भ करने से पूर्व साधक को अपने साध्य का स्वरूप भली-भाँति निश्चित कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उसके अनुरूप साधना करने के लिए साधनो की खोज करनी चाहिए?"

"कृपया मुझे सरल ढग मे समझाइए भगवती, मनुष्य के लिए साध्य क्या होना चाहिए और उसकी प्राप्ति उसे किन साधनो से करनी चाहिये ?"

"उमा, ससार के जो व्यक्ति आत्मा की अमरता और महानता पर विश्वास नही करते, पाप और पुण्य के परिणामो पर आस्था नही रखते, इस जन्म को ही सब कुछ मानते है, उनके लिये साध्य विभिन्न होते है। कोई जीवन की सफलता कीर्ति प्राप्त करने मे, कोई अटूट अर्थ-सचय कर लेने मे और कोई शारीरिक भोगोपभोगो को भोग लेने मे ही अपना जीवन सफल मानते है"

"इसके विपरीत, जो भव्य प्राणी आत्मा की अनन्तशक्ति को समझ लेते है उसमे अमरत्व पर दृढ विश्वास रखते है, उनके लिये नश्वर और सासारिक उपलब्धियो का कोई महत्त्व नही होता। वे इन्हे अपना साध्य नही मानते। उनका साध्य होता है जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त कर अव्यावाध और अनन्त सुख प्राप्त करना।"

उमा के नेत्रो मे अनिर्वचनीय चमक आ गई। उसे लगा, अज्ञानान्धकार की एक और भारी परत उसके सामने से हट गई है। नवोदित ज्ञानरूपी बाल-सूर्य की सुवर्णमयी रश्मियाँ उसके सामने बिखर रही है। गिरिजाकुमारी चुपचाप उसके कुन्दन के समान दमकते हुए चेहरे को देखती रही। कुछ क्षणो बाद उमा ने पुन प्रश्न किया—

"मुक्ति रूपी साध्य का अभिलाषी साधक किन महान् गुणो को अपनाकर साधना-पथ पर अग्रसर हो सकता है भगवती ?"

"आत्मज्ञान, आत्मविश्वास तथा आत्मसयम। इन तीन गुणो को अपनाकर साधक साधना-पथ पर बढ सकता है। आत्म-ज्ञान का

का अर्थ है, अपनी आत्मा तथा उसकी शक्ति को पहचानना। अधिकतर मानवो की दृष्टि बाह्य-पदार्थो की ओर ही रहती है। वह उन्ही मे मुग्ध रहता है। अपने अन्दर वह दृष्टिपात नही करता। वह यह समझने का प्रयत्न नही करता कि मेरे अन्तरात्मा मे अद्‌भुत शक्ति और सुख का सागर लहरा रहा है। आत्मिक शक्ति की पहचान के विना मनुष्य ससार की समस्त विद्याओ मे पारगत होकर और समस्त कलाओ का अधिकारी बनकर भी विशुद्ध आनन्द को नही पा सकता। आज बडे-बडे वैज्ञानिक पुद्‌गलो का विश्लेषण करते है, और उसकी सूक्ष्म शक्तियो का अन्वेषण करने मे दत्तचित्त रहते है। इस विराट् विश्व को वे अपनी बुद्धि मे समा लेना चाहते है, किन्तु अपने आपको समझने की, विकारो तथा अपनी आभ्यन्तर शक्तियो को पहचानने की चिन्ता नही करते। परिणाम यह होता है कि आत्मिक शक्तियो का बोध न होने से उनसे उत्पन्न होने वाले अनूठे आनन्द का वे आस्वादन नही कर पाते।"

"आत्म-ज्ञान के साथ साधक मे आत्म-विश्वास का उदय भी होना चाहिये। आत्म-विश्वास के अभाव मे प्राणी किसी भी महान कार्य को सम्पन्न नही कर सकता। फिर साधना की तो बात ही क्या है, वह तो उनके लिये गूलर का फूल बनकर रह जाती है। आत्म-विश्वास की कमी के कारण मनुष्य अपने आपको अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर भी दीन, हीन और क्षुद्र मानता है। तथा कदम-कदम पर असफलताओ का शिकार होता है। इनके विपरीत आत्म-शक्ति को समझने वाले व्यक्ति के मन कोश मे असभव शब्द नही होता। साधना का दुर्गमपथ उसे सुगम लगता है और उसके कदम अविचलित रूप से आगे बढते जाते है।"

इतना कहकर महमा आर्या गिरिजाकुमारी ने पूछा—"उमा, मेरी वात समझ तो रही हो बेटी ?"

"जी हाँ, अव मुझे आत्म-सयम के विषय मे वताइये !" उमा ने सक्षिप्त उत्तर दिया—

"आत्म-सयम साधना का तीसरा और सर्वोत्कृष्ट साधन है। आत्म-ज्ञान और आत्म-विश्वास होने पर भी अगर मनुष्य मे आत्म-सयम नही है तो उन दोनो का होना न होना समान है। सयम का अर्थ है इन्द्रियो पर और मन पर विजय प्राप्त करना, उन्हे अपनी इच्छानुसार चलाना। मन स्वभावत चचल होता है। कभी एक भावना लहरी मे वहता है और कभी दूसरी मे, ऐसे असयत मन का अधिकारी क्षणिक भावोद्वेग के वशीभूत होकर अपने मार्ग से च्युत हो जाता है। वह अपने मन की प्रवृत्तियो को शुभ की ओर नही ले जा पाता तथा आसुरीभावनाओ और दुष्प्रवृत्तियो का शिकार वन कर रह जाता है। असयमी का मन जप, तप, प्रार्थना, उपासना अथवा साधना, किसी मे भी केन्द्रित नही हो सकता, क्योकि उसमे एक ही लक्ष्य पर स्थिर रहने की क्षमता नही होती। वह निरन्तर राग, द्वेष काम, क्रोध, लोभ अथवा मोह, जो भी विकार जागृत होता है उसमे वहता रहता है। और सदा आकुल-व्याकुल, खेदखिन्न तथा असन्तुष्ट वना रहता है। इसलिए प्रत्येक साधक मे दृढ सयम होना चाहिये ताकि उसके सयम रूपी कवच से टकराकर दुष्प्रवृत्तियो का प्रत्येक शर खण्डित हो जाए।"

उमा वडी तन्मयता मे एक-एक शब्द सुन रही थी। बोली—

"आर्या ! साधना घर मे रहते हुए नही हो सकती ?"

"हाँ हो सकती है। साधना घर, वाहर, जाति, कुल या भाषा,

किसी पर भी निर्भर नही है। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी अवस्था मे, और कही भी साधना कर सकता है।"

"तव फिर आपने गृह-त्याग क्यो किया ?" आश्चर्य से उमा ने प्रश्न किया।

"इसके दो कारण है। प्रथम तो यह कि मन वडा निर्वल होता है। परिवार के साथ रहते हुए, मोह, ममता त्याग कर मन को निरासक्त वनाना तथा चारो ओर विखरे हुए प्रलोभनो से वचाना वहुत दुष्कर है। दूसरे, आत्मचिंतन तथा साधना के योग्य शान्त और एकान्त वातावरण का भी वहाँ अभाव होता है। ऐसी स्थिति मे मन एकाग्र नही हो पाता।"

"तुम देखती हो वेटी ! आजकल अस्पताल मरीजो से भरे रहते हैं। यद्यपि रोगो का इलाज घर पर रहकर भी कराया जा सकता है, फिर भी मरीज अस्पतालो मे प्रविष्ट क्यो होते है ? सिर्फ इसलिये कि घर मे रहकर वे पूर्ण विश्राम नही पा सकते, उनका मन घर की चिन्ताओ से मुक्त नही हो पाता। साधक के लिये भी मोह, ममता, राग, द्वेष आदि वीमारियो के समान ही है। इनसे त्राण पाने के लिए वह गृह-त्याग करता है और अपने अशान्त मन को शान्त करके आत्म-शक्तियाँ जागृत करता है, उन्हे पुष्ट करता है तथा प्रवृत्ति मार्ग से हटाकर निवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर करता है। वस वही साधना कहलाती है।"

उमा अभिभूत-सी वैठी थी। उसके सरल और शुद्ध मानस-पटल पर गिरिजाकुमारी का कहा हुआ प्रत्येक वाक्य अंकित होता जा रहा था। ठीक उसी समय सामने लगी हुई दीवार घडी ने टन्-

टन् करके चार टकोरे बजाए और वह सकुचित होती हुई उठ खड़ी हुई और बोली—

"भगवती ! मैंने आपका बहुत समय ले लिया।"

"नहीं-नहीं, मुझे स्वयं ही तुमसे वार्तालाप करके अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ है। पर तुम भी अब कुछ विश्राम कर लो।"

उमा ने उनके चरणों का स्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके मन्थर गति से अपने निवास-स्थान की ओर रवाना हुई।

आर्या गिरिजाकुमारी की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि ने तब तक उसका पीछा किया जब तक कि वह उनके नेत्रों से ओझल नहीं हो गई। □



१५
मानस मन्थन



उमा को अशोका आए हुए आज दूसरा दिन था। आज स्वर्णिम प्रभात के समय, जबकि जगत के समस्त प्राणि रात्रि-भर के विश्राम के पश्चात् अपने मन और मस्तिष्क को सब प्रकार की चिन्ताओ से मुक्त और हल्का महसूस करते है, उमा अपने मस्तिष्क को अत्यन्त बोझिल अनुभव कर रही थी। सारी रात उसकी जागते हुए व्यतीत हुई थी और धरा पर विहँसती हुई उषा का आगमन हो जाने पर भी उसके हृदय मे प्रसन्नता की एक भी किरण प्रवेश नही कर सकी थी।

उसके अन्तर्मानस मे विचारो का घोर सग्राम छिडा हुआ था। वह बुद्धि का सहारा लेकर प्राणपण से उसे शान्त करने का प्रयत्न कर रही थी। प्रतिक्षण उसे पिता के आने और उनके द्वारा अशोका से लौट चलने का प्रस्ताव किये जाने की आशका थी। वे आर्या गिरिजाकुमारी के दर्शन करने मात्र का समय लेकर ही यहाँ आए थे।

किन्तु वह सोच रही थी, क्या होगा पुन लौटकर? शैशव अवस्था बीत चुकी जिसमे प्रात काल नेत्र खुलने से लेकर रात्रि को नेत्र मुंदने तक वह मृग छौने के समान किलोले किया करती थी। प्रसन्नता के सागर मे डुबकियां लगाती थी। बडी माँ और दादा के लाड-प्यार से उकता कर गांव मे फेरी लगाने निकल पडती थी।

किसी को हँसाती, किसी को रुलाती और सहेलियों के साथ क्रीडा करते हुए जब थक जाती तो गढ में जाकर रानी माँ की गोद मे बैठ जाती थी। ओह, कितनी अच्छी थी रानी माँ! उसके धूल-मिट्टी भरे पैरो को रानी धोकर भी अपने आँचल मे पोछ देती और अपने हाथ मे खाना खिलाती। कहती—

"उमा, तू मेरी जनम-जनम की बेटी है न? मैंने तुझे अच्छी तरह पहचान लिया है।"

"अच्छी तरह पहचान लिया है, तभी तो आज रसगुल्ले नही बनवाए, मैं कल कहकर गई थी न!" वह मुँह फुला कर कहती।

"अरे भूल गई उम्मी! तनिक भी ध्यान नही रहा। अच्छा दोपहर को बनवाकर रखूँगी, तू शाम को आकर खा लेना।"

"हाँ' शाम को आकर खा लेना। अम्माँ आने देगी क्या मुझे दुबारा इतनी देर मे ही तो आधी हो गई होगी। कहती हैं बाहर मत जाया कर नजर लग जाती है" और अचानक ही वह उनके गले मे अपनी कोमल बाँहे डालकर कहती—

"मेरी कितनी माताएं हो गई? तुम, बडी माँ, धाय माँ और मेरी अपनी माँ। क्यो रानी माँ, मेरी माँ कैसी थी? कहते-कहते उसका मन बुझा-सा हो जाता और गहरी पीडा से हृदय भर जाता।

रानी उसके उदास चेहरे को चूम लेती, और धीरे-धीरे उसकी मा के विषय मे बहुत-सी बाते बताती। कहती—"तेरी मा के समान सुन्दर स्त्री ढूँढी जाय तो आस-पास के किसी भी गाँव मे नही मिलेगी। सिर्फ तूने ही अपनी मा का रूप पाया है बेटी! काश, तेरी माँ तुझे देख पाती।" सुनकर उमा उनकी गोद मे मुँह छिपाकर सिसकने लगती।

जन्म देकर सात दिन बाद ही त्याग जाने वाली अपनी माँ का स्मरण करके आज फिर उमा की आँखे बरसने लगी। कुछ समय इसी अवस्था मे गुजरा और अतीत का चक्र थोडा और घूम गया।

सामने आया देवस्वरूप चम्पक से प्रथम मिलन का दृश्य। चम्पक ने रग भरे टब मे चूना डाल देने के कारण उसके हाथ बांध दिये थे और उसने चम्पक के घुटने पर झरोखे मे से पत्थर पटक दिया था। इतना ही नही, चम्पक के कारण पूछने पर उसने किस प्रकार दृढतापूर्वक कह दिया था—

"तुमने मुझे छुआ क्यो? अब तो मेरी तुम्हारे अलावा और किसी से भी शादी नही हो सकती।" आज उस घटना को स्मरण कर उसे लज्जानुभूति होने लगी—हाय, कैसी बाल-सुलभ बुद्धि से उसने निस्संकोच उसने ऐसा कह दिया था। और उसका परिणाम —उमा सोचती चली गई—

"मैं बच्ची थी, किन्तु वे तो नासमझ नही थे। तब भी उन्होने मेरे शब्दो का कितना सम्मान किया। कितना विश्वास किया! और अपने वर्षो पहले तय किये हुए वाग्दान को तोडकर मुझ अभागिनी को अपनाया।

और विवाह के बाद के वे थोडे से दिन कैसे थे? सर्वगुण सम्पन्न देवता के समान पति पाकर क्या वह धन्य-धन्य नही हो गई थी? लगता था कि अपनी पूरी आयु पाकर वे सम्पूर्ण जीवन मे जितना मुझे प्यार कर सकते थे वह सारा ही प्यार उस अल्प-काल मे उन्होंने मुझ पर उडेल दिया था।

अपने जीवन की अल्पता का उन्हे आभास हो गया था और इसी कारण पलमात्र के लिये भी वे मुझे अपने नेत्रो से ओझल करना नही चाहते थे। पीहर जाते समय कितने निरुपाय होकर उन्होने कहा था—"उमा, मुझे ऐसा लगता है कि अब तुम मुझे इस जीवन मे कभी नही मिलोगी।"

और हुआ भी यही। उसके बाद मैं अन्तिम समय मे भी स्वामी के दर्शन नही कर पाई। मन छटपटाता ही रह गया।

उमा अपने आप पर नियन्त्रण नही कर सकी और रुकी हुई अश्रुधारा पुन वेग से बहने लगी। अपने अशरीरी पति की काल्पनिक मूर्ति के चरणो मे उसने बार-बार मस्तक झुकाया और आँखो से मोती बिखेर दिये। मानो आज अन्तिम बार उनकी अर्चना करके उस स्मृतियो के स्वर्णिम ससार से विदा होकर साधना के नवीन जगत मे प्रवेश कर रही हो।

उसका मन दृढ निश्चय कर चुका था कि पिता के साथ अब वह नही लौटेगी। लौटे भी किसलिये ? जब सुनहरा बचपन व्यतीत हो चुका, पति का मनोरम राज्य असमय मे ही छिन्न-भिन्न हो गया। तब फिर वह अमूल्य और दुष्प्राय जीवन अब निरर्थक क्यो जाने दे ? आर्या गिरिजाकुमारी के वचन उसके कर्ण-कुहरो मे अब भी गूँज रहे थे—

"इस विराट विश्व मे चौरासी लाख योनियाँ है। असख्य काल इन योनियो मे व्यतीत करने के पश्चात् अनन्त-अनन्त सुकृतो के फलस्वरूप मनुष्य योनि प्राप्त हो पाती है। तो ऐसे जीवन को जिसे करोडपति अपना सर्वस्व देकर और चक्रवर्ती सम्राट अपना छ खण्ड का साम्राज्य न्यौछावर करके भी नही खरीद सकता, मोह ममता

और पर-पदार्थो मे आसक्ति के कारण ही व्यर्थ क्यो जाने देना चाहिए ?"

"जीव की तो अपने शरीर के साथ भी एकरूपता नही है, तव फिर उसकी माता, पिता, पत्नी, पुत्र, मित्र तथा अन्य सम्वन्धियो मे एकरूपता कैसे हो सकती है ? अर्थात् जव शरीर ही अपना नही है तो शरीर से सम्वन्ध रखने वाले चेतन और जड पदार्थ उसके अपने कैसे हो सकते है ? झूठे मोह मे फँसकर जीव अनेकानेक कर्मो का वँध कर लेता है और उनके परिणामस्वरूप मानव-देह त्याग करने के पश्चात् नरक, निगोद, तिर्यच आदि असख्ययोनियो मे जन्म लेता हुआ भव-समुद्र मे डूवता उतराता रहता है। इसीलिए तो त्रिकालदर्शी भगवान महावीर ने गौतम से वार-वार कहा है—

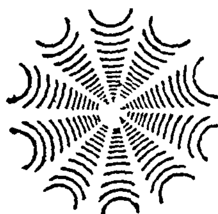
दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिण ।
गाढाय विवागकम्मुणो, समय गोयम ! मा पमायए ॥

अर्थात् "हे गौतम ! सव प्राणियो के लिए मनुष्य-भव चिर-काल तक भा दूर्लभ है। दीर्घकाल व्यतीत होने पर भी उसकी प्रगति होना कठिन है। क्योकि कर्मो के फल वहुत गाढे होते है, अत समय-मात्र का भी प्रमाद मत कर।"

जीव और जगत के इस रहस्य को जानकर उमा काँप उठी। वह समझ रही थी कि भगवान का यह उपदेश गौतम के लिये ही नही, प्राणीमात्र के लिये है। गौतम तो स्वय महान थे। और उच्चतर साधना मे रत रहते थे। उन्हे भी जव भगवान ने वार-वार चेतावनी दी थी तो हम जैसे प्राणियो के लिये तो यह कितनी दुर्लभतम और महत्त्वपूर्ण है। गौतम के समान ही तो आज ससार के समस्त प्राणियो

का और मेरा भी समय पल-पल करके बीत रहा है। निरर्थक जा रहा है।

विचारधारा प्रवाहित होती रही और उमा कुछ ही समय पहले किये हुए अतीत के स्मरण, उसके लिये पीडा के अनुभव और अश्रु-पात के लिए पश्चात्ताप करने लगी। उसका हृदय दृढता से भर गया और वह पुन अपने भविष्य की सार्थकता के स्वप्न देखने लगी। □



१६
प्रव्रज्या लूँगी

"उमा !"

"कहिये पिताजी !"

"आज हम यहाँ से वापिस चलेंगे। हमे अशोका आए हुए तीन दिन हो चुके।"

"लेकिन मै तो आपके साथ नही चल सकूँगी।"

"क्यो ?" जगतनारायण ने आश्चर्य मे पूछा।

"पिताजी, अब मैं आर्या गिरिजाकुमारी के पास प्रव्रज्या धारण करके आत्म-कल्याण करना चाहती हूँ।"

जगतनारायणजी मानो आकाश से गिर पडे। अपने कानो पर उन्हे विश्वास नही हुआ। फटी हुई आँखो से पुत्री को देखते हुए चीख पडे—

"क्या कह रही हो बेटी !"

"आपने सुना तो है पिताजी !"

"तू तो पागल है ! यह कैसे सभव हो सकता है ?"

"दीक्षा ग्रहण करना क्या असभव है पिताजी ! अनादिकाल से मोक्षाभिलाषी महापुरुष ससार से विरक्त होकर मानव-जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये साधना करते चले आए है। यह कोई अनोखी अथवा अनहोनी बात तो है नही।"

"पर इसके लिये बडी दृढता और ज्ञान की आवश्यकता है, तुम अभी बच्ची हो, क्या जानो इन बातो को ?"

"बाबू जी ! मेरे मन की दृढता का परिचय तो आपको मेरे बचपन से ही मिलता आ रहा है। मेरे विवाह का प्रसग स्मरण नही है क्या आपको ? उस समय मै दस वर्ष की ही तो थी। रही बात ज्ञान की, वह मै भगवती के समीप रहकर शनै-शनै प्राप्त कर लूंगी।"

जगतनारायण बाबू अपनी तेजस्वी पुत्री के सामने मानो परास्त होते जा रहे थे। वे भली-भाँति जानते थे कि उनकी दृढ निश्चयी बेटी को ससार की कोई शक्ति झुका नही सकती, मोड नही सकती। आखिर वह पुत्री थी किसकी ? उन्ही की तो, जिसने भरे दरबार मे राजा को सिहासन से उतार दिया था, पारिवारिक-जनो की परवाह न करके अपनी समस्त सपत्ति अकाल पीडितो मे बाँट दी थी और भाई-भाभी के नाराज होने पर उसी क्षण बिना एक पाई भी साथ लिये पत्नी के साथ चल दिये थे। किन्तु आज वे अत्यन्त व्यथित और चिन्तित थे। इसलिये कि उनकी पुत्री सिर्फ उनकी ही पुत्री नही वरन् किसी की पुत्र-वधू भी थी। उस पर उनका नही, उसके श्वसुर का अधिकार था। आज वह पितृकुल की सम्पत्ति नही, श्वसुर कुल की थाती थी। कातरतापूर्वक बोले—

"बेटी ! समझदारी से काम लो। तुम पर तुम्हारी दृढता पर और तुम्हारे उत्तम विचारो पर मुझे गर्व है, किन्तु तुम पर मेरा अधिकार नही। विवाह के पश्चात् कन्या माता-पिता की इच्छानुसार नही, सास-ससुर की आज्ञानुसार चलती है। मैं प्रतापनारायणजी को क्या जवाब दूंगा ?"

"उन्हे भी समझना होगा पिताजी ! आखिर मेरी आत्मा को मोह के वन्धन मे जकडे रहने से उन्हे क्या लाभ होगा ?"

"स्नेह लाभ-हानि का हिसाव नही रखता वेटी ! यह तो मानव मात्र की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। अपने प्रिय-पात्र अथवा छोटो के प्रति वडो का प्यार होना सहज और स्वाभाविक होता है।"

"लेकिन यह स्नेह कव तक रखा जा सकता है ? जव तक यह नर-देह है तभी तक न ? उसके पश्चात् जव आत्मा यह शरीर त्याग कर विभिन्न योनियो मे भटकेगी, उस समय कौन इससे प्रेम करता हुआ इसके साथ रहेगा ? माता-पिता, सास-श्वसुर तथा अन्य सम्वन्धी तो प्रत्येक जन्म मे होते ही है लेकिन अन्त मे कौन किसके काम आता है ? पिताजी, आप मुझे भुलावे मे डालने का प्रयत्न न करे। मै तो सदा के लिये अपनी आत्मा को ससार के प्रपचो से मुक्त करना चाहती हूँ।"

जगतनारायण निर्वाक् खडे रहे। गरिमामयी पुत्री को क्या उत्तर देते ! मुँह से वोल ही नही निकले। आखिर साहस करके उन्होंने अन्तिम प्रयत्न किया। कहा—

"वेटी, एकवार तुम अपने श्वसुर-गृह वापिस चलो जिससे मैं प्रतापनारायणजी को उनकी अमानत एक वार पुन सौप सकूँ। उसके वाद उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपनी इच्छानुसार मार्ग अपनाना।"

"आज प्रथम वार आपमे इतनी कायरता देख रही हूँ पिताजी ! जीवन मे कभी भी, और किसी से भी भयभीत न होने वाले आप क्या आज प्रतापनारायणजी से डर रहे है ? मैं स्वय उन्हे आप पत्र लिख देती हूँ यहाँ आने के लिये। और उनके आ जाने पर उनसे भी

आज्ञा ले लूंगी। आप मुझे लौट चलने के लिये वाध्य न करें। मन को व्यथा पहुँचाने वाली सभी स्मृतियो को मैं अपने हृदय से निकाल देने का प्रयत्न कर रही हूँ, फिर लौटकर उन्ही के बीच मे जाने से क्या लाभ ? आप जानते ही है कि सर्प अपनी केचुली त्याग देने के पश्चात् उस ओर दृष्टिपात नही करता। इसी प्रकार मेरा मन भी अब मोह-माया के ससार मे पुन जाना नही चाहता।"

"जाऊँ भी किसलिये पिताजी ? सात दिन की थी तब माँ छोडकर चली गई और ठीक तरह से बोलना भी नही सीख पाई थी कि आप चले गये। उसके पश्चात् होश सभाला और विवाह किया गया, किन्तु अल्प-काल मे ही सौभाग्य पर बिजली गिर पडी। अब तक का सारा जीवन ही तो व्यथा के बीच गुजरा है, अब और कौन-सा सुख वाकी रहा है जिसे भोगने के लिये आप मुझे लौटा ले जाना चाहते है ?"

"इसलिये, मुझे अब ऐसा मार्ग अपनाने दीजिये, कि जिससे कही कोई दुख न हो, मन आत्म-सतोष से परिपूर्ण रह सके। और कालान्तर मे मेरी आत्मा भव-भ्रमण से छुटकारा पा जाए। पिताजी अब आप विश्राम कीजिये, मैं बाबूजी को पत्र लिखती हूँ।"

जगननारायणजी चिन्ताओ के सागर मे गोते लगा रहे थे। शून्य चित्त से उठकर वे धीरे-धीरे पास वाले कमरे की ओर चल दिये। पिता के जाने के बाद उमा उठी, एक ग्लास पानी पिया और चटाई पर बैठकर ससुर को पत्र लिखने लगी। □

१७

वहूरानी का पत्र

●

"चिट्ठी लेना जी ।"

"देख तो हरिया, किसका पत्र आया है ? प्रतापनारायणजी ने नौकर को आवाज दी ।

"हरिया दौडा-दौडा गया और पत्र लाकर उसने वावू प्रतापनारायणजी को थमा दिया ।

चम्पकराय जैसे होनहार पुत्र के अकाल-काल-कवलित हो जाने से प्रतापनारायणजी का जीवन ही वदल गया था । समस्त सासारिक कार्यो से उन्हे विरक्ति हो गई थी । शनै-शनै उन्होंने व्यापार तथा जमीन-जायदाद की देखभाल से अपना हाथ खीच लिया और समस्त कार्य अपने वडे पुत्र रमेशचन्द्र को वुलाकर सौंप दिया । वाहर का कार्य रमेश के कधो पर आ गया और गृहकार्य वडी वहू सुभाषिणी सम्भालने लगी ।

सुभाषिणी गम्भीर स्वभाव की अत्यन्त सहनशील और गृह-व्यवस्था मे दक्ष नारी थी । देवर के निधन ने यद्यपि उसके हृदय को हिला दिया था, किन्तु सद्य विकसित कली के सदृश अपनी वहन उमा की शोकाकुल स्थिति को देखकर वह हृदय पर वज्र रखती हुई उसे सदा प्रसन्न और सतुष्ट रखने का प्रयत्न करती रहती थी । नाटक-तमाशे आदि सभी मनोरजन के साधनो को उसने तिलाजलि

दे दी और गोटा-किनारी वाले कीमती वस्त्रो को पहनना भी छोड दिया। केवल भाल पर चमकता हुआ सिंदूर ही उसके तन व मन के सौन्दर्य को द्विगुणित बनाए रहता।

परिवार मे उसके ससुर प्रतापनारायण, पति रमेशचन्द्र, देवर सुभाष, ननद रानी और उमा थी। इन सभी की सुख-सुविधा मे जुटी हुई सुभाषिणी अपने श्वसुर-गृह की दीपक बनी हुई थी।

अगहन का महीना प्रारम्भ हुआ था। करीब नौ बजे अत्यधिक सर्दी होने के कारण बाबू प्रतापनारायण नित्यक्रिया आदि से निवृत्त होकर बाहर बरामदे मे आराम कुर्सी पर पैर फैलाए बैठे थे। हलकी सी धूप उन्हे अच्छी लग रही थी। उसी समय सुभाषिणी दूध का गिलास लेकर आ गई। "बाबूजी! दूध ले लीजिये।"

दूध का गिलास हाथ मे लेते हुए प्रतापनारायण ने पूछा—"बडी बहू! बहूरानी को गये कितने दिन हो गये?"

"आज एक सप्ताह हुआ है।"

"तुम कहो तो सुभाष को उसे लेने भेज दूँ?"

"अभी कुछ दिन और रह लेने दीजिये बाबूजी! आर्या गिरिजाकुमारी के दर्शन करके सम्भवत दो-चार दिन पहले ही वह माँ के पास पहुँची होगी। उन लोगो का मन अभी भरा नही होगा।"

"मेरे मन को भी तो सूना-सूना लगता है बेटी! वह यहाँ होती है और मेरी आँखो के सामने चलती-फिरती रहती है तो बडी तसल्ली सी बनी रहती है। चम्पक के चले जाने के बाद उस पर

मेरी ममता और भी वढ गई है। ऐसा लगता है मानो चम्पक मर-कर उसी मे समा गया है।"

"अच्छा, न हो तो आज एक पत्र ही लिख दो वेटी, कि दो-चार दिन मे उसे लिवाने आ रहे है।"

"अच्छा वावूजी !" कहती हुई सुभाषिणी वृद्ध ससुर की व्यथा का अनुमान लगाती हुई अपनी आँखो मे छलक आए आँसुओ को छिपाती हुई रसोईघर की ओर चली गई। रसोईघर मे पहुँचकर उसने उबलते हुए पानी मे दाल धोकर डाली ही थी कि सुभाष ने तेजी से आकर पुकारा—

"भाभी, भाभी !"

"क्या है भैया ?"

"जरा देखो तो आकर, वावूजी को क्या हुआ ?"

"क्या हुआ वावूजी को ?" कहती हुई सुभाषिणी मस्तक पर से आँचल तनिक आगे खिसकाकर लपकी हुई वाहर की ओर भागी। आकर देखा कि कांच का गिलास भूमि पर गिरकर फूट गया है और दूध वहकर सीढियो तक पहुँच चुका है। प्रतापनारायण एक पत्र हाथ मे लिए हुए निश्चेष्ट से आराम कुर्सी पर टिके है और उनकी वन्द आँखो से अश्रुधारा वह रही है।

सुभाष हक्का-वक्का-सा खडा था। एक प्रश्नवाचक दृष्टि उस पर डालकर सुभाषिणी ने ही ससुर से पूछा—

"क्या हुआ वावूजी ?"

प्रतापनारायण कुछ वोले नही। तनिक आँखें खोलकर उन्होंने पत्र समीप ही खडे सुभाष की ओर वढा दिया। सुभाष ने जल्दी-जल्दी पत्र पडा और पढते ही चीख पडा—

"नही, नही, ऐसा नही हो सकता ?"

"क्या नही हो सकता ? बात क्या है ? किसका पत्र है, बताओ तो सही ।" सुभाषिणी ने गम्भीर स्वर से प्रश्न किया—

छोटी भाभी का पत्र आया है अशोका से लिखा है—"मैं मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को भगवती गिरिजाकुमारी के समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ । आप सब आकर मुझे आज्ञा और आशीर्वाद प्रदान करें ।"

सुभाषिणी सुनकर स्तब्ध रह गई । ससुर की मानसिक अवस्था का उसे भली-भाँति ज्ञान हो गया । कुछ कहना ही चाहती थी कि सुभाष पुन उत्तेजित होकर कह उठा—

"ऐसा कभी नही हो सकता, मैं हरगिज यह न होने दूँगा ।"

सुभाषिणी ने हृदय मे उफनते हुए भावो को दबाया और धीरतापूर्वक देवर की उत्तेजना शान्त करते हुए कहा—

"अपने भाई साहब को बुलाकर लाओ भैया ! घबराओ मत ! हम सब अशोका चलेंगे और उमा को समझाने का प्रयत्न करेंगे ।"

"और हरिया ! तू सामान वगैरह इकट्ठा करके बाँधना शुरू कर । जानता तो है न, क्या-क्या साथ जाएगा ?" कहती हुई वह हरिया की ओर मुडी । पर देखती क्या है कि बचपन से इस घर मे पला हुआ हरिया भी सिसकियाँ ले रहा है ।

रोना क्यो न आता ? सभी कुछ देखा था उसने । सुभाषिणी के विवाह पर उमा का इस घर मे प्रथम आगमन, विवाह के पश्चात् उसके प्रफुल्ल और परिहासपूर्ण व्यक्तित्व से मुखरित घर का सम्पूर्ण वातावरण, चम्पक का उसे पीहर न भेजना, पिता के निवा जाने

पर चम्पक की शोकाकुल स्थिति और ठीक उमा के लौटने के समय छोटे वावू का निधन। क्या नही जानता था वह ? कितनी वार उमा की विक्षिप्त-सी अवस्था को देखकर वह छिप-छिप कर नही रोया था।

कहने को हरिया नौकर था, पर घर मे उसका स्थान परिवार के एक सदस्य जैसा ही था। इस घर के अतिरिक्त वह और कही अपना घर नही मानता था। यहाँ न कोई उसे पराया समझता और न वह स्वय आपको पराया मानता। इसी कारण वह अपने आपको रोक नही सका और फूट-फूट कर रो पडा।

उस समय की विषम स्थिति के कारण सुभाषिणी का धैर्य वैसे ही छूट रहा था। कृत्रिम क्रोध से उसने सर्वप्रथम हरिया को डाँटा—

"सुभाष भैया तो तेज मिजाज के है ही पर तू भी हरिया, पागल हो गया है। चल तू भी हमारे साथ, वहाँ पहुँचकर अपनी छोटी वहूजी के सामने ही रोना!" और फिर ससुर को लक्ष्य कर के वोली—

"वावूजी! आप भी उठिये। स्नान करने का समय हो गया है। आपको इतनी अधीरता शोभा नही देती। हम सव चल ही तो रहे है वहाँ।"

व्यथित प्रतापनारायण विना एक शब्द भी कहे उठकर अन्दर की ओर चल दिये। विभिन्न आशकाओ मे डूवी हुई सुभाषिणी ने एक गहरा निश्वास छोडा और धीरे-धीरे जाकर भोजन की व्यवस्था मे जुट गई।

तैयारियाँ सम्पूर्ण हो जाने के पश्चात् अगले दिन प्रातःकाल प्रतापनारायण सपरिवार अशोका के लिये रवाना होने लगे। देवपुरी छोटा गाँव था और ट्रेन के रास्ते से कुछ हटकर। अतः वहाँ से ट्रेन नहीं पकड़ी जा सकती थी। यह तय हुआ था कि अजयनगर तक बस से और वहाँ से ट्रेन द्वारा जाया जाएगा। साढ़े सात बज चुके थे और आठ बजे बस रवाना होती थी। रमेशचन्द्र ने आकर कहा—

"बाबूजी वक्त हो गया है। अब हमें घर से चल देना चाहिये।"

"हाँ बेटा! मैं तैयार हूँ। बड़ी बहू को बुलाओ और हरिया से सामान बाहर निकालने को कहो। पर सुभाष कहाँ है? वह दिखाई नहीं दे रहा।"

"आ जाएगा यहीं-कहीं होगा।"

पर सुभाष नहीं आया, और सब यह सोचकर कि सीधा मोटर स्टैण्ड आ जाएगा, घर से चल दिये। वक्त भी अधिक नहीं था, बस के रवाना होने में पाँच-सात मिनट बाकी रहे तब तक भी सुभाष वहाँ नहीं पहुँचा। प्रतापनारायण और रमेशचन्द्र परेशान हुए। पर इतने में ही रानी की दृष्टि जल्दी-जल्दी आते हुए सुभाष पर पड़ी। उसने पिता को बताया कि भैया आ गये।

"कहाँ थे सुभाष तुम अभी तक?" झुंझलाते हुए प्रताप-नारायणजी ने छोटे बेटे से कहा—"जल्दी करो बस रवाना होने को है।"

"मैं अभी नहीं चलूँगा पिताजी! एक-दो दिन बाद आऊँगा।"

"क्यो ?" प्रतापनारायण चौंके ।

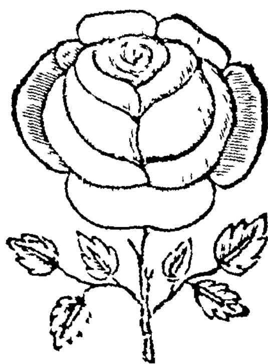
"कुछ जरूरी काम है ।"

"ऐसा कौनसा जरूरी काम आ पडा भाई ? साथ ही चलो न ! रमेश ने भाई से आग्रह किया ।

"नही भैया ! काम कुछ ऐसा ही आवश्यक है । मै वाद मे आऊँगा । आऊँगा अवश्य, आप चिन्ता न करे ।"

उसके शब्दो की दृढता और आंखो की एक विचित्र-सी चमक ने सभी को अवाक् कर दिया, पर कोई कुछ कहता उसके पहले ही मोटर होर्न वजाती हुई रवाना हो गई ।





१८

ज्योतिषी महाराज



प्रतिदिन की तरह जगतनारायण बाबू परमविदुषी साध्वी गिरिजाकुमारी का प्रवचन सुनकर उमा के साथ अपने आवास की ओर लौट रहे थे। मार्ग मे एक स्थान पर भीड और मनुष्यो के शोरगुल के बीच 'वाह-वाह' की ध्वनियाँ सुनकर दोनो की दृष्टि उस ओर गई।

"क्या बात है भाई ! क्या हो रहा है यहाँ पर ?" जगन-नारायण ने सहज ही एक व्यक्ति से पूछ लिया।

"एक ज्योतिषी है बाबू साहब ! भूत और भविष्य की सारी बाते दर्पण मे दिखाई देने वाले चेहरे की तरह स्पष्ट बता रहा है। अनेको व्यक्ति भूतकाल की बातो को जानकर चकित हुए है और भविष्य के बारे मे पूछ-ताछ कर रहे है। और भी बहुत सी चमत्कार पूर्ण कलाएँ वह दिखा रहा है। वास्तव मे बडा पहुचा हुआ अद्भुत व्यक्ति है।"

"अच्छा ।" कहते हुए जगननारायण ने पुन चलने के लिये कदम उठाया किन्तु उमा की कौतूहल वृत्ति जाग गई थी, अत उसने आग्रह किया—

"पिताजी ! चलिये न ! तनिक हम भी देखे कि क्या ये सब बातें सच है ?"

"विलम्ब हो जायगा बेटी! आज प्रतापनारायणजी, सुभाषिणी और जमाई बाबू वगैरह सब आने वाले है।"

"अभी तो बहुत समय है। चलिये पाँच मिनट लगेगे।"

"अच्छा चलो तुम्हारी इच्छा है तो।" बेटी का मन वे दुखाना नही चाहते थे।

सम्भ्रान्त व्यक्तियो को आते देखकर मनुष्यो ने सम्मानपूर्वक उन्हे स्थान दिया और धीरे-धीरे शोरगुल शान्त हो गया। लगता था कि वह अद्भुत व्यक्ति अपने बहुत से करिश्मे दिखा चुका था। उस समय उसने एक बडा-सा पत्थर उठाया और उसे अपनी हथेलियो के बीच मे घुमाने लगा। पत्थर ज्यो-ज्यो घूमता गया, त्यो-त्यो वह छोटा होता चला गया। सभी की चकित और प्रशसात्मक दृष्टि उस पर केन्द्रित थी। देखते ही पत्थर इतना छोटा हो गया कि वह हथेलियो के बीच मे दबाया जा सके। अब उसने बाएँ हाथ की हथेली पर उसे रखा और दाहिने हाथ के अगूँठे से दबा दिया। सब लोग अवाक् रह गये यह देखकर कि उस छोटे से पत्थर मे से रक्त की धारा बहने लगी और तब तक बहती रही जब तक कि उसने अपना अँगूठा पत्थर पर से हटा नही लिया।

अपना आखिरी कमाल दिखाकर उसने वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियो को हाथ जोडे। एक-दो मिनट मे ही वहाँ पैसो का ढेर लग गया और भीड बिखर गई। अब उसने बाबू जगतनारायण और उमा की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—

"बाबूजी, आप बहुत देर करके आए है। कुछ और दिखाऊँ आपको?"

"नही, नही। और कुछ दिखाने की आवश्यकता नही है।

यह बताओ कि क्या तुम ज्योतिष विद्या भी जानते हो ?" उमा ने शीघ्रतापूर्वक पूछा।

"हाँ जानता हूँ, बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। वास्तव में मैं ज्योतिषी ही हूँ। लेकिन उस एक विद्या से पेट नहीं भरता और परिवार का पालन-पोषण नहीं हो पाता इसलिये यह जादूगरी भी सीख ली है।"

"अच्छा तो आप मेरे बारे में कुछ बातें बताओ।" उमा ने उत्सुकतापूर्वक कहा।

"पहले अपना हाथ दिखाओ बहन !"

उमा के हाथ फैला देने पर ज्योतिषी ने उसके हाथ की रेखाओं को बड़ी सावधानी से देखा और अपनी अँगुलियों पर बहुत देर तक कुछ गणनाएँ करता रहा। फिर बोला—

"मातृरेखा प्रारम्भ में ही धोखा दे रही है। बचपन में ही माता का वियोग हुआ होगा।"

"हाँ और ?"

"और विवाह के बाद अल्प-काल में ही पति का निधन, अत्यन्त मानसिक अशान्ति बनी रहती है।"

"सो तो बनी रहती है पर तुम मेरे भविष्य के बारे में कुछ बताओ न !"

"भविष्य तुम्हारा बहुत उज्ज्वल है बहन ! बहुत मान-सम्मान और सुख है।"

"यह क्या गोल-मोल बातें बना रहे हो ?" साफ-साफ बातें बताओ। उमा ने उसकी बात काटी।

"खास-खास बाते कौनसी जानना चाहती हो ? पूछो तभी तो मैं बताऊँ न !"

"यह बताओ कि मैं साध्वी बन सकूँगी या नही ? और बन गई तो यह जीवन कैसा बीतेगा ?"

ज्योतिषी यह सुनते ही भौचक्का हो गया और आँखे फाड-फाडकर कभी उमा का और कभी जगतनारायणजी का मुँह देखने लगा मानो कह रहा हो कि क्या इतनी सुन्दर और सुकोमल कन्या साध्वी बनने योग्य है ।

"देख क्या रहे हो ? जल्दी बताओ !" व्यग्रतापूर्वक बोली ।

ज्योतिषी पुन गम्भीरता से उमा के हाथ की रेखाएँ देखने लगा और उसके मुखमडल की ओर दृष्टि डालकर बोला—

"यह तो असम्भव दिखाई देता है ।"

"क्या असम्भव दिखाई देता है ?" गुस्से से उमा ने उसी के शब्दो को दोहराया ।

'तुम्हारा साध्वी बनना । और बन गई तो सयम का पालन करना ।"

सर्प पर पैर पड जाने पर मनुष्य जिस प्रकार चौककर पैर हटा लेता है, उसी प्रकार उमा ने हस्तरेखाएँ दिखाने के लिए बढाया हुआ हाथ खीच लिया ।

"यही ज्योतिष है तुम्हारा ? ऐसी ही भविष्यवाणियाँ करके लोगो को ठगते हो तुम ?'

"पर मैं क्या कर सकता हूँ ? आपकी रेखाएँ कहती है ।"

रेखाएँ नही कहती, तुम कहते हो ! लगता ह कि झूठ और फरेब का आधार लेकर तुम सही मार्ग पर जाने वालो को भविष्य का डर दिखाकर विचलित कर देते हो । अगर इसी गाँव मे रहे तो याद

यह वताओ कि क्या तुम ज्योतिष विद्या भी जानते हो ?" उमा ने शीघ्रतापूर्वक पूछा।

"हाँ जानता हूँ, वहुत अच्छी तरह जानता हूँ। वास्तव मे मैं ज्योतिषी ही हूं। लेकिन उस एक विद्या मे पेट नही भरता और परिवार का पालन-पोषण नही हो पाता इसलिये यह जादूगरी भी सीख ली है।"

"अच्छा तो आप मेरे वारे मे कुछ वाते वताओ।" उमा ने उत्सुकतापूर्वक कहा।

"पहले अपना हाथ दिखाओ वहन !"

उमा के हाथ फैला देने पर ज्योतिषी ने उसके हाथ की रेखाओ को वडी सावधानी से देखा और अपनी अँगुलियो पर वहुत देर तक कुछ गणनाएँ करता रहा। फिर वोला—

"मातृरेखा प्रारम्भ से ही धोखा दे रही है। वचपन मे ही माता का वियोग हुआ होगा।"

"हाँ और ?"

"और विवाह के वाद अल्प-काल मे ही पति का निधन, अत्यन्त मानसिक अशान्ति वनी रहती है।"

"सो तो वनी रहती हे पर तुम मेरे भविष्य के वारे मे कुछ वताओ न !"

"भविष्य तुम्हारा वहुत उज्ज्वल है वहन ! वहुत मान-सम्मान और सुख से ।"

"यह क्या गोल-मोल वाते वता रहे हो ?" खास-खास वाते वताओ। उमा ने उसकी वात काटी।

"खास-खास बाते कौनसी जानना चाहती हो ? पूछो तभी तो मै बताऊँ न !"

"यह बताओ कि मै साध्वी बन सकूँगी या नही ? और बन गई तो यह जीवन कैसा बीतेगा ?"

ज्योतिषी यह सुनते ही भौचक्का हो गया और आँखे फाड-फाडकर कभी उमा का और कभी जगतनारायणजी का मुँह देखने लगा मानो कह रहा हो कि क्या इतनी सुन्दर और सुकोमल कन्या साध्वी बनने योग्य है ।

"देख क्या रहे हो ? जल्दी बताओ !" व्यग्रतापूर्वक बोली ।

ज्योतिषी पुन गम्भीरता से उमा के हाथ की रेखाएँ देखने लगा और उसके मुखमडल की ओर दृष्टि डालकर बोला—

"यह तो असम्भव दिखाई देता है ।"

"क्या असम्भव दिखाई देता है ?" गुस्से से उमा ने उसी के शब्दो को दोहराया ।

'तुम्हारा साध्वी बनना । और बन गई तो सयम का पालन करना ।"

सर्प पर पैर पड जाने पर मनुष्य जिस प्रकार चौककर पैर हटा लेता है, उसी प्रकार उमा ने हस्तरेखाएँ दिखाने के लिए बढाया हुआ हाथ खीच लिया ।

"यही ज्योतिष है तुम्हारा ? ऐसी ही भविष्यवाणियाँ करके लोगो को ठगते हो तुम ?'

"पर मै क्या कर सकता हूँ ? आपकी रेखाएँ कहती हैं ।"

रेखाएँ नही कहती, तुम कहते हो ! लगता है कि झूठ और फरेब का आधार लेकर तुम सही मार्ग पर जाने वालो को भविष्य का डर दिखाकर विचलित कर देते हो । अगर इसी गाँव मे रहे तो याद

रखना कि तुम्हारे ज्योतिप को असत्य सावित कर आज के चौथे दिन मैं साध्वी-जीवन अपना लूंगी। और अगर जिन्दा रह जाओ तो कुछ वर्षों वाद मेरे उस जीवन को भी देख लेना। दृढ निश्चयी मनुष्य अपने भाग्य को भी वदल सकता है, फिर तुम्हारे जैसे ज्योतिपी द्वारा की गई भविष्य-वाणी को वदल डालना क्या कठिन है।" कहती हुई उमा पिता की ओर पलटी—

"पिताजी चलिये अव, काफी देर हो गई है।"

कुछ कौतुकपूर्वक जगतनारायण वेटी का क्रोध और भविष्य-वेत्ता की निरीहता को देख रहे थे। उसे दक्षिणा देने के लिए उन्होने अपनी अचकन की जेव मे हाथ डाला और पूछा—"भाई! क्या दूं तुमको ?"

ज्योतिपी निर्वाक् खडा था, हाथ जोडकर वोला—"आज आपसे कुछ नही लूंगा वावूजी! मेरे अहोभाग्य, कि आपकी कृपा से साक्षात् देवी 'अम्वा' के दर्शन कर लिये। आज का दिन मेरा धन्य है।"

किन्तु जगतनारायणजी माने नही। उन्होने आग्रहपूर्वक उसके हाथ मे पॉच रुपये का नोट थमा दिया और पुत्री के साथ चल पडे।

ज्योतिपी ने न जाने क्या सोचकर जहाँ उमा खडी थी उस स्थान को छूकर हाथ मस्तक पर लगाया और निर्निमेप दृष्टि से उसे आँखो से ओझल होने तक देखता रहा।



१९

दोनों कुल दीप्त करना



ट्रेन आने मे अभी पन्द्रह मिनट बाकी थे किन्तु स्टेशन पर काफी चहल-पहल हो रही थी। यात्रियो का शोरगुल और पान, बीडी चाय तथा खोमचे वालो की कर्कश आवाजे बाबू जगत-नारायणजी के अशान्त हृदय को और अधिक बेचैन बना रही थी। प्लेटफॉर्म पर एक किनारे की बैंच के आखिरी सिरे पर बैठे हुए वे गाडी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु उस प्रतीक्षा मे न उल्लास था और न ही उत्सुकता थी। किस प्रकार प्रतापनारायणजी का सामना करूँगा और उनके प्रश्नो का क्या उत्तर दूंगा ? यही विचार उनके हृदय को मथ रहे थे।

किन्तु समय किसी की परवाह नही करता। महीने, वर्ष और युग भी अपनी चाल से बीतते चले जाते है। फिर पन्द्रह मिनट तो उनके सामने क्या बिसात रखते थे। सीटियाँ बजाती हुई ट्रेन, धडधडाती हुई आकर धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म पर रुक गई। जगत-नारायणजी शीघ्रतापूर्वक कई डिब्बो को देखते हुए एक सैकेण्ड क्लास के डिब्बे के सामने आकर रुक गए। देखा सुभाषिणी और रानी डिब्बे से उतरकर प्लेटफॉर्म पर खडी है और अपने बडे पुत्र रमेशचन्द्र की सहायता से छोटा-मोटा सामान प्लेटफॉर्म पर

प्रतापनारायणजी स्वय रख रहे है। सूटकेश तथा बिस्तरो को कुली बाहर ला रहे थे।

"नमस्कार ।" शब्द कानो मे पडते ही प्रतापनारायणजी ने पीछे मुडकर देखा। वरवस लाई हुई म्लान मुस्कराहट चेहरे पर लिये हुए जगतनारायणजी खडे थे। निमेष मात्र मे ही उन्होने अपनी मातृहीना वहू के पिता की व्यथा, और उनमे मिलने के कारण होने वाले सकोच को परख लिया।

जगतनारायणजी को कुछ भी कहने का मौका न देते हुए उन्होने उनके दोनो हाथो को अपने हाथो मे ले लिया और बोले—

"आपको कुछ भी कहने की आवश्यकता नही है जगतनारायण बाबू! मैं पिता भी हूँ, आपके सीने मे धडकने वाले दिल को पहचानता हूँ। होनहार पर किसी का वश नही होता। मनुष्य सिर्फ उसे बदलने का प्रयत्न ही कर सकता है।" कहते हुए ट्रेन के डिब्बे मे कुछ सामान न रह जाय। इसमे लगे हुए पुत्र को आवाज देते हुए कहा—

"रमेश, बाहर आओ अपने बाबूजी को प्रणाम करो।" सुनते ही रमेशचन्द्र ने शीघ्रता मे बाहर आकर जगतनारायणजी के पैर छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया। सुभाषिणी इसमे पूर्व ही पिता की चरण-रज मस्तक पर लगा चुकी थी। जगतनारायण प्रतापनारायणजी के हृदय की गम्भीरता और विशालता का अनुभव कर गद्गद हो उठे और सबको लेकर स्टेशन से बाहर आए। दो तॉगो मे बैठकर सब निवास स्थान की ओर रवाना हुए। स्टेशन से रास्ता पाँच-सात मिनट का था। शीघ्र ही सब निर्दिष्ट स्थल पर पहुँच गये।

उमा सबके लिए खाना बनाकर बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। तॉगो के रुकते ही दोनो समधी बाहर से सामान

मगवाने और रखवाने की व्यवस्था मे लगे। पर सुभाषिणी और रानी तॉगो से उतरते ही अन्दर आ गई ।

"अच्छी हो दीदी ?" कहते हुए उमा ने बहन को प्रणाम किया। किन्तु इतने मे ही रानी आकर उमा से लिपट गई।

"भाभी !"

"ओह रानी ! आ गई तुम ? उमा ने अत्यन्त स्नेह से ननद का चेहरा अपने हाथो मे ले लिया।

"भाभी घर चलो !"

"कहाँ है तुम्हारा घर ?"

"देवपुरी चलो न भाभी ।"

"वह तो बाबूजी का घर है। तुम अपना घर बताओ ! वहाँ ले चलोगी क्या ?" उमा परिहास करके रानी को शान्त रखना चाहती थी पर सफल नही हो सकी। रानी रो पडी और उसने भाभी के हृदय मे अपना मुँह छिपा लिया।

"उम्मी, बाबूजी आ रहे है।" कहती हुई सुभाषिणी ने साडी को सिर पर आगे की ओर खीच लिया, तथा उमा होले से रानी को अलग कर ससुर की ओर बढी। उनके चरणो का स्पर्श किया। प्रतापनारायणजी ने क्षणभर के लिए बडी साध से लाई हुई बहू के आधे ढँके शरदिन्दु के समान उज्ज्वल चेहरे की ओर देखा। अन्तर का समस्त स्नेह उस समय मानो उनके नेत्रो मे आकर इकट्ठा हो गया। धीरे-धीरे आकर वे कमरे मे एक कुर्सी खीचकर बैठ गए। बडी कठिनाई से बोले—

"बहूरानी, घर नही चलोगी बेटी ?"

उमा मौन रही। अब तक कभी उसने ससुर से बात नही की

थी अत वह असहाय-सी कभी सुभाषिणी और कभी रानी की ओर देखने लगी।

यह देखकर प्रतापनारायणजी ने आग्रहपूर्वक कहा—

"आज अपने मन की बात तुम स्वय मुझसे कहो बेटी ! मैं भी तुम्हारा पिता हूँ, मुझसे दुराव कैसा ?"

बहुत ही सकुचित होकर उमा ने धीरे-धीरे उत्तर दिया-- "बाबूजी, आप मुझे कल्याणकारी मार्ग पर चलने की अनुमति और आज्ञा दीजिये।"

"लेकिन मेरा घर सूना हो जाएगा बहूरानी ! मेरे दिन किस प्रकार कटेगे ? क्या तुम्हे हम लोगो से ममता नही रही।"

"ऐसा न कहिये बाबूजी, आपका स्नेह सदा कवच बनकर मुझे शक्ति देता रहा है। मुझे सासारिक दु खो से बचाता रहा है।"

"फिर ?"

"फिर भी मन के दु खो से वह मेरी रक्षा नही कर सकता। मेरा मन सदैव जन्म-जन्मान्तर मे आत्मा को पीडा पहुँचाने वाले दुखो से भयभीत बना रहता है। एक जीवन मे भी आत्मा मोह के वशीभूत होकर इतने कर्मो का बध कर लेती है कि उनके परिणाम-स्वरूप अनेक जन्मो तक भोगने पर भी उनका अन्त नही हो पाता।"

"बेटी, आत्मा की मुक्ति के लिए प्रयत्न तो तुम घर मे रहकर भी कर सकती हो। वहाँ रह कर ही यथोचित साधना करती रहना, मैं कभी बाधा नही डालूँगा।"

"बाबूजी, भूख से पीडित व्यक्ति की क्षुधा रोटी के एक टुकडे से शान्त नही हो सकती। इसी प्रकार आत्मा की मुक्ति भी नाम-मात्र की साधना से नही होती। उसके लिए एकाग्र और पूर्ण साधना की आवश्यकता है।"

"पर अभी तो तुम्हारी उम्र सिर्फ पन्द्रह वर्ष की है। कुछ समय बाद तुम्हे सयम ग्रहण करने का विचार करना चाहिए। इतनी शीघ्रता मत करो वेटी।" प्रतापनारायण अत्यन्त व्याकुल होकर बोले।

"और इसी बीच अगर काल आ गया तो मेरी उम्र का हवाला देकर उसे कौन रोकेगा बाबूजी? वह तो उम्र की परवाह करता नही।"

"तुम मेरे कहने का तात्पर्य समझी नही उमा। सयम ग्रहण कर लेने के बाद तो समग्र विश्व ही सन्तो का घर हो जाता है। आर्याओ को भी सतत भ्रमण करना पडता है। जन-शून्य, नितान्त एकाकी मार्गो पर चलना, भले-बुरे स्थानो मे निवास करना कितना कठिन है। ऐसे स्थानो पर चोर, डाकू तथा अनेक पथभ्रष्ट, निकृष्ट व्यक्तियो का खतरा रहता है और तुम ··?"

"ओह, आप इन बातो की आशका न करें। ये सब भय कायर और निर्बल आत्माओ के लिए होते है। वैसे खतरे और भय तो अटवी और अट्टालिका दोनो जगहो मे समान ही है बाबूजी! जिन्हे प्राणो का मोह होता है वे भयभीत होकर अपने मार्ग से च्युत हो सकते है, किन्तु जिन्हे प्राणो पर ममत्व नही होता, वे प्राण देकर भी अपने प्रण की रक्षा कर लेते है।"

"पर बहूरानी! दुनिया क्या कहेगी? हमारे वश मे तो कभी किसी ने यह मार्ग ग्रहण नही किया। कौन-सा अभाव है हमारे यहाँ बताओ तो?"

"सच्चा साधक किसी अभाव के कारण साधना-पथ नही अपनाता। अन्यथा बडे-बडे राजा-महाराजा करोडो की सम्पत्ति वाले

और अनेकानेक चक्रवर्ती सम्राट अपने छ खड के राज्य को तृणवत् त्याग कर साधु क्यो वनते ?"

"रही वात वश की, इस विषय मे आप गम्भीरतापूर्वक विचार करे। कोई उत्तम कार्य भले ही कुल मे पहले कभी न हुआ हो, किन्तु वाद मे भी अगर होता है तो वह उत्तम ही माना जाता है, निकृष्ट नही। मेरे प्रवज्या लेने से आपके कुल का गौरव घटेगा नही पिताजी, वरन् वढेगा ही। आपके निर्मल कुल को कभी मेरे कारण उपहास का पात्र वनने का अवसर आए, उससे पहले ही मैं प्राण त्याग दूँगी"

वावू प्रतापनारायणजी पुत्रवधू की दृढता और बुद्धिमत्ता से परास्त होते जा रहे थे कि उसी समय वाहर से शोरगुल की आवाज आई और साथ ही उनके वडे पुत्र रमेशचन्द्र ने तेजी से आकर कहा—

"वावूजी! वाहर पुलिस आ गई है।"

"पुलिस ? पुलिस किसलिए आई है ?"

"जॉच करने।"

"कैसी जाँच ?" वे गरज उठे। उनके स्वर की गम्भीर गर्जना से सभी के दिल दहल गये।

"सुभाप ने आपकी ओर से पुलिस को रिपोर्ट कर दी है कि मेरी पुत्र-वधू उमा को उसके पिता जगतनारायणजी उसकी इच्छा के विरुद्ध वलपूर्वक साध्वी धर्म की दीक्षा दिला रहे है।"

"कहाँ है सुभाप ?"

"वाहर।"

"उसे अन्दर बुलाओ और सिपाहियो को बाहर रोक दो !" प्रतापनारायणजी के नेत्रो के समक्ष देवपुरी से रवाना होते समय का वह दृश्य आ गया, जिस समय सुभाष ने आवश्यक कारण बताकर उनके साथ अशोका आने से इन्कार कर दिया था। पुत्र के अन्दर आते ही वे रोषपूर्वक बोले—

"सुभाष, यह क्या किया तुमने ?"

"जो करना चाहिए था ।"

"तो तुम्हे यही करना चाहिये कि मेरे दरवाजे पर पुलिस बुलाओ और जगतनारायणजी को जलील करो ?"

"लेकिन उन्होने भाभी को यहाँ लाकर साध्वी बनाने के लिए उकसाया है।"

"झूठ है यह, तुम पिता के दिल को कैसे पहचान सकते हो ? उसे एक पिता ही समझ सकता है।"

"अगर ऐसा है तो फिर वे अपनी पुत्री को कठिन व्रत अगीकार करने क्यो दे रहे है ? सयम पालन करना सरल बात है क्या ? जगतनारायणजी स्वय दीक्षा लें तब मालूम पडे।"

"बकवास मत करो !" प्रतापनारायणजी लगभग चीख पडे। किन्तु जिनके लिए यह व्यग किया गया था वे जगतनारायणजी कही दूर थे नही, समीप ही कुर्सी पर बैठे थे।

आरम्भ से अन्त तक उन्होंने ससुर और बहू की बातचीत सुनी थी पर बोले बीच मे एक शब्द भी नही थे। और अब सुभाष का तीखा व्यग सुनकर भी उन्होंने कुछ नही कहा। सिर्फ उनका चेहरा पत्थर के समान कठोर दिखाई दे रहा था और उससे किसी दृढ निश्चय की झलक मिलती थी।

"बाबूजी, मैं भाभी को दीक्षा लेने नहीं दे सकता। किसी भी प्रकार उन्हे पुन घर ले जाना चाहता हूँ।" सुभाप ने अधीरता से कहा।

"क्या करोगे ले जाकर ? सूर्य को घर मे बन्द करके नहीं रखा जा सकता। उसका प्रकाश सारे ससार के लिए होता है। उमा ने केवल हमारे घर के लिये ही जन्म नहीं लिया है। वह सम्पूर्ण जगत की ज्योति बनेगी।" कहते हुये प्रतापनारायणजी ने बाहर जाने के लिए कदम उठाया। किन्तु उनकी ओर देखते ही सुभाप चीख उठा—

"नही बाबूजी, नहीं ! मैं जानता हूँ आप बाहर जाकर क्या करेंगे। मैं आपको बाहर नही जाने दूँगा।" कहते हुए उसने अपने दोनो हाथो से पिता के पैर पकड लिये। लेकिन बात के धनी बाबू प्रतापनारायण रुके नही। सुभाप को धकेलते हुए उनके धीर कदम बाहर तक बढते चले गये।

ज्यो ही उनकी भव्य और गौरवपूर्ण आकृति दरवाजे पर दिखाई दी, पुलिस इन्सपैक्टर और सिपाही सभी ससम्मान मत्र-चालित से खडे हो गये। प्रतापनारायण जी सभी को पहचानते थे। बोले—

"क्यो रामसिंह, क्या बात है ?"

"हुजूर, हम जानना चाहते हैं।"

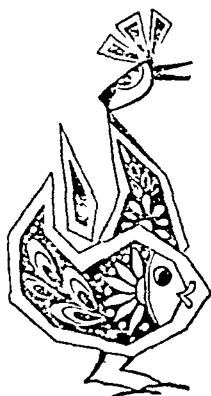
"कुछ भी जानने की आवश्यकता नहीं है आप लोगो को। मेरी पुत्रवधू अपनी इच्छा से दीक्षा ले रही है, और मैंने उसे आज्ञा दी है। इमी क्षण मेरे नाम से की हुई रिपोर्ट खारिज कर दी जाय।"

"जो आज्ञा · · !" कहते हुए इन्सपैक्टर ने मस्तक झुकाया और अपने साथियो सहित उलटे पैरो चल दिया ।

जुए मे सर्वस्व हारे हुए धर्मराज युधिष्ठिर की तरह प्रताप-नारायणजी जब निष्प्रभ होकर अन्दर आये तो उनकी आँखो मे अश्रु-कण स्पष्ट झलक रहे थे ।

हर्ष और शोक से विह्वल, रोती हुई उमा उनके चरणो मे लोट गई । रुमाल से आँसू पोछते हुए प्रतापनारायणजी ने आशीर्वाद दिया—

"दोनो कुलो को दीप्त करना बेटी !"



२०

पिता और पुत्री एक ही पथ पर



अगहन मास मे कृष्ण पक्ष के ग्यारहवे दिन अशोका ग्राम की चहल-पहल दर्शनीय थी। बाबू प्रतापनारायणजी के समस्त सम्बन्धी तथा उमा के माता-पिता आदि सभी स्वजन-परिजन दीक्षा समारोह मे सम्मिलित होने के लिये आ चुके थे। जोरो से तैयारियाँ हो रही थी। सभी किसी न किसी कार्य मे व्यस्त थे। सबके हृदयो मे हर्ष और विषाद का अनोखा-सम्मिश्रण था।

प्रात काल आठ बजे माता के द्वारा कराया जाने वाला अन्तिम भोजन 'वीरथाल' का आयोजन, नौ बजे दीक्षा जुलूस का प्रस्थान और दस बजे दीक्षा कार्य आरम्भ होने का कार्यक्रम था।

सगी मा से भी अधिक प्यार करने वाली गुणवती ने हाहाकर करते हुए हृदय, किन्तु म्लान मुस्कान युक्त चेहरे से एक बडे-से थाल को नाना प्रकार के उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थो से भर दिया। आज वह अपनी प्राणो से भी प्रिय पुत्री को अन्तिम बार अपने हाथो मे भोजन कराने वाली थी। पुन ऐसा अवसर जीवन मे आने वाला नही था। सम्पूर्ण स्नेह को बटोर कर आज वह बेटी पर उडेल देगी। समय होता देखकर उसने सुभाषिणी को बुलाया और सभी समवयस्काओ सहित उमा को भोजन करने के लिये लाने का आदेश दिया।

सुभाषिणी अन्दर गई। देखा, कमरा खचाखच भरा हुआ था।

उमा तैयार थी और उसका सनातन हँसमुख चेहरा और भी खिला हुआ था, कमल के समान। सुभाषिणी अत्यन्त सहनशील थी किन्तु आज उसका मन बहन के लिये मूक रुदन कर रहा था। किसी तरह भरे गले से बोली—

"उम्मी चल, समय हो गया है।"

"चलो दीदी, पर देखो न रानी को! इसे कैसे समझाऊँ ?" रात भर रोते रहने के कारण रानी की आँखें फूल की तरह हो गई थी। वह उमा को जकडे हुए बैठी थी, किसी भी प्रकार छोडने को तैयार नही थी। सुभाषिणी ने बडी कठिनाई से ननद को समझा-बुझा-कर अलग किया और भीडभाड के बीच मे से उमा को 'वीर-थाल' के पास लाई।

परिवार के सभी व्यक्ति वहाँ इकट्ठे थे। सुभाष मन-मारे एक ओर खडा था। उमा ने देवर के गहरे स्नेह को परखा, पास आई और मुस्कराते हुए कहा—"भैया! आज भी नाराज रहोगे ? मेरे साथ थोडा सा खाओगे नही ?"

सुभाष ने उत्तर नही दिया। भावहीन चेहरे से भाभी को देखता रहा। लग रहा था जैसे उसकी समस्त खुशियो पर पाला पड गया हो।

देवर को अपने साथ खाने का निमन्त्रण देकर वह ससुर की ओर मुडी। बाबू प्रतापनारायणजी के शरीर का तो प्रत्येक रोमकूप ही जैसे जिह्वा बनकर आशीर्वाद दे रहा था। उमा ने प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति से ससुर के चरणो का स्पर्श किया और धीरे-धीरे उठ-कर चारो ओर अपनी निगाह फैलाई। बुद्धिमान प्रतापनारायणजी पुत्रवधू की दृष्टि का तात्पर्य समझ गये। सुभाष की ओर देखकर बोले—

"जगतनारायणजी कहाँ है ? जाओ सुभाप, दौडकर उन्हे बुला लाओ ।"

सुभाप और साथ ही कई व्यक्ति जगतनारायणजी को बुलाने के लिये दौडे, किन्तु शीघ्र ही वापिस लौट आए । मालूम हुआ कि जगतनारायणजी घर मे नही है। कल से ही किसी ने उन्हे नही देखा ।

उमा का खिला हुआ चेहरा पलक मारते ही मानो मुरझा गया, किन्तु उसी क्षण वाहर से शोर-गुल के बीच आवाज आई— "जगतनारायणजी आ गये ।"

सवकी उत्सुक निगाहे दरवाजे की ओर उठ गई। पर शीघ्र ही वे विस्मय से भर गई, यह देखकर कि जगतनारायणजी एक और वडा विशाल थाल नौकरो से उठवाये हुए चले आ रहे हैं ।

अत्यन्त चकित होकर प्रतापनारायणजी ने पूछा—

"यह क्या जगतनारायणजी ! यह दूसरा थाल किसलिये ?"

"यह मेरे लिये है। यह 'वीर-थाल' मेरा है प्रतापनारायण वावू ! मैं भी दीक्षा ले रहा हूँ ।"

मानो नेत्रो के समक्ष ही बिजली गिर पडी हो, इस प्रकार वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति चौक पडे ।

उमा चीख पडी—"पिताजी ?"

"हाँ वेटी ! आज मैं भी तेरे साथ इस कल्याणकारी पथ को अपना रहा हूँ ।"

"यह कैसे पिताजी · ?"

"वस ऐसे ही । वास्तव मे सुभाप ने मेरी आँखे उस दिन खोल

दी। कहाँ हो सुभाप ? आओ वेटे ! आज मैं तुम्हारे हाथ से ही इस थाल मे खाऊँगा।"

सवसे पीछे खडे हुए सुभाष का हृदय विगलित हो गया। वह अपने आपको रोक नही सका और तेजी से आकर जगतनारायणजी के पैरो पर गिर पडा।

"मुझे क्षमा कीजिये वावूजी !"

"क्षमा याचना कैसी पगले ! तुम्हारे उस एक वाक्य ने ही तो मुझे इस मानव-पर्याय की प्राप्ति का लाभ उठाने का अवसर दिया है। अन्यथा कौन जाने मेरी मति इस प्रकार की होती या नही। कितना अच्छा किया तुमने, मैं सच्चे हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ वेटा ! आओ मेरे साथ, आप भी आइये प्रतापनारायणजी ! हम सव एक वार और साथ-साथ भोजन कर लें।"

प्रतापनारायणजी दिग्मूढ से खडे थे। जगतनारायणजी ने पास आकर अत्यन्त स्नेह से उनके दोनो हाथो को अपने हाथो मे ले लिया और वीर-थाल की ओर खीच कर ले जाते हुए वोले—

"आपसे छोटा हूँ, मुझे आशीर्वाद नही दीजियेगा क्या ?"

"मेरी अनेकानेक शुभकामनाएँ है जगतनारायणजी, और क्या कहूँ ? इस उम्र मे आप ऐसे कठिन जीवन को अपनाने जा रहे हैं ?"

"भाई साहव, इस नन्ही उम्र मे ही उमा ने जव इस मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त कर ली है तो यह वूढा क्या ऐसा नही कर सकता ? मैंने जीवन मे अनेक विपत्तियो का सामना किया है, और फिर यह मार्ग तो आत्मा को निरन्तर दृढ वनाने वाला है। आप चिन्ता न कीजिये।"

"और बेटी उमा! इस शुभ अवसर पर तुम्हारे लिये मेरी यही शुभकामना है कि तुम साध्वी समाज मे सर्वशिरोमणी बनो! आज का दिन हम सबके लिये परम हर्ष का है ही, पर मैं उस दिन को धन्य मानूंगा जबकि आज जैसी ही धन्य-धन्य की आवाजे तुम्हारे जीवन के अन्तिम समय मे भी जन-जन के मुंह से उच्चारित होगी।"

आनन्दाश्रु बहाती हुई उमा ने पुन पिता के तथा ससुर के चरण छुए। गुणवती ने बेटी को हृदय मे लगा लिया। सुभाषिणी काष्ठ की प्रतिमा के समान अपने स्थान पर खडी हुई व्यथा की आग से झुलस रही थी। उमा जब आकर उससे लिपट गई तब उसकी समाधि भग हुई। और भग्न हृदय से बहन का हाथ पकडकर उसे 'वीर-थाल' की ओर ले गई। □



२१
गुरुदेव

आचार्य श्री की जय हो ।

गुरुदेव श्री यशोभूषण जी महाराज की जय हो ।

सहस्रो कठो से निकलती हुई जयघोष की ध्वनियो के साथ-साथ आर्या गिरिजाकुमारी के गुरु श्री यशोभूषण जी महाराज ने अशोका ग्राम मे प्रवेश किया । झुण्ड के झुण्ड व्यक्ति आचार्य श्री के दर्शनार्थ उलट पडे । प्रत्येक व्यक्ति का हृदय हर्ष और श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया । अशोका निवासी आज के दिन को अनन्तानन्त पुण्यो का परिणाम मान रहे थे ।

गुरदेव के स्वागतार्थ आए हुए व्यक्ति एक विशाल जुलूस के रूप मे आचार्य श्री के पीछे-पीछे उस पडाल की ओर अग्रसर हुए जहाँ दीक्षा समारोह सम्पन्न होने वाला था ।

पडाल खचा-खच भर गया । हजारो व्यक्ति दूर-दूर से आकर दीक्षा समारोह मे सम्मिलित हो रहे थे । पडाल के ठीक मध्य मे एक विशाल और ऊँचा चबूतरा था जिसे नाना प्रकार की पताकाओ से तथा महापुरुषो के चित्रो से सजाया गया था ।

शनै-शनै आचार्य अपने शिष्य समुदाय सहित चबूतरे की ओर पधारे तथा गगनभेदी नारो के बीच उच्च आसन पर विराजमान हुए ।

स्वामी श्री यशोभूषण जी मरुधर प्रान्त के अग्रणी और महान् विद्वान सन्त थे। वे षट्दर्शनो के मर्मज्ञ, धर्म के सजग प्रहरी तथा दृढ समाज सुधारक भी थे। सम्पूर्ण मरुधरा उन पर गर्व करती थी। उनकी भव्य और गौरवपूर्ण आकृति वरबस ही आगत व्यक्तियो को मुग्ध बना देती थी। जिस समय उनका पाडित्यपूर्ण और मार्मिक प्रवचन होता, जनता स्तब्ध होकर एक-एक शब्द को हृदयगम करती। ऐसे धीर-गम्भीर गुरु का आगमन अशोका तथा बाहर से आई हुई असीम जनता की प्रसन्नता का कारण क्यो न बनता?

आचार्य श्री उचित आसन पर आसीन हुए ही थे कि आर्या गिरिजाकुमारी ने वहाँ पदार्पण किया। जनता एक बार फिर हर्ष से कोलाहल कर उठी। वातावरण प्रसन्नता से भर गया।

श्री गिरिजाकुमारी ने असीम आह्लादपूर्ण हृदय से आकर गुरुदेव को वन्दन किया और करबद्ध होकर कहा—

"वन्दना स्वीकार हो गुरुदेव!"

"आपका साधना-पथ प्रशस्त हो भगवती!"

"सर्व प्रकार से सुख शान्ति तो है भते!"

"हाँ देवी! आप और आपका समुदाय सानन्द है न?"

"आपकी परम कृपा से भगवन्! आज का दिन धन्य है कि आपके दर्शन की चिर-प्रतीक्षित अभिलाषा पूर्ण हुई। मुझे बडी आशका थी आपके नियत समय पर पहुँच सकने के विषय मे भगवन्! क्योकि दूरी बहुत थी और मार्ग कण्टकाकीर्ण तथा बीहड!"

"मार्ग बीहड था किन्तु आज पहुँचने की कामना उत्कट थी ८ ी जी! इस शुभ अवसर पर हमे पहुचना ही था।"

"अत्यन्त अनुगृहीत हूँ गुरुदेव !"

"अनुगृहीत होने की आवश्यकता नही आर्ये ! हमारा अपना ही तो कार्य है यह ।"

"कृपा दृष्टि सतत ऐसी ही वनी रहे प्रभु ! आपका वरदहस्त ही मेरे मार्ग को मगलमय वनाता है ।"

"यह आपका अपना विश्वास है भगवती ! वही साधना-पथ को सुगम और कल्याणमय वनाता है । किसी अन्य की शक्ति इसमे सहायक नही वनती ।"

"नही भगवन्, गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किये विना ही सुगमता से सिद्धि प्राप्त हो सकती हो ऐसा मैं नही मानती !"

"अच्छा, अच्छा ! ऐसा ही सही ।" आचार्य यशोभूषण अपनी सुयोग्य शिष्या की शालीनता पर प्रसन्न होकर स्नेह भाव से मुस्कराए और वोले—

'दीक्षा सस्कार आरम्भ होने मे कितना विलम्व है आर्या ! क्या समय नियत किया गया है उसके लिये ?"

"दस बजे का समय है भगवन्, नौ वज चुके है। शीघ्र ही दीक्षा-जुलूस यहाँ आ पहुँचेगा ।"

"कन्या सयम पालन के योग्य है न ! परख कर ली आपने ?"

"मेरी समझ मे आपके कथनानुसार है गुरुदेव !" अल्पकालीन सम्पर्क मे ही मुझ पर उसकी वुद्धिमत्ता और दृढता का आश्चर्यजनक प्रभाव पडा है। लगता है कि उसका भविष्य अति-उज्ज्वल है। और फिर आपके द्वारा सस्कार किये जाने पर फिर क्या सन्देह रह जाता है इसमे ?"

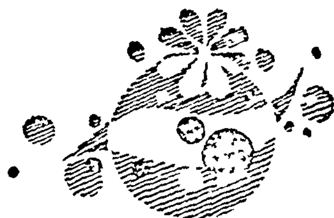
"बडी प्रसन्नता हुई यह जानकर।"

"एक और शुभ समाचार आज प्रातःकाल ही मिला है गुरुदेव।"

आचार्य श्री की किंचित् विस्मय और उत्सुकतापूर्ण प्रश्नवाचक दृष्टि गिरिजाकुमारी की ओर गई।

"उमा के पिता बाबू जगतनारायण जी भी आज ही आपके निकट प्रव्रज्या ग्रहण करके आपके चरणों में स्थान प्राप्त करना चाहते हैं।"

"ओह! अति शुभ, संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण हो।" □



२२
प्रथम चरण



जुलूस रवाना होने को था। घर मे तिल रखने की भी जगह नही थी और बाहर जनता उमड रही थी। तीव्र कोलाहल के कारण मनुष्य एक-दूसरे की आवाज नही सुन पाते थे। विभिन्न गान मडलियो तथा वाद्य-यन्त्रो की ध्वनियाँ दिगत को गुंजा रही थी।

बाबू जगतनारायणजी के लिये दरवाजे के बाहर सिन्दूरी रग की कार खडी थी और उमा की सवारी के लिए सुन्दर रथ मँगाया गया था। उसमे ऊपर की ओर रेशमी झालरे, तथा लहराती हुई रग-बिरगी पताकाएँ चारो ओर सौन्दर्य बिखेर रही थी। रथ मे जुते हुए पानीदार घोडे, जिनकी पीठ पर जरी का काम की हुई झूलें पडी थी, चल पडने के लिए अधीर हो रहे थे। और मानो उमा के रथारूढ होने मे विलम्ब होने के कारण व्यग्रतापूर्वक हिनहिनाकर अपना असतोष प्रकट कर रहे थे।

समय होते ही जगतनारायणजी मगल-सूचक श्रीफल लेकर कार मे आ बैठे। मोटरकार तनिक आगे बढी। उसका स्थान रिक्त होते ही वहाँ घण्टियो का मधुर रव करता हुआ रथ आकर खडा हो गया। ममतामयी माँ गुणवती ने गहरे स्नेह से बेटी के भाल का चुम्बन लिया और उसके आँचल को सूखे मेवो से भरते हुए हाथ मे नारियल थमाया।

आन्तरिक हर्ष उमा के उज्ज्वल चेहरे को और भी देदीप्यमान कर रहा था। उसके चमकते हुए नेत्र जिसकी ओर उठते, वही अपने को धन्य मानता। प्रफुल्ल हृदय से धीरे-धीरे कदम उठाती हुई वह रथ के समीप पहुँची। ऊपर चढने के लिए एक पाँव उठाकर पायदान पर रखा ही था कि रथ मे जुते हुए घोडो के सामने ही किसी के धडाम मे गिरने की आवाज आई।

उमा चौक पडी। उठाया हुआ पैर उसने वापिस खीच लिया। घबरा कर इधर-उधर देखा। लोग कह रहे थे—

"मिरगी का दौरा आ गया है। उठाओ, उठाओ। रथ कैसे चलेगा ?"

"किसको मिरगी का दौरा आया है ?" समीप ही खडे हुए किसी व्यक्ति से उमा ने पूछा।

"कुचेरा निवासी एक उच्च परिवार की महिला को तीस वर्ष से यह रोग है। जब भी इसका आक्रमण होता है, आठ-आठ दिन तक होश नही आता।"

सुनकर उमा क्षण-भर भाव-मग्न खडी रही। फिर अचानक ही चलकर मिरगी से पीडित उस महिला के पास पहुँची। उसकी हालत खराब हो रही थी। मुँह से झाग आने लगे थे और आँखे तितर-बितर हो रही थी।

कुछ भी न बोलते हुए उमा ने अपने आचल से किसमिस का एक दाना निकाला और उस महिला के मुँह मे डाल दिया।

जन-समुदाय हक्का-बक्का रह गया, यह देखकर कि किसमिस का दाना मुँह मे जाते ही उसमे से झाग निकलने बन्द हो गए। आँखो की दृष्टि स्थिर हुई और पाँच मिनट के अल्पकाल मे ही

महिला स्वस्थता का अनुभव करती हुई धीरे-धीरे उठकर खडी हो गई। उठते ही उसने उमा के पैर छू लिये। लोगो ने उल्लसित होकर जय-जय के नारो से आकाश गुंजा दिया।

अत्यन्त सकुचित होती हुई उमा लौटी और धीरे-धीरे रथ पर आरूढ हुई। पुन जय-ध्वनि हुई और रथ चल पडा।

इतना विशाल जुलूस अशोका मे कभी नही देखा गया था। सबसे आगे बाजे वालो की कतारे थी, उनके पीछे धर्म की प्रभावना के द्योतक नाना प्रकार के झण्डे लिये हुए अनेक व्यक्ति थे। उनके बाद स्वय-सेवक, और स्वय-सेवको के पीछे बाबू जगतनारायणजी की कार थी। कार से कुछ ही पीछे उमा का रथ, और उसके साथ-साथ वृहत् जनसमूह गगनभेदी नारे लगाता हुआ चल रहा था।

करीब डेढ घण्टे मे बडी धूमधाम से अग्रसर होता हुआ जुलूस पडाल के समीप आया। बाजे वाले एक ओर खडे होकर अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे। झण्डे टिका दिये गए और लोग दौड-भाग करते हुए पडाल मे जाकर सबसे आगे बैठने का प्रयत्न करने लगे।

जगतनारायणजी मोटर से उतरकर पडाल के फाटक की ओर चले। उमा भी धीरे-धीरे रथ से बाहर आई और पिता की तरह द्वार पर रखे मगल कलश मे चाँदी के कुछ रुपये डालकर उनके साथ-साथ पडाल के अन्दर प्रविष्ट हुई। पिता-पुत्री चलकर आचार्य श्री यशोभूषण जी के समक्ष आए और असीम भक्तिपूर्वक उन्हे वन्दन किया।

"दया धर्म का सतत पालन करो भव्य!" कहते हुए आचार्य ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर आशीर्वाद दिया।

"आज मैं भी आपके चरणों में स्थान प्राप्त करना चाहता हूँ भगवन् !"

"अगर आपको इसमें सुख है तो ऐसा ही हो आयुष्मन् ! हमारी शुभ कामना है, आपका मार्ग निरापद बने ।"

"और उमा बेटी ?" आचार्य ने प्रथम बार उमा के प्रफुल्लित और दीप्त चेहरे की ओर देखते हुए सम्बोधित किया ।

"आशीर्वाद दीजिए भगवन् !" उमा ने मस्तक झुकाया ।

"तुम्हारी समस्त कामनाएँ सफलीभूत हों, और तुम निरन्तर आत्मा को विशुद्ध और उन्नत बनाती चलो ।"

"मुझे ऐसी ही शक्ति प्रदान कीजिये गुरुवर्य !"

"पगली ! वह शक्ति तो तुम्हारी आत्मा में ही विद्यमान है । उसी की प्रेरणा से तुम आज साधना के राजमार्ग पर कदम रख रही हो ।"

मूक कृतज्ञता प्रदर्शित करती हुई उमा निरुत्तर खड़ी रही ।

"अच्छा, अब भगवती गिरिजाकुमारी को नमस्कार करो, और उनकी आज्ञा लेकर दीक्षा-मन्त्र ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत होओ !"

"जो आज्ञा ।"

उमा ने आर्या गिरिजाकुमारी के समक्ष जाकर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया ।



२३

मातृत्व विलख उठा

कैंची अनवरत चल रही थी और सुदीर्घ तथा श्यामवर्ण केश-राशि उमा के मस्तक से विलग होकर पृष्ठभाग मे आंचल फैलाए बैठी गुणवती की झोली मे इकट्ठी हो रही थी।

गुणवती के टप-टप आँसू गिरते हुए बालो को भिगोते चले जा रहे थे। उसे लग रहा था, जैसे नाइन की कैंची सिर्फ उमा के बालो को ही नही वरन् उसके हृदय को भी विदीर्ण करती चली जा रही थी। अतीत की स्मृति से उसका दिल कराह उठा—

ये वही बाल थे जिन्हे उसने उमा के जन्म के पश्चात् होश सम्हालने तक सजाया, सँवारा और सुलझाया था। धोया, पोछा और सुखाया था। माग निकाल-निकाल कर चोटी गूँथी थी। उलटी-सीधी वेणी लगाई थी, और इसके लिए उमा की क्रोध भरी झिडकियाँ खाई थी। उमा कहती—

"यह वेणी कैसी लगाई है मा! तुम्हे तो लगाना भी नही आता। इतनी ढीली लगाते हैं क्या?"

"बेटी! अब मैं बूढी हो गयी हाथ हिल जाते है।" वह हँसी दबाकर उत्तर देती।

"मगर उस दिन तुमने रुमाल मे रुपये बांधे थे तब तो इतनी

कसकर गाँठ लगाई थी कि मुझसे खुली ही नहीं। मैं कुछ नहीं जानती माँ, कसकर बाँधो।"

हारकर गुणवती फिर प्रयत्न करती। पर होता क्या? उमा और अधिक नाराज होती—

"लो, अब की बार उलटी लगा दी वेणी, फूलों के मुँह तो बालों में ही छिप गए।"

"तो अब मैं क्या करूँ? तेरे बाल ही जो इतने लम्बे और घने हैं।" बेचारी गुणवती खिसियानी होकर कह बैठती।

उमा माँ के भोलेपन पर खिलखिलाने लग जाती। हँसती-हँसती कहती—

"वाह! यह भी बालों का दोष है माँ?"

"लो और सुनो, बालों का नहीं तो क्या मेरा दोष है यह?"

"हाँ तुम्हारा तो है ही। तुमने सीखा क्यों नहीं वेणी बाँधना?"

"कौन सिखाता? तू तो थी ही नहीं उस समय।"

"अच्छा लाओ, अब सिखाऊँ।" कहती हुई वह गुणवती के सिर पर से ओढ़नी हटा देती। पर उसके बालों को देखकर विस्मय से कहती—

"अरे, तुम्हारे तो इतने से बाल हैं माँ! कहाँ बाँधूँ इसे?"

"रहने दे, मेरे बाँधने की जरूरत नहीं उमा! ला अब तेरे बाल गूँथ दूँ।"

"ऊह, बिना वेणी के बाल क्या अच्छे लगेंगे।" कहती हुई वह मुँह फुला लेती और क्रोध के मारे सारे बालों को पीठ पर बिखेर देती। समस्त पृष्ठ भाग पर लहराते हुए काले बालों से उसका गोरा मुँह कितना सुन्दर लगता था? साक्षात् नागकन्या के सदृश।

गुणवती सोचती चली जा रही थी पर सहसा उसकी चिन्तन-

धारा मे व्याघात पडा। पुत्री के सारे कटे हुए बालो से उसका आंचल भर गया था।

अचानक उमा ने पीछे की ओर मुंह फेरा तो माँ को रोते देख चौंक पडी। पूछा—

"क्या हुआ माँ ? रो क्यो रही हो ?

गुणवती कुछ भी न बोल सकी। चुपचाप आंसू बहाती रही। माँ के हृदय की अवस्था का अनुभव करते हुए उमा ने पुन कहा—

"इनका अन्त तो एक दिन होना ही था, आज कैंची से कटकर अलग हुए हैं, अन्यथा एक दिन इन्हे अग्नि भस्म करती। क्या फर्क पडा ?"

गुणवती ने चीखकर उमा के मुँह पर अपनी हथेली रख दी और रोते-रोते कहा—

"मगल वेला मे इस प्रकार अशुभ बोल मत बोल बेटी ! क्या करूँ माँ का हृदय है, धैर्य नही रहता।"

किसी तरह आँसुओ का प्रवाह रोककर गुणवती ने दुग्ध के समान धवल वस्त्र उसे पहनाए और पुन हृदय से लगा लिया। किन्तु समय हो चुका था अत उमा ने धीरे से अपने को माँ के अक से छुडाया, अन्तिम बार उसके चरण-स्पर्श किये और विशाल स्त्री समुदाय सहित चरित्र-धर्म अगीकार करने के लिये चल दी।

बाबू जगतनारायणजी पहले ही आकर गुरुदेव श्री यशोभूषण जी के समक्ष उचित स्थान पर बैठ गए थे। भगवती गिरिजाकुमारी के समीप उमा के लिये नियत किया हुआ स्थान रिक्त था, और सब उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्योही उमा आई, सबकी विस्मयपूर्ण निगाहे उन पर टिक गई। शुभ्र परिधान मे आवेष्टित उसका शरीर

और स्वर्गीय आभा से आलोकित सुन्दर चेहरा देखकर सभी को ऐसा लग रहा था जैसे साक्षात् सरस्वती उनके सम्मुख खड़ी हो।

उमा ने आचार्य श्री, तथा सन्त-समुदाय को नमस्कार किया। और फिर भगवती गिरिजाकुमारी के चरणों पर मस्तक नमाकर वह अपने स्थान पर आकर बैठ गई।

कुछ क्षणों बाद ही दीक्षा-संस्कार शुरू होने को था। उपस्थित जनसमूह ने उल्लसित होकर 'अहिंसा परमो धर्म,' 'आचार्य श्री की जय', 'आर्या गिरिजाकुमारी की जय' आदि के अनेक नारे लगाए और उसके बाद सम्पूर्ण पंडाल मे शान्ति हो गई।

जगतनारायणजी और उमा ने अपने-अपने स्थानों पर खड़े होकर नवीन जीवन अपनाने से पूर्व, अपने सम्बन्धियों से तथा उपस्थित जन-समुदाय से अब तक के किये हुए अपराधों के लिए क्षमा याचना की और उसके बाद आचार्य ने दोनों के अभिभावकों से दीक्षार्थियों को चरित्र धर्म ग्रहण कराने की अनुज्ञा प्राप्त की। अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उन लोगों ने अनुमति प्रदान की।

तत्पश्चात् आचार्य ने अरिहन्त सिद्ध, और संघ की साक्षी से सामायिकसूत्र का उच्चारण किया। जिसका तात्पर्य जीवन पर्यन्त मन, वचन एवं शरीर से सावद्य योग (पापकारी कार्य) का परित्याग करना होता है।

सामायिक-पाठ पढ़ाने के अनन्तर अन्य अनेक शास्त्रोक्त विधियाँ सम्पन्न की गई। इस मंगल-कार्य के अनुष्ठान में अनुमानतः दो घण्टे का समय व्यतीत हुआ। पिता-पुत्री दोनों ने एकाग्रतापूर्वक तथा दृढ़ मनोबल सहित दीक्षा-मन्त्र स्वीकार किया।

जनता मन्त्र-मुग्ध होकर दीक्षा-संस्कार देख और सुन रही थी। अब वातावरण पुनः कोलाहलमय हो गया। दो व्यक्ति चाँदी

के थालो मे दीक्षार्थियो के केश लिये हुए पडाल मे आ गए थे। जिनके पास थाल पहुँचते वे अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक उनमे से दो-चार बाल निकाल लेते और मस्तक से लगाते किन्तु जो इनसे वचित रह जाते वे पाने के लिए व्यग्रतापूर्वक आवाजे लगाकर कोलाहल पैदा कर देते।

उमा के बालो से पूरा थाल भर गया था। उस वृहत् केश-राशि को देखकर लोगो के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। यहाँ तक कि आस-पास के गाँवो के जो अनेक ठाकुर आए थे उनमे से छ ठाकुरो के हृदय पर तो इतना प्रभाव पडा कि उन्होने उसी क्षण खडे होकर भविष्य मे शिकार न करने तथा मद्य-मास भक्षण न करने की प्रतिज्ञा आचार्य श्री से ग्रहण की।

उत्साह तथा आनन्द से भरा हुआ जन-समुदाय जय-जयकार कर उठा—

"मुनि श्री जगतनारायणजी की जय हो।"

"नव दीक्षिता आर्या उमाकुमारी की जय हो।"



२४

कदम बढ़े चले

दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ और उसके बाद ही बाहर से आए हुए व्यक्ति धीरे-धीरे लौटने का उपक्रम करने लगे। आचार्य श्री का अशोका मे कुछ दिन और ठहरने का कार्यक्रम था, किन्तु आर्या गिरिजाकुमारी उसी दिन अजमेर की ओर प्रस्थान करने वाली थी।

प्रयाण करने से पूर्व आर्या गिरिजाकुमारी आचार्य के दर्शनार्थ गई और भक्ति-भाव से गद्‌गद् होकर उन्हे वन्दन किया। सदा अनुग्रह बनाये रखने की प्रार्थना की। आचार्य यशोभूषण ने उसे स्वीकार करते हुए सस्नेह आशीर्वाद दिया और शुभ कामना प्रकट की।

बाल-साध्वी उमा ने भी परम श्रद्धापूर्वक आचार्य श्री को नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा—

"भगवन् ! मेरे योग्य शिक्षा प्रदान कीजिए।"

आचार्य ने अत्यन्त ममतापूर्वक आपाद-मस्तक उमा की सौम्य, प्रफुल्ल और भव्य आकृति को निहारा और मधुर स्वर मे कहा—

"बेटी ! गुरु-आज्ञा का पालन करना, अप्रमत्त भाव से विनयपूर्वक सतत ज्ञानार्जन करना, और सर्वदा आचार-शुद्धि का ध्यान रखना। यही चीज तुम्हे साधना के शिखर पर पहुँचायेगी। तुम्हारे लिए मेरा यही आदेश एव आशीर्वाद है।"

फिर गिरिजाकुमारी की ओर मुडकर बोले—

"भगवती ! सदा सावधान और सजग रहकर उमा का मार्ग-निर्देशन करना। यह बालिका तुम्हारा नाम दीप्त करेगी, तुम्हारा गौरव बढाएगी।'

"आज्ञा शिरोधार्य है भन्ते ! विदुषी गिरिजाकुमारी ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा और अपनी गुरु-भगिनी महिमावती को सबोधन किया—

"बहन ! अब चलना चाहिये। विहार का समय सन्निकट है, उससे पूर्व मुनि श्री जगतनारायणजी के दर्शन करले।

तीनो आर्याओ ने पुन आचार्य श्री को श्रद्धा सहित वन्दन किया और आवास के द्वितीय कक्ष की ओर अग्रसर हुई।

मुनि जगतनारायणजी दत्तचित्त होकर किसी ग्रन्थ का अवलोकन कर रहे थे। आर्या गिरिजाकुमारी, महिमावती तथा अपनी नवदीक्षित पुत्री को आती देखकर भाव-विमुग्ध से उठ खडे हुए।

"पधारिये भगवती ! आप सभी के हृदय प्रसन्न हैं न ?"

"हाँ भन्ते, आपकी शुभकामना है। हम आज अशोका से प्रस्थान कर रही है।

"आज ही ?

"हां आर्य ! आप तो अभी कुछ काल यहाँ विराजेंगे ?"

"जी, जब तक आचार्य श्री की इस ग्राम के निवासियो पर कृपा है।" कहते हुए उनकी दृष्टि उमा की ओर गई।

"पिताजी ! उमा कह उठी।

"पगली ! अब मैं साधू हूँ। खैर, तुम दृढ मनोबलपूर्वक सयम-

साधना करना। भगवती के इगितानुसार इस सत्पथ पर चलना। मैं आज निश्चिंत और परम सुखी हुआ हूँ।'

उमा का हृदय गद्गद् हो गया और वाणी मूक। वह कुछ भी न कह सकी। कल तक पिता और आज उन्हें मुनि रूप में देखकर उसके हृदय मे अनेक प्रकार की भावनाएँ उठ रही थी। उसी विचित्र मनोदशा मे वह आर्या गिरिजाकुमारी के साथ वहाँ से लौटी।

निवास-स्थान पर आकर देखा कि प्रतापनारायणजी वहाँ आए हुए है। उनका चेहरा देखकर उमा अवाक् रह गई। मूक व्यथा ने उनके गौरवपूर्ण चेहरे को श्याम-वर्ण बना दिया था। नेत्र हृदय मे दबाई हुई वेदना की स्पष्ट गवाही दे रहे थे।

"बाबूजी ! यह क्या···· ?"

'बेटी ! ममता की करनी है यह। क्या करूँ, छूटती नही। प्रयत्न तो बहुत कर रहा हूँ। भगवान मुझे साहस प्रदान करे।"

"और कोई नही आया ? सुभाष भैया ? दीदी, ? रानी ··?"

"सुभाषिणी दीक्षा-जुलूस के रवाना होने के बाद से ही बेहोश पडी है। इतने दिन हृदय पर पत्थर रखकर अपने दुःख को दबाती रही पर अन्तत धैर्य नही रख सकी। रानी उसी की सेवा-शुश्रूषा मे लगी है और सुभाष दौड़-धूप मे व्यस्त है।"

'किन्तु तुम चिन्ता मत करना उमा ! धीरे-धीरे सभी अपने आप पर काबू पा लेंगे। तुम निश्चित होकर आत्म-साधना करो, और हमारे कुल को उज्ज्वल बनाओ। मुझे गर्व है कि तुमने दृढतापूर्वक यह सुमार्ग अपनाया है। ईश्वर तुम्हे सदा उच्चता की ओर अग्रसर करे। और हाँ, भगवती कहाँ है बेटी ?"

"आर्या अन्दर है, प्रस्थान करने की तैयारी मे व्यस्त हैं शायद। आप अन्दर पधारिये।"

बाबू प्रतापनारायणजी धीरे-धीरे भगवती गिरिजा के समीप पहुँचे। वन्दना की और बोले—

"वन्दन स्वीकार हो आर्या।"

"धर्म पर दृढ रहे बन्धु! कुशल है न?"

"मालूम हुआ है कि आपका आज ही तीसरे पहर विहार होगा, अत दर्शनार्थ आया हूँ।"

"बहुत अच्छा किया। और सब कहाँ है?"

"बडी बहू अस्वस्थ है, इसलिये सब नही आ सके।"

"क्या हुआ सुभाषिणी देवी को? गिरिजाकुमारी ने अत्यन्त उद्विग्न होकर पूछा।"

"वह तीन-चार घण्टे से बेहोश है भगवती! बहुत प्रयत्न करने पर भी अभी तक होश नही आया।"

"अच्छा! यथोचित उपचार कीजिये प्रतापनारायणजी! हम रवाना होकर उधर से ही आयेंगे। वही सुभाषिणी देवी से भी मिल लेगे। इसके अलावा आप उमा की चिन्ता · ।"

"उमा की चिन्ता मुझे तनिक भी नही है भगवती! प्रताप-नारायणजी बात काटकर बोले—आपके समीप रहकर उसे क्या कष्ट हो सकता है? मोह अवश्य है, क्योंकि मैंने अपना लडका और बहू दोनो ही उसे माना है" कहते-कहते प्रतापनारायणजी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

"उसे लेकर उद्विग्न न हो भद्र! आज साधना-पथ पर उसका प्रथम चरण है, पर शीघ्र ही आप उसे शिखर पर आसीन पायेंगे।"

"आपके वचन निश्चय ही सत्य होंगे आर्या ! सुनकर मुझे अत्यन्त सतोष हुआ।" कहते हुए प्रतापनारायणजी ने भगवती को पुन नमस्कार किया और वहाँ से लौट पडे।

उस दिन गाँव से कुछ ही दूरी पर रात्रि को ठहरना था अत विहार का समय तीन बजे रखा गया था किन्तु जनता प्रात काल की भाँति दो-ढाई बजे से ही इकट्ठी होनी शुरू होगई।

विशाल जन-समूह से उठते हुए जय-घोष के नारो के बीच आर्या गिरिजाकुमारी ने आर्या महिमावती तथा उमा के साथ प्रस्थान किया। उमा का हृदय हर्ष तथा सतुष्टि का अनुभव कर रहा था। सुख और दुखमय अतीत की सीमा उसने पार करली थी। और आज आत्म-सतोष के नए क्षेत्र मे चरण रख दिये थे उसे लग रहा था मानो किसी भयानक स्थान से वह एक-एक कदम दूर होती जा रही है और मोह-माया के बधन की एक-एक कडी टूटती जा रही है। अचानक ही गिरिजाकुमारी के शब्दों से उसकी भाव-मग्नता मे व्याघात पहुँचा। 'उमा ! ठहरो।"

उसने चौंककर देखा—बाबू प्रतापनारायणजी सपरिवार सामने खडे है और भगवती पूछ रही है—

"सुभाषिणी कैसी है—अब ?"

"उसे होश आया है भगवती ! किन्तु निर्बलता का अनुभव करने के कारण लेटी हुई है। दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।"

सबने अन्दर प्रवेश किया। सुभाषिणी भगवती और उमा को देखते ही किसी तरह उठकर बैठ गई और खडे होने का प्रयत्न करने लगी किन्तु गिरिजाकुमारी ने आग्रहपूर्वक उसे उठने से रोका—

नहीं, नहीं, उठो नहीं बहन ! तुम अभी अस्वस्थ हो।"

सुभाषिणी सजल नयनो से बहन की ओर निहारने लगी जैसे उसकी इस नवीन छवि को वह अपने नेत्रो मे ही अकित कर लेगी। उमा ने बहन के गम्भीर स्नेह का अनुभव करते हुए कहा—

"दीदी ! इतनी कायरता क्यो ? आज का दिन तो बडे ही हर्ष का है। तुम्हारी बहिन ने ऐसे जीवन मे प्रवेश किया है जिसमे केवल सुख और सतोष ही है। दुख का नाम निशान भी नही।"

"सत्य है बहिन ! इसीलिये मेरी आँखो मे आनन्दाश्रु आ गए है। किन्तु बुद्धि की बात को हृदय सरलता से स्वीकार नही करता। दोनो का मेल होने मे कुछ समय तो लगेगा ही।" कहते हुए सुभाषिणी ने गिरिजाकुमारी से विनयपूर्वक कहा—

"भगवती, कृपया मगल-मत्र दीजिये। आपको खडे-खडे कष्ट हो रहा है और बाहर जनता प्रतीक्षा कर रही है।"

सुभाषिणी के व्यक्तित्व की महत्ता का अनुभव करते हुए गिरिजाकुमारी ने वियोग-व्याकुल परिवार को मगल-मत्र दिया और मदगति से चल दी।



२५

अध्ययन निरता



"उमा !"

"जी।"

"इधर आओ बेटी !"

"क्या आज्ञा है भगवती ?" उमा ने शीघ्रतापूर्वक आकर कहा।

"आज वसंत पंचमी है न ?"

"जी हाँ !"

"मैं आज से तुम्हारा अध्ययन प्रारम्भ कराना चाहती हूँ।"

"ओ, मैं बहुत उत्सुक हूँ भगवती ! किस समय प्रारम्भ करायेंगी आप ?"

"अभी इसी समय। अमृतयोग है, ज्ञानार्जन के लिए यह समय अत्यन्त शुभ है।"

उमा ने तत्क्षण गिरिजाकुमारी को तीन बार वंदन किया और करबद्ध खड़ी हो गई।

आर्या गिरिजाकुमारी ने उसे 'कल्याण-मन्दिर' स्तोत्र के चार श्लोक पढ़ाये, समझाए और उन्हें कण्ठस्थ करने के लिये कहा—

"देखो उमा ! एक घंटे के अन्दर ये चारों श्लोक तुमसे कंठाग्र सुनूँगी। याद कर लोगी ?"

"आपकी कृपा से अवश्य कर लूँगी भगवती !"

"अच्छा जाओ, एकान्त मे बैठकर इन्हे याद करो।"

अत्यन्त हर्षित होती हुई उमा वहाँ से चल दी और आवास के भीतरी भाग मे जाकर श्लोक याद करने लगी।

ठीक एक घटे बाद वह लौट आई। उसे देखकर गिरिजा-कुमारी प्रसन्न हुई। पूछा—

"याद कर लिया?"

"जी! सुन लीजिये।"

किन्तु गिरिजाकुमारी चकित रह गई जब उमा ने चार श्लोक ही नही वरन् 'कल्याण-मन्दिर' के दस श्लोक बिना उच्चारण की एक भी अशुद्धि किये जबानी सुना दिये। मारे हर्ष के उन्होने अपनी कुशाग्र बुद्धि शिष्या को खीचकर हृदय से लगा लिया।

शरमाती हुई उमा ने कई क्षणो तक अपना चेहरा भगवती के वक्ष मे छुपाये रखा, मानो उसे पुन माँ की गोद मिल गई हो। अस्फुट स्वर से उसके मुंह से निकल गया • • "माँ"

पृथ्वी पर आते ही माँ को खो देने वाली उस मातृहीना बालिका को माँ की सी ममता से धीरे-धीरे अलग करके उसका चिबुक उठाते हुए भगवती बोली—

"वास्तव मे तू एक अमूल्यरत्न है उमा!"

"ऐसा न कहिये, मैं सिर्फ आपकी चरण-रज हूँ भगवती! आपकी कृपा से कुछ प्राप्त कर सकूँगी।"

"अवश्य बेटी, मुझे विश्वास है कि तुम परमविदुषी बनकर साध्वी समाज मे गौरवपूर्ण स्थान बनाओगी।"

दीक्षा के पश्चात् दो माह के अल्प-काल मे ही उमा के विनय, वाणी के माधुर्य और शिशु के-से सरल व्यक्तित्व ने गिरिजाकुमारी

के मन को मुग्ध कर लिया। यह समय उनका भ्रमण में ही व्यतीत हुआ था। बीच-बीच में ग्रामों में ठहरना अवश्य होता था किन्तु अल्प-काल के लिए ही। अत वे उमा का अध्ययन आरम्भ नहीं कर सकी थीं। अब अजमेर पहुँचने के बाद बसन्त पंचमी का शुभ दिन उन्होंने उत्तम मानकर इस शुभ कार्य के लिये नियत किया था। और पहले दिन ही ज्ञानार्जन में उसकी लगन और तीव्र-बुद्धि का परिचय पाकर उनका हृदय भविष्य के लिए आशा से भर गया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस पर लगाने का निश्चय कर लिया है।

यद्यपि उनकी अन्य शिष्यायें भी थीं पर उनका वर्षावास इस बार जोधपुर में नियत होने के कारण वे उमा के दीक्षा समारोह में सम्मिलित न हो सकी थीं। संयमाचरण में सभी दक्ष थीं। किसी प्रकार की शिथिलता उनमें से किसी में भी नहीं थी। फिर भी विचारों का सामंजस्य न होने के कारण वे गिरिजाकुमारी को प्रभावित नहीं कर सकी थीं। प्रगाढ़ आत्मीयता का अभाव रहता था और गिरिजाकुमारी का मन सबके होने पर भी एकाकीपन का अनुभव करता था। उन्हें सहारा एकमात्र अपनी गुरु-बहिन महिमावती का था। आर्या महिमावती मानो उनकी पूर्वजन्म की बहिन ही थी। इसलिए इस जन्म में भी क्षणभर के लिये भी उनसे विलग नहीं रहती थी। वह भगवती को अपनी गुरु-बहिन नहीं, वरन् गुरु के समान ही मानती थी—उतनी ही श्रद्धा, आदर और स्नेह उनसे रखती थी।

इसलिए भगवती गिरिजाकुमारी के सभी कार्यों की तरह नवदीक्षित उमा की सार-सम्हाल का दायित्व भी आर्या महिमावती पर आ पड़ा। गिरिजाकुमारी तो अपने नित्य-नियम में ही [illegible]

प्रतिदिन प्रात काल प्रवचन और दोपहर को आगत व्यक्तियो से वार्तालाप तथा ज्ञान-चर्चा के कारण अधिक अवकाश नही मिल पाता था।

आर्या गिरिजाकुमारी और महिमावती, दोनो का उमा पर समान स्नेह था, फिर भी उनमे बडा अन्तर था। गिरिजाकुमारी का हृदय अत्यन्त कोमल था अत उनके शासन मे कठोरता आ नही पाती थी। इसके विपरीत महिमावती कोमल हृदया होने पर भी शिक्षा-दीक्षा के समय अत्यन्त कठोरता का वर्ताव रखती थी। फलस्वरूप मृदुता और कठोरता दोनो के बीच उमा का जीवन बनने लगा।

प्रात काल ब्राह्ममुहूर्त मे ठीक चार बजे उमा को उठना होता। दो घटे स्वाध्याय, ध्यान और प्रतिक्रमण मे व्यतीत होते। तत्पश्चात् वह ईश-स्तुति करती। कोकिल-कठी उमा का मधुर स्वर सबको तन्मय बना देता।

इन सबके बाद भास्कर के उदित होते ही प्रात कालीन क्रियाओ से निवृत्त होने के बाद आर्या महिमावती उमा को अध्ययन करने का आदेश देती।

यद्यपि इस बीच महाविदुषी गिरिजाकुमारी का प्रवचन होता, हजारो व्यक्ति दूर-दूर से आकर प्रवचन का लाभ लेते, किन्तु उमा को महिमावती केवल रविवार के दिन ही प्रवचन सुनने के लिये छुट्टी देती। बाकी सभी दिनो मे उसे दत्तचित्त होकर ज्ञानाभ्यास करना पडता। गिरिजाकुमारी महिमावती के द्वारा की गई इस व्यवस्था मे तनिक भी हस्तक्षेप नही करती वरन् निश्चित होकर अपना कार्य करती। उमा को भिक्षाचरी के लिये भी नही ले जाया

जाता। वह अपने स्थान से तभी उठ पाती जब आहार आ चुकता। किन्तु आहार ग्रहण के समय समस्या विकट हो जाती।

गृहस्थ जीवन मे पति चम्पकराय के निधन के बाद ही उमा ने अपने जीवन को कठोर नियमो मे बाँध लिया था। आभूषण मात्र का परित्याग कर वह श्वेत वस्त्र पहनती थी। बाँह पर सिर टिकाकर सिर्फ एक चटाई पर शयन करती और दिन मे नियत समय पर अल्पाहार करती थी। इसलिये बहुत दिनो के अभ्यास के कारण और वैसे भी अल्पाहारी होने के कारण वह अब भी आहार नाम मात्र का करती।

महिमावती उस बात पर बहुत चिढती। अपने सामने बिठा-कर उसे खिलाती। कम खाने पर कहती—

"तू तो गजब करती है उमा! सयम निर्वाह करने के लिये आखिर इस शरीर को खुराक तो देनी ही पडती है। कुछ तो और ले! यह दूध पडा ही रह गया।"

बेचारी उमा निरीह दृष्टि से भगवती गिरिजाकुमारी की ओर देखने लगती।

गिरिजाकुमारी हँस पडती और महिमावती को सबोधन कर कहती—

"महिमा! लगता है, इसे भूख नही है। न हो तो रहने दो अब।"

"हाँ, हाँ, रहने दो अब । तो इसका मतलब है कि आज पढाई से छुट्टी ?"

गिरिजाकुमारी के नेत्र आश्चर्य से फैल जाते। पूछती —"पढाई से छुट्टी कैसे ? पढेगी नही यह आज ?"

"जव खाएगी नही तो पढेगी कैसे ? अभी इसका पेट भरा कहाँ है ?"

"इसके पेट की वात ... ।" भगवती वाक्य अधूरा छोडकर पुन हँसने लगती ।

"मैं सव जानती हूँ भगवती ! न खाए यह, मुझे भी आज भूख नही है ।" कहती हुई महिमावती उठ जाती ।

हारकर गिरिजाकुमारी उमा को और थोडा-वहुत खा लेने का सकेत करती ।

निरुपाय उमा किसी तरह दो-चार ग्रास और निगलने की कोशिश करती, अथवा आँख मीचकर मुंह मे दूध उँडेल लेती और उठकर काष्ठ के पात्र स्वच्छ करने लगती ।

महिमावती तव चैन की साँस लेती। किन्तु उनकी यह मृदुलता दोपहर होते ही छूमतर हो जाती । आहार के पश्चात् अल्प विश्राम के वाद ही महिमावती सजग प्रहरी के समान नियुक्त हो जाती । प्रथम वे उमा को भगवती के समीप शास्त्र-अध्ययन के लिये भेज देती और उन्हे हजार आवश्यक कार्य होने पर भी नियत समय तक उमा को पढाना पडता । उसके वाद वे स्वय उसे अन्य विषयो का अध्ययन कराती । ठीक चार वजे तक उमा पढती । इस वीच, एक मिनट भी व्यर्थ खोने, अथवा किसी से वात करने का अवकाश महिमावती उसे नही देती । हाँ, सायकाल मे भिक्षा लाने के लिये वे कभी-कभी उसे अवश्य अपने साथ ले जाती ।

रात्रि को पुन नित्य-नियम करने के पश्चात् दिवस मे किये अध्ययन को दुहराया जाता । कभी-कभी नीद के कारण उमा को जमुहाइयाँ आने लगती, देखकर गिरिजाकुमारी को दया आ जाती । वे महिमावती से वडे नरम शब्दो मे कहती—

"जब खाएगी नही तो पढेगी कैसे ? अभी इसका पेट भरा कहाँ है ?"

"इसके पेट की बात··· ।" भगवती वाक्य अधूरा छोड़कर पुन हँसने लगती ।

"मैं सब जानती हूँ भगवती ! न खाए यह, मुझे भी आज भूख नही है ।" कहती हुई महिमावती उठ जाती ।

हारकर गिरिजाकुमारी उमा को और थोडा दहुत ग्या नेने ा सकेत करती ।

निरुपाय उमा किसी तरह दो-चार ग्रास और निगलने की कोशिश करती, अथवा आँख मीचकर मुंह मे दूध उँडेल लेती और उठकर काष्ठ के पात्र स्वच्छ करने लगती ।

महिमावती तव चैन की साँस लेती । किन्तु उनकी यह मृदुलता दोपहर होते ही छूमतर हो जाती । आहार के पश्चात् अल्प विश्राम के वाद ही महिमावती सजग प्रहरी के समान नियुक्त हो जाती । प्रथम वे उमा को भगवती के समीप शास्त्र-अध्ययन के लिये भेज देती और उन्हे हजार आवश्यक कार्य होने पर भी नियत समय तक उमा को पढाना पडता । उसके वाद वे स्वय उसे अन्य विपयो का अध्ययन कराती । ठीक चार वजे तक उमा पढती । इस वीच, एक मिनट भी व्यर्थ खोने, अथवा किसी से वात करने का अवकाश महिमावती उसे नही देती । हाँ, सायकाल मे भिक्षा लाने के लिये वे कभी-कभी उसे अवश्य अपने साथ ले जाती ।

रात्रि को पुन नित्य-नियम करने के पश्चात् दिवस मे किये अध्ययन को दुहराया जाता । कभी-कभी नीद के कारण उमा को जमुहाइयाँ आने लगती, देखकर गिरिजाकुमारी को दया आ जाती । वे महिमावती से वडे नरम शब्दो मे कहती—

जाता। वह अपने स्थान से तभी उठ पाती जब आहार आ चुकता। किन्तु आहार ग्रहण के ममय समस्या विकट हो जाती।

गृहस्थ जीवन मे पति चम्पकराय के निधन के बाद ही उमा ने अपने जीवन को कठोर नियमो मे बाँध लिया था। आभूषण मात्र का परित्याग कर वह श्वेत वस्त्र पहनती थी। बाँह पर सिर टिकाकर सिर्फ एक चटाई पर शयन करती और दिन मे नियत ममय पर अल्पाहार करती थी। इसलिये बहुत दिनो के अभ्यास के कारण और वैसे भी अल्पाहारी होने के कारण वह अब भी आहार नाम मात्र का करती।

महिमावती उस बात पर बहुत चिढती। अपने सामने बिठा-कर उसे खिलाती। कम खाने पर कहती—

"तू तो गजब करती है उमा! सयम निर्वाह करने के लिये आखिर इस शरीर को खुराक तो देनी ही पडती है। कुछ तो और ले! यह दूध पडा ही रह गया।"

बेचारी उमा निरीह दृष्टि से भगवती गिरिजाकुमारी की ओर देखने लगती।

गिरिजाकुमारी हँस पडती और महिमावती को मबोधन कर कहती—

"महिमा! लगता है, इसे भूख नही है। न हो तो रहने दो अब।"

"हाँ, हाँ, रहने दो अब । तो इसका मतलब है कि आज पढाई से छुट्टी · · ?"

गिरिजाकुमारी के नेत्र आश्चर्य मे फैल जाते। पूछती —"पढाई से छुट्टी कैसे? पढेगी नही यह आज?"

जाता। वह अपने स्थान से तभी उठ पाती जब आहार आ चुकता। किन्तु आहार ग्रहण के समय समस्या विकट हो जाती।

गृहस्थ जीवन मे पति चम्पकराय के निधन के बाद ही उमा ने अपने जीवन को कठोर नियमो मे बाँध लिया था। आभूषण मात्र का परित्याग कर वह श्वेत वस्त्र पहनती थी। बाँह पर सिर टिकाकर सिर्फ एक चटाई पर शयन करती और दिन मे नियत समय पर अल्पाहार करती थी। इसलिये बहुत दिनो के अभ्यास के कारण और वैसे भी अल्पाहारी होने के कारण वह अब भी आहार नाम मात्र का करती।

महिमावती उस बात पर बहुत चिढती। अपने सामने बिठाकर उसे खिलाती। कम खाने पर कहती—

"तू तो गजब करती है उमा! सयम निर्वाह करने के लिये आखिर इस शरीर को खुराक तो देनी ही पडती है। कुछ तो और ले! यह दूध पडा ही रह गया।"

बेचारी उमा निरीह दृष्टि से भगवती गिरिजाकुमारी की ओर देखने लगती।

गिरिजाकुमारी हँस पडती और महिमावती को सबोधन कर कहती—

"महिमा! लगता है, इसे भूख नहीं है। न हो तो रहने दो अब।"

"हाँ, हाँ, रहने दो अब । तो इसका मतलब है कि आज पढाई से छुट्टी ?"

गिरिजाकुमारी के नेत्र आश्चर्य से फैल जाते। पूछती —"पढाई से छुट्टी कैसे? पढेगी नही यह आज?"

"जव खाएगी नही तो पटेगी कैसे ? अभी इसका पेट भरा कहाँ है ?"

"इसके पेट की वात‥ ।" भगवती वाक्य अधूरा छोड़कर पुन हँसने लगती ।

"मैं सव जानती हूँ भगवती ! न खाए यह, मुझे भी आज भूख नही है ।" कहती हुई महिमावती उठ जाती ।

हारकर गिरिजाकुमारी उमा को और थोडा-वहुत खा लेने का सकेत करती ।

निरुपाय उमा किसी तरह दो-चार ग्रास और निगलने की कोशिश करती, अथवा आँख मीचकर मुंह मे दूध उँडेल लेती और उठकर काष्ठ के पात्र स्वच्छ करने लगती ।

महिमावती तव चैन की साँस लेती । किन्तु उनकी यह मृदुलता दोपहर होते ही छूमतर हो जाती । आहार के पश्चात् अल्प विश्राम के वाद ही महिमावती सजग प्रहरी के समान नियुक्त हो जाती । प्रथम वे उमा को भगवती के समीप शास्त्र-अध्ययन के लिये भेज देती और उन्हे हजार आवश्यक कार्य होने पर भी नियत समय तक उमा को पटाना पडता । उसके वाद वे स्वय उसे अन्य विपयो का अध्ययन कराती । ठीक चार वजे तक उमा पढती । इस वीच, एक मिनट भी व्यर्थ खोने, अथवा किसी से वात करने का अवकाश महिमावती उसे नही देती । हाँ, सायकाल मे भिक्षा लाने के लिये वे कभी-कभी उसे अवश्य अपने साथ ले जाती ।

रात्रि को पुन नित्य-नियम करने के पश्चात् दिवस मे किये अध्ययन को दुहराया जाता । कभी-कभी नीद के कारण उमा को जमुहाइयाँ आने लगती, देखकर गिरिजाकुमारी को दया आ जाती । वे महिमावती से वडे नरम शब्दो मे कहती—

"इसे नींद आ रही है बहन ! अब सो जाने दो। कल याद कर लेगी।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।" महिमावती कड़ा विरोध करती।

"पर अभी इसकी उम्र ही क्या है? बच्ची ही तो ठहरी। धीरे-धीरे अभ्यास करती रहेगी।"

ज्ञानाभ्यास बचपन में ही होता है भगवती ! वृद्धावस्था में नहीं। दूसरे हम 'पके पान' हैं, न जाने कब झड़ जायं ! फिर कौन इस पर ध्यान देगा?

सुनकर गिरिजाकुमारी मौन हो जाती। गुरु-बहन के स्नेहमय शासन में व्याघात डालने की उनकी हिम्मत न होती। जागते हुए भी वे चुपचाप महिमावती की लगन और सतर्कता पर विचार किया करती।

उधर महिमावती उमा से पूछती—"नींद आ रही है बिटिया?"

"आ तो रही है आर्या!" उमा सहज-भाव से स्वीकार कर लेती।

"पर सो जाने से कैसे काम चलेगा? आ, तुझे कोई कथा सुनाऊं।"

'आपकी ससुराल की कथा सुना दीजिये। कैसे थे आपके पति? आपने किस प्रकार दीक्षा अंगीकार की?"

"दुर पगली! यह भी कोई सुनाने की बात है?"

"फिर मेरी नींद कैसे उड़ेगी?" वह महिमावती के गले में अपनी बांहें डाल देती और अपनी स्वाभाविक परिहास-वृत्ति के कारण आग्रह करती।

"वताइये न ! कैसे थे वे ?"

"वहुत अच्छे, खूव सुन्दर, वहुत धन था उनके पास।'

'ओह, फिर ?'

"फिर क्या, धनवानो को क्रोध वहुत आता है । मुझने भी कभी-कभी झगड पडते, कहते—निकल जाओ मेरे घर से।"

"तव आप क्या कहती थी ?" उमा की नींद उड जाती।

"मैं ? मैं और क्या कहती ? छोटी-सी तो थी ही, कह देती—'तुम निकल जाओ'।"

"वाह, वाह, उसके वाद क्या होता ?" उमा खिलखिलाकर हँसने लगती।

"उसके वाद की वात कल वताऊँगी। आज अव पाठ सुना तू!'

"अच्छा सुनाती हूँ आर्या ! पर कल अवश्य सुनूंगी आगे की वात।"

"हाँ, हाँ, जरूर सुनना।"

इस प्रकार पांच-सात मिनट परिहास मे व्यतीत होते और उमा की नीद गायव हो जाती। तत्पश्चात् घण्टे दो घण्टे ज्ञान-साधना मे लगाकर महिमावती उसे नन्ही वालिका के समान अपने पास सुला लेती, और थकी हुई उमा कुछ क्षणो मे ही निद्रामग्न हो जाती।

☐

कुशाग्र बुद्धि ने ही आज इसे इस योग्य बनाया है। अपनी जट्ट और तीव्र लगन से इसने सरस्वती की खूब अर्चना की है?"

गिरिजाकुमारी ने प्रत्युत्तर नही दिया किन्तु मन्दस्मित और आन्तरिक प्रसन्नता से उनका चेहरा और भी उज्ज्वल हो गया।

"एक बात कहूँ भगवती।" अचानक ही महिमावती ने कहा।

"अवश्य कहो बहन, क्या बात है?"

"क्यो न हम आज के इस शुभ दिन की स्मृति मे इसका नाम ही अर्चना रख दे?"

"सुझाव तो उत्तम है। क्यो उमा! पसन्द है तुम्हे यह नाम?"

"आप मुझे जैसे भी पुकारेगी, पसन्द आएगा। उमा ने धीरे से उत्तर दिया।

वार्तालाप चल ही रहा था कि, उपाश्रय के सेवक ने आकर नमस्कार करते हुए कहा—

"भगवती! एक यतिजी पधारे है। आपको स्मरण कर रहे है।" सुनकर गिरिजाकुमारी बाहर आई। देखा, यतिजी खडे हैं। लम्बा कद, गठा हुआ सुडौल शरीर और उस पर श्वेत रग के वस्त्र। चेहरे पर व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखाई दे रही थी, और देखने वाले के हृदय को प्रभावित करती थी।

"आप सब सुख-शान्ति पूर्वक है?" कहते हुए यतिजी ने सेवक द्वारा लाया हुआ आसन ग्रहण किया।

"आनन्द है, कृपया अपने शुभ नाम से अवगत कीजिये।"

"मुझे आदिसागर कहते है।"

"ओह, आदिनागरजी आप ही हैं ? आपकी तो मैंने इन कुछ गाँव वालो से बहुत प्रशंसा सुनी है। बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिल-कर। कहिये कैसे अनुग्रह किया आज ?"

"आज मैं एक कुण्डली बनाकर लाया हूँ भगवती !"

"कुण्डली ? किसकी कुण्डली ?" भगवती ने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

"आपकी लघु शिष्या की। क्या नाम है उनका ?"

"उमा, पर आज से 'अर्चना'।"

"यह कैसे ?" कौतूहल पूर्वक यतिजी ने पूछा।

"अपनी अटूट साधना और एकनिष्ठ अर्चना से उसने देवी सरस्वती को प्रसन्न किया है, अत हमने आज से ही उनका नाम 'अर्चना' रख दिया है।"

"बहुत सुन्दर, मेरी बनाई हुई कुण्डली भी उनका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल बता रही है।"

"पर आपने उनकी कुण्डली बनाई कैसे ?"

"चाल देखकर।"

"चाल देखकर ही आपने कुण्डली बना ली ?" गिरिजाकुमारी के विस्मय का पार न रहा।

"सतीजी ! मैं चेहरा अथवा चाल देखकर ही किसी भी मनुष्य की भूत और भविष्य की अनेक बातें बता देता हूँ। कल सायकाय जब आप तीनो जगल की ओर पधार रही थी, मैंने पृष्ठभाग की ओर से आर्या अर्चनाकुमारी को देखा। देखकर इतना प्रभावित हुआ कि अपने आपको रोक नही पाया और उनकी कुण्डली भी बना डाली। जीवन-भर मे मैंने ग्रह-नक्षत्रो का इतना जबर्दस्त जोड कही

नही देखा। मैं स्वय इतने उत्कृष्ट लक्षण देखकर आश्चर्य से अभि-भूत हूँ।"

"यह तो अत्यन्त सतोषप्रद बात है यतिजी! बताइये, अर्चना का आगामी जीवन कैसा होगा?" कहते हुए गिरिजाकुमारी ने सेवक से कहा—

"भाई नारायण, जाकर देखो आर्याएँ क्या कर रही है? अगर किसी आवश्यक कार्य मे व्यस्त न हो तो कहना, मैं स्मरण कर रही हूँ।"

नारायण उसी क्षण गया और कुछ मिनिटो मे ही महिमावती उमा को लेकर बाहर आई।

"भगवती, आपने याद किया है?"

"हाँ बहन, आओ, बैठो! देखो आज यतिजी अर्चना की कुण्डली बनाकर लाए है।"

महिमावती गिरिजाकुमारी के समीप बैठ गई और सकुचाती हुई उमा उनके पीछे।

"हाँ, अब बताइये यतिजी! अर्चना के भविष्य की उल्लेखनीय बातें कौन-कौन-सी है? गिरिजाकुमारी ने वार्तालाप का सूत्र पुन हाथ मे लेते हुए पूछा।

आदिसागरजी ने एक बार उमा का चेहरा देखा और कहा—

"तनिक अपना हाथ तो फैलाइए" और उमा के हाथ बढा देने पर उसका अवलोकन करते हुए कहा—

"भगवती! क्या पहले भूतकाल की कुछ बाते बताऊ?"

"नही, नही! भूतकाल की बातो को दोहराने मे क्या लाभ? आप इसका आगामी जीवन से सम्बन्धित बाते बताने का कष्ट कीजिये।"

"अच्छी वात है देखिये ! अर्चनाकुमारी की बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र है, अत यह अनेक शास्त्रो का तथा समस्त दर्शनो का ज्ञान प्राप्त कर उच्चकोटि की विद्वत्ता हासिल करेगी।"

"इनकी प्रवचन-कला लोगो पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालने वाली, अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी होगी।"

"ग्रहो का योग वताता है कि यह लम्वे प्रवास करेगी और उस काम मे अनेक अनार्य क्षेत्रो मे भी सफलतापूर्वक धर्म-प्रचार करती हुई विचरण करेगी।"

"प्रवास काल मे अनेक वाधाये आएँगी। पहाडी प्रदेशो मे कई वार मृत्यु का भय भी आ उपस्थित होगा पर सभी विघ्न टल जाएँगे।"

"साध्वी समाज मे उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करते हुए अत्यन्त ख्याति-लाभ करेगी।"

' व्यक्तित्व अति मधुर और विचार उच्च होगे।"

"कहते हुए यतिजी क्षणभर के लिए रुके। लगा कि वे कुछ और कहना चाहते है पर कहने मे झिझक का अनुभव कर रहे है।"

और क्या वात है यतिजी ! वताइये आप रुक क्यो गए ?"

"जीवन मे कुछ अप्रिय और कष्टकर वाते भी होती है महादेवी ! जिन्हे कहने मे कुछ सकोच का अनुभव होता है।"

"इनकी आप चिन्ता न कीजिये ! साधु को हर्ष और शोक क्या ? आप निस्सकोच कहिये।"

"अर्चनाकुमारी के मस्तक पर आपका साया अधिक नही है।"

सुनकर उमा चौंक पडी, और उसका चेहरा म्लान हो गया। किन्तु गिरिजाकुमारी हँस दी—"ओह, यह कोई अनहोनी वात है

यतिजी ? क्या ससार का कोई भी प्राणी चिरकाल तक वना रह सकता है ? अच्छा और ?"

"और अर्चनाजी को हृदय-रोग का कष्ट जीवन मे प्राय वना रहेगा।"

उमा अब तक मौन-भाव से अपने भविष्य की सभी वातो को सुन रही थी। मृदु कण्ठ से वोली—

"मैं आपसे एक वात और पूछना चाहती हूँ।"

"अवश्य पूछिए।"

"कृपया यह वताइये कि मेरा अन्तिम समय कैसा होगा ?"

"अगर तुम्हे इस यति की वात पर विश्वास है आर्ये, तो निश्चित रूप से यह मानो कि अपने अन्तिम समय मे तुम सैकडो व्यक्तियो को वोध देती हुई इस लोक से प्रयाण करोगी।"

सुनकर उमा का चेहरा खिल उठा। पर उसी समय यति आदिसागरजी ने जाने को उद्यत होकर भगवती से इजाजत चाही। कहा—"अव आज्ञा दीजिये भगवती ! आपका मैंने काफी समय ले लिया है।"

"मैं आपकी वहुत कृतज्ञ हूँ महाराज ! पुन कभी कष्ट कीजियेगा।"

"अवश्य उपस्थित होऊँगा।" कहते हुए भविष्यद्रष्टा यति ने प्रस्थान किया।



२७

आस्तिक या नास्तिक

●

प्रात कालीन सूर्य की सुनहली किरणे पृथ्वी पर वरदान के समान आ गिरी थी और मार्ग के दोनो किनारो पर विछी हुई रेत स्वर्ण-कणो के समान चमकने लगी थी। दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली पर बिछी हुई ओस की श्वेत बूंदे मोतियो की खेती का भ्रम उत्पन्न कर रही थी तथा ऊपर की ओर उडते हुए सैकडो पक्षियो के समवेत स्वर सम्पूर्ण दिशाओ मे सगीत की एक अभूतपूर्व सृष्टि कर रहे थे।

ऐसे मनोरम प्रात काल मे भगवती गिरिजाकुमारी ने महिमावती और अर्चनाकुमारी के साथ नागौर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग कटकाकीर्ण और पौष मास की तीव्र शीत के कारण हिम के समान शीतल भी था। तीनो के पैर ठिठुरकर जडवत् हो गए थे किन्तु इस ओर किसी का भी ध्यान नही था। आन्तरिक प्रसन्नता मे मग्न आर्याएँ अपने पथ पर अग्रसर होती चली जा रही थी।

मार्ग मे जगह-जगह से उपमार्ग निकलते थे अत भूल न हो जाए इस हेतु गिरिजाकुमारी ने एक छोटे से पुल पर विश्राम के लिए बैठे हुए एक सम्भ्रान्त युवक से अपने गन्तव्य मार्ग के विषय मे पूछा—

"भाई, नागौर जाने के लिये यही मार्ग ठीक है न ?"

"जी हाँ, मैं भी इसी ओर चल रहा हूँ।" कहते हुए उस युवक ने पास आकर आर्याओ को नमस्कार किया।

"धर्म पर दृढ रहो बन्धु!" गिरिजाकुमारी ने प्रत्युत्तर मे आशीर्वाद दिया।

"पर धर्म को तो मैं मानता नही आर्या!"

सुनकर गिरिजाकुमारी अत्यन्त चकित हुई। उन्हे युवक शिक्षित, भद्र और समझदार मालूम हो रहा था। उत्सुकतापूर्वक उन्होने पूछ लिया—

"क्यो नही मानते धर्म को?"

"धर्म है नही, इसलिए नही मानता। मैं नास्तिक हूँ। नास्तिको का मत है—

धर्माधर्मौ न विद्येते, न फल पुण्य-पापयो।
पञ्चभूतात्मक वस्तु, प्रत्यक्ष च प्रमाणकम्॥

अर्थात् "न धर्म है न अधर्म है, और न पाप-पुण्य का फल ही भोगना पडता है। यह समस्त विश्व पृथ्वी, पानी, आग, वायु और आकाश इन पाँच भूतो मे ही समाविष्ट है। इनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नही है। प्रमाण सिर्फ प्रत्यक्ष ही है।"

"अच्छा पहले एक बात बताओ कि तुमने हमे नमस्कार क्यो किया?"

"क्योकि मेरा मन कहता है कि आपने बुराइयो का त्याग किया है अत आप सदाचारी है और इस कारण सम्मान प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं।"

"तो तुम सदाचरण को उत्तम और मनुष्य के लिए आवश्यक मानते हो?"

"अवश्य, सदाचार के सिद्धान्त प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक आश्रम, प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समाज के लिए आवश्यक है। यद्यपि यह सत्य है कि कार्य-भेद से सदाचार के सिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न है, फिर भी उन सब का सत्य एक ही है। चाहे कोई पठन-पाठन करता हो, या सैनिक कार्य बजाता हो, व्यापार करता हो या दफ्तर मे काम करता हो, वैद्यक करता हो या वकालत करता हो, प्रत्येक के लिये सदाचार की मर्यादाएँ है, जिनके अनुसार अपने अपने कर्तव्य का पालन करने से वे सदाचारी कहलाते हैं।

"यही नही, सदाचार का क्षेत्र बहुत व्यापक है। सदाचार जहाँ व्यक्ति के लिये कल्याणकर है वहाँ जातियो के लिये भी अत्यावश्यक है। ससार मे वे ही जातियाँ उन्नति की ओर अग्रसर होती हैं जिनका आचरण उत्तम कोटि का होता है। मेरे कहने का मतलब यही है कि सदाचार व्यक्ति को उच्च बनाने के लिये उतना ही आवश्यक है, जितना किसी भी पौधे के पनपने मे तथा बढने मे जल आवश्यक है।"

"अच्छा सदाचरण के अभाव मे क्या होता है?" पुन गिरिजाकुमारी ने युवक के हृदयगत भावो को जानने के लिए प्रश्न किया।

"सदाचरण के अभाव मे देश रसातल को चला जाता है?" उस स्पष्ट वक्ता युवक ने उत्तेजित होते हुए कहना शुरू किया।

"भारतवर्ष किसी समय अपने उच्चकोटि के आचरण के लिये विख्यात था। समग्र ससार इसका लोहा मानता था। विदेशो से आने वाले यात्री मुक्तकण्ठ से भारतवासियो के उच्च आचार की प्रशसा किया करते थे। किन्तु भारत के अतिशय-उज्ज्वल अतीत के प्रकाश मे जब मैं इसके वर्तमान को देखता हूँ तो घोर निराशा, विषाद और खेद का अनुभव करता हूँ। आज भारत का चरित्र

इतना गिर गया है कि वह अनार्य कहलाने वाले देशो से भी हीन हो गया है। मनुष्य-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जो अप्रामाणिकता और अनैतिकता दिखलाई देती है उसे देखकर किस सत्पुरुष का हृदय परितप्त नही होता ? वडे-वडे व्यापारी और सेठ-साहूकार चोर-वाजारी करते हैं। शासन के उच्चतम पदो पर प्रतिष्ठित-व्यक्ति रिश्वते ले-लेकर देश को कलकित करते हैं। परिणामस्वरूप देश के स्वाधीन हो जाने पर भी जिस चारित्रिक विकास की आशा की गई थी उस पर पानी फिर गया है।"

इतना कहकर युवक कुछ रुक गया और गिरिजाकुमारी की ओर देखने लगा। उमा गिरिजाकुमारी के साथ ही चल रही थी और अपने को नास्तिक कहने वाले उस युवक की वातो को दत्त-चित्त होकर सुन रही थी। सुनते सुनते उसकी परिहास वृत्ति, और अव तक अर्जित किया हुआ ज्ञान सजग हो गया। उसने गिरिजाकुमारी की ओर उन्मुख होकर कहा—

"भगवती ! क्या नास्तिकता यही होती है ?"

गिरिजाकुमारी युवक की वातो के प्रत्युत्तर मे अव कुछ कहने जा ही रही थी कि उमा की वात सुनकर हँस पडी। उन्हे हँसते हुए देखकर युवक पूछ बैठा—

"आप हँसी क्यो ?"

गिरिजाकुमारी ने उमा के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिये वार्तालाप का सूत्र उसके हाथो मे दे देने का विचार किया और प्रत्यक्ष मे युवक से कहा—

"आर्या अर्चनाकुमारी आपकी नास्तिकता के बारे मे सन्देह व्यक्त कर रही है।"

"क्या ?" युवक मानो आकाश से गिर पडा।

अब तक उसने उमा की ओर दृष्टिपात भी नही किया था। पर अब इतने बडे दोषारोपण के पश्चात् उसने दुग्ध-धवल वस्त्रो मे आवेष्टित सृष्टि की पवित्रता को मानो मानवी के रूप मे देखा और सीधा प्रश्न किया—

"क्या फरमाया आपने ?"

"यही कि आप पूरे नास्तिक नही दिखाई देते।"

"तो क्या दिखाई देता हूँ ?"

"नास्तिक का बाना पहने हुए पक्के आस्तिक।"

"कौन कहता है ? बालक के समान निश्छल युवक फिर उत्तेजित हो उठा।

"मै कहती हूँ।" उमा ने दृढतापूर्वक कहा।

"इसका प्रमाण ?"

"प्रमाण यही, कि आप सदाचरण मे विश्वास करते है। यही तो धर्म का प्राण है। अन्यथा आप बताइये कि सदाचरण के अतिरिक्त कौन-सा धर्म है, जिसे आप नही मानते।"

"मै उस धर्म को नही मानता जिसके द्वारा आप लोग परलोक मे सुख की प्राप्ति का होना मानते है, जबकि परलोक कुछ है ही नही।"

"किन्तु मै तो धर्म का फल इस लोक और परलोक दोनो मे होना मानती हूँ।"

"वह कैसे ?"

"मनुष्य अपने उत्तम आचरण के द्वारा इस लोक मे आत्म-सतोष, आत्म-शान्ति और आत्म-सुख प्राप्त करता है, साथ ही आचारनिष्ट होने के कारण दुष्कर्मो मे प्रवृत्त नही होता अत उसके

कर्मों का बन्ध नही होता। और जब कर्मों का बन्ध नहीं होना तो आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करती हुई निर्बन्ध अर्थात् मुक्त हो जाती है। इसे ही हम निर्वाण अथवा अक्षय सुख की प्राप्ति होना कहते है।"

"अच्छा अर्चना जी! कुछ देर के लिये-आपकी बात मान भी ली जाय तो बताइये कि अक्षय सुख क्या होता है?"

उमा कुछ मुस्कराकर बोली—"आपके प्रश्न का अर्थ शायद यही है कि सुख का स्वरूप क्या है? सारी कामनाओ का अन्त हो जाना ही सच्चा और अक्षय सुख है।"

"लेकिन जब तक मनुष्य जीवित है, उसकी कामनाओ का अन्त कैसे हो सकता है?"

"आप जिसे मनुष्य अथवा प्राणी मानते हैं, वह है कौन? क्या हमारा और आपका शरीर वह प्राणी है जो जीवित रहता है या मर जाता है? नही, शरीर तो मिट्टी है जो आपके विचारानुसार पच तत्त्वो का अश है और उन्ही मे मिल जाता है। किन्तु आत्मा शरीर से पृथक् है। वह जब तक शरीर के बन्धन मे रहती है सुख-दुख का अनुभव करती है! पर अपने शुद्ध स्वरूप मे यह इन्द्रियगोचर गुणो से सर्वथा मुक्त है। अनादि और अनन्त है। पचेन्द्रिय द्वारा अनुभाव्य सुख-दुख इसे नही व्यापता।

"लेकिन आत्मा जब शरीर के माध्यम से ही प्रकट है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? शरीर है, शरीर की आवश्यकताएँ और इच्छाएँ भी है।"

"शरीर और संसार सनातन नही है। आत्मा अपने ही कर्मों से उसे घटाती या बढ़ती चली जाती है। जैसा कि आप मानते हैं सदाचरण अथवा सत्कर्म हमारी आत्मा का इस संसार मे अस्तित्व

करते जाते है और अन्त मे एक समय ऐसा आ जाता है, जब हम अर्थात् हमारी आत्माएँ मुक्त हो जाती हैं। इसके विपरीत हमारे बुरे कर्म हमे शरीर से और ससार से और भी बाँधते चले जाते है। परिणाम यह होता है कि हम बार-बार जन्म लेते हैं और मृत्यु कष्ट का अनुभव करते है। बस, इसी तरह जन्म-मरण के चक्र मे सदा घूमते रहते है।"

"पर जब तक शरीर है और उसके लिये कर्म करना अवश्य है, तब तक कर्म बन्धन से विहीन कैसे हुआ जा सकता है ?"

"यह तो बहुत ही आसान बात है। आप कर्म कीजिये पर राग और द्वेष रहित होकर।"

"द्वेष रहित होकर तो कर्म किये जा सकते है किन्तु राग रहित कर्म करना कैसे सम्भव है ? प्राणी कर्म करके इच्छापूर्ति करता है और इच्छापूर्ति होने से आनन्द प्राप्त होता है। तो जिस कर्म से आनन्द प्राप्त होता है उसमे राग तो रहेगा ही।"

"ओह, भाई ।" उमा ने युवक का नाम जानना चाहा।

"मेरा नाम कृष्णचन्द्र है आर्या !"

"तो भाई कृष्णचन्द्र जी ! आप यहाँ भूल कर रहे है। आप जिसे आनन्द मानते है, वह वास्तव मे आनन्द का सच्चा स्वरूप नही है, आसक्ति है। अच्छे और आवश्यक कार्य कर्तव्य समझकर किये जाने चाहिये। तभी उन्हे करने से सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।"

"किन्तु आसक्ति रहित कार्य कैसे किये जा सकते है ? मैं नही समझ पाता।"

"अच्छा एक बात बताइये ! आप क्रोध, मान, माया और लोभ को छोड सकते है ?"

"हाँ, ये छोडे जा सकते है।"

"और जिद्द ?"

कृष्णचन्द्र खिलखिलाकर हँस पडा और बोला—"वह भी छोडी जा सकती है।"

"बस, तब फिर इन्हे छोडकर देखिये। आप स्वय अनुभव करेगे कि उस स्थिति मे आप जो भी कर्म करेगे उसमे सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। आसक्ति नही। आसक्ति रहित जो कर्म किये जाएँगे वे सत्कर्म कहलाएँगे। निरन्तर सत्कर्म करने से आत्मा विशुद्ध होती हुई अपने चिदानन्दमय सहज स्वरूप को प्राप्त कर लेगी। और इस प्रकार आप शरीर रहते हुए भी, और कर्म करते हुए भी कर्म के बन्धनो से मुक्त हो सकेगे।"

"तो आपका यह खयाल है कि मुझ जैसे नास्तिक को भी मुक्ति अवश्य मिलेगी ?"

"हाँ, आप भले ही अपने आपको नास्तिक कहे किन्तु सदाचरण और सत्कर्मो को करते जाने के कारण आपके अनजाने ही आपके हृदय मे धर्म के बीज जमते जाएँगे और कालान्तर मे वे मुक्ति-रूपी फल अवश्य प्रदान करेगे।"

इसका मतलब यह है कि आत्मा और परमात्मा को मानने मे ही मेरी भलाई है ?"

'परमात्मा को माने या नही, पर आत्मा को मानने मे निश्चित ही आपका भला होगा। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को समझ लेने पर आपका मार्ग सरल और सीधा हो जाएगा तथा आप शीघ्र अपने भव-भ्रमण का अन्त कर अनन्त सुख के अधिकारी बनेंगे।"

'अच्छी बात है ऐसा ही सही !" कृष्णचन्द्र के चेहरे पर

अत्यन्त प्रसन्नता और सतुष्टि की झलक दिखाई दे रही थी। पर कुछ क्षण वाद ही उसने सहसा एक और प्रश्न किया—

"आर्या ! आपकी उम्र क्या है।"

"यही कोई वाईस वर्ष।" उमा ने सहज-भाव से उत्तर दिया। वह इस युवक के हृदय की सरलता से अवगत हो चुकी थी।

"वस ? फिर इतनी सी उम्र मे आपको इतना ज्ञान और उस पर इतना दृढ विश्वास कैसे प्राप्त कर लिया ?"

"आप जैसे भाइयो से पाला पडने की आशका वनी रहती है, इसलिये शीघ्रता करनी पडी।" उमा ने परिहासपूर्वक उसी क्षण उत्तर दे दिया।

कृष्णचन्द्र ने यह सुनते ही अपनी उन्मुक्त हँसी से वातावरण भर दिया। गिरिजाकुमारी अव तक तन्मयता से वार्तालाप सुन रही थी पर कृष्णचन्द्र की इस हँसी मे उन्होने भी योग दिया। उनका हृदय अपनी शिष्या की योग्यता पर गर्व से भर गया।

उसी समय कृष्णचन्द्र गिरिजाकुमारी के समीप आया और हाथ जोडकर निस्सकोच वोला—

"भगवती एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।"

"कहिये।"

"आप आर्या अर्चनाकुमारी को आज्ञा दे कि मुझे जीवन पर्यंत अपना भाई माने।"

"साध्वियो के लिये तो सभी व्यक्ति भाई के समान ही होते है।"

"नही, मेरा इन पर विशेष अधिकार होगा।"

"वह कैसे ? गिरिजाकुमारी ने सकौतुक पूछा।"

"देखिये अर्चनाकुमारी जी ने आज मेरे विचारो को नया

मोड दिया है। इसके अनुसार मैं अनेक जन्म और मरण के दुखों से छुटकारा प्राप्त करूँगा। जब एक बार मरने वाले को बचाने वाला महान् होता है, तब अनेकानेक बार के मरण से छुटकारा दिलाने वाले के उपकार से तो उऋण कभी हुआ ही नहीं जा सकता। फिर भी मैं आर्या अर्चना जी को गुरु के समान आदर और भाई के समान स्नेह जीवनपर्यन्त अर्पण करके, थोडा बहुत उऋण होना चाहता हूं।"

"अच्छा ऐसा ही सही!" गिरिजाकुमारी का हृदय इस शिशु के समान पवित्र हृदय वाले युवक के प्रति ममता से भर गया।

"लेकिन आर्या अर्चनाकुमारी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की या नहीं?" कहते हुए वह उमा की ओर पलटा।

उमा कुछ बोली नहीं, मृदु मुस्कान से ही मानो उसने स्वीकृति दी।

वार्तालाप चलता रहने के कारण मार्ग बड़ी सरलता से कट गया था। महिमावती कुछ पीछे रह गई थीं अतः गिरिजाकुमारी उनके आ पहुंचने तक तनिक विश्राम लेने की दृष्टि से एक शिला पर बैठ गईं। उमा समीप ही खड़ी रही।

कृष्णचन्द्र ने दोनों को नमस्कार किया और पुनः दर्शन करने की इच्छा प्रकट करते हुए जाने का उपक्रम किया। कहा—

"भगवती! अब इजाजत दीजिये। मैं चलता हूं।"

"और आपकी नास्तिकता?" उमा परिहास किये बिना नहीं रह सकी।

"वह भागती चली गई।" कहकर हँसता हुआ वह आस्तिक नास्तिक चल दिया। □

२८

भावना के भूखे ठाकुरजी



कृष्णचन्द्र के पिता श्री दीनानाथ गौड नागौर के एक कुलीन और प्रतिष्ठित खानदान के व्यक्ति थे। ५ वडे-वडे राजा-रईस तथा अमीर उनके पूर्वजो के जजमान थे। यज्ञ, विवाह तथा यज्ञोपवीत आदि अनुष्ठानो मे उन्हे वडे सम्मान से हाथी, पालकी आदि सवारियाँ भेजकर बुलाया जाता था। स्वय दीनानाथ भी विद्वान पडित थे। अपने विशाल मकान के एक हिस्से मे ज्ञानाभिलाषी छात्रो को ज्ञान दान दिया करते थे। वदले मे कोई शिष्य कुछ दे सकता तो दे देता। जो कुछ भी नही दे सकता वह भी अन्य सभी छात्रो के साथ समान रूप मे विद्याध्ययन करता था। दीनानाथ को अध्यापन के वदले मे द्रव्य पाने का तनिक भी लोभ न था। पूर्वजो की अर्जित की हुई सम्पत्ति यथेष्ट थी और व्यय वहुत कम था। परिवार के नाम से वर्तमान मे सिर्फ एकमात्र पुत्र कृष्णचन्द्र और पुत्रवधू राधा थी। पत्नी का स्वर्गवास तीन-चार वर्ष पहले ही हो गया था।

कृष्णचन्द्र का लालन-पालन प० दीनानाथ और उनकी पत्नी ने अत्यन्त प्यार से किन्तु वडी सतर्कता से किया था। परिणामस्वरूप पिता के सभी सद्गुण उनमे कूट-कूटकर भर गये थे। पान, वीडी, सिगरेट और भग आदि वस्तुओ का उसने कभी स्पर्श भी नही किया

था। किन्तु समय को देखते हुए दीनानाथ ने उसे स्कूल और उसके पश्चात् कॉलेज मे शिक्षा दिलवानी उचित समझी थी अत सह-पाठियो और अध्यापको के ससर्ग के कारण निर्व्यसनी और सदाचारी होते हुए भी वह आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक और पुण्य-पाप के फल पर विश्वास खो बैठा था।

उसके विचार कुछ निराले थे। वह परलोक नही मानता था किन्तु अन्य नास्तिको की तरह यह भी पसन्द नही करता था कि—

यावज्जीवेत्सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमन कुत ?

अर्थात् जब तक मनुष्य जीए, खूब सुखपूर्वक जीए। जीवन का आनन्द लूटने के लिये पैसा न हो तो ऋण लेकर घी पीए। यह देह तो भस्म हो जाएगी फिर इसका पुन आना कैसा ?

इसी प्रकार परमात्मा को न मानते हुए भी वह भारत माता का अनन्य भक्त था। भारतीय संस्कृति और गौरव का महान् प्रशसक तथा उसकी उन्नति का इच्छुक था। वक्त आने पर देश के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर देने की भावना रखता था। यही कारण था कि वह अधूरा नास्तिक बन कर रह गया था।

राजनीति मे एम० ए० करके जब कृष्णचन्द्र ने हाईस्कूल मे अध्यापन कार्य शुरू किया, उसके पिता ने एक गरीब किन्तु विद्वान् ब्राह्मण की अत्यन्त सुन्दर और सुलक्षण कन्या से उसका पाणिग्रहण करा दिया। नववधू राधा उस समय सिर्फ चौदह वर्ष की सुकुमारी कन्या थी। किन्तु अपने ठाकुरजी पर वह अचल श्रद्धा रखती थी। एक यही श्रद्धा उसके दरिद्र पिता ने अपनी कन्या को दहेज मे दी थी।

विवाह के समय जब वह ससुराल आई तो उसने बडे आश्चर्य से अपने ससुर की आलीशान हवेली को देखा। कृष्णचन्द्र ने परम स्नेह से अपनी पत्नी से पूछा—

"तुम्हे घर पसन्द आया ?"

"हाँ, पसन्द आया। पर मेरे ठाकुरजी के रहने के लिये पूजा-गृह कहाँ है ?"

"पूजा-गृह।"

"हाँ, हाँ ! पूजा-गृह ! तुम यह भी नही समझते क्या ?"

कृष्णचन्द्र कहना तो चाहता था कि वह स्वय पूजा नही करता तो क्या हुआ, उसके पिता से लेकर न जाने कितनी पीटियाँ पूजा करते-करते स्वर्ग चली गई। किन्तु अपूर्व सुन्दरी पत्नी के सामने उसे अनभिज्ञ बना रहने मे ही आनन्द आ रहा था। बोला—

"साक्षात् कृष्ण तो तुम्हारे सामने खडे है राधा ! पूजाघर मे और किस भगवान् को विराजमान करोगी ?"

अपनी बडी-बडी आँखे फाडकर राधा बोली—

"यह कैसी बात ? तुम क्या ठाकुरजी से बडे हो ?"

"पता नही, देखूं तुम्हारे ठाकुरजी को, कहाँ है वे ?"

"वाह, यह भी नही जानते ? अच्छा आओ मेरे साथ।"

कृष्णचन्द्र मुस्कराता हुआ चुपचाप उसके साथ चला। दूसरी मंजिल पर एक छोटे से कमरे मे जाकर देखा कि एक आले मे सोने का सुन्दर सिंहासन रखा है। सिंहासन के ऊपर छत्र है और अन्दर एक छोटा झूला। झूले के अन्दर रेशमी वस्त्रो मे लिपटे हुए राधा के ठाकुरजी बैठे है। फिर भी अनजान बनते हुए उसने पूछा—

"कहाँ है ठाकुरजी ? दिखाई तो नही देते ।"

"वे क्या सामने झूले मे विराजमान है ।"

"अरे, तुम्हारे ठाकुरजी इतने से ही है क्या ?"

"हाँ इतने मे ही है । पर इससे क्या हुआ ? तुम इन्हे प्रणाम तो करो !"

कृष्णचन्द्र ने जूते पहने-पहने ही हाथ जोडे । यह देखकर राधा नाराज हो गई और झुंझलाकर बोली—

"यह क्या अनाडियो के जैसे हाथ जोड रहे हो । जूते खोलो न, और तब अच्छी तरह प्रणाम करो ।"

"पर तुम मुझे बताती तो हो नही, फिर कैसे अच्छी तरह प्रणाम करूँ ?"

"अच्छा मेरे पास आओ ! जैसे मै करूँ वैसे ही तुम नमस्कार करना ।"

कृष्णचन्द्र यही तो चाहता था । राधा के पास आकर खड़ा हो गया और जिस प्रकार घुटने झुकाकर और जमीन पर सिर रखकर राधा ने प्रणाम किया, ठीक उसी प्रकार उसने भी किया । मन मे कहा—ठाकुरजी, अगर वास्तव मे ही तुम हो तो मेरी राधा को जीवन मे कभी कष्ट मत होने देना ।"

राधा का प्रणाम हो चुका था अतः वह भी उठकर खड़ा हो गया और बनावटी गम्भीरता से बोला—

"राधा, एक बात बताओ ! तुम्हारे ठाकुरजी मुझसे नाराज तो नही है ?"

"नाराज क्यो होंगे भला ?" वह आश्चर्य से भरकर बोली ।

"इसलिए कि मैंने इन्हे ठीक से नमस्कार नही किया और जूते पहने खडा रहा।"

"लो और सुनो, मेरे ठाकुरजी क्या तुम्हारी तरह एम० ए० पास हैं, जो हर बात मे मीन-मेख निकालेगे। भूल से गलती हो जाने पर वे माफ कर देते है।"

"तो उन्होने मुझे माफ कर दिया ?"

"हाँ कर दिया। पर अब कभी जूते पहनकर मत आना।"

"और प्रणाम ?"

"भगवान् भावना के भूखे होते है। चाहो तो प्रणाम कर लेना, नही तो न सही।"

"तब तो तुम्हारे ठाकुर जी बहुत अच्छे है राधा !"

"झूठमूठ बाते मत बनाओ, चलो अब ! भूख नही लगी है क्या ? पर ठहरो, मै भी कैसी भुलक्कड हूँ। इतनी देर से ध्यान नही आया।" कहते हुए राधा ने झुककर पति के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया।

"अरे, अरे, यह क्या किया ?" कहते हुए असीम अनुराग-पूर्वक कृष्णचन्द्र ने दोनो कधे पकडकर उसे उठाया और उसके नेत्रो मे झाकने लगा।

"क्यो क्या हुआ ?" राधा ने भोलेपन से पूछा।

"ठाकुरजी को प्रणाम करना ही तो काफी था मुझे किस-लिये ?"

"वाह, ठाकुरजी तो अपनी जगह पर है और तुम • ।"

"कौनसी जगह है मेरी ?"

"मैं नहीं जानती जाओ।" कहती हुई वह भागने लगी पर कृष्णचन्द्र ने उसे छोड़ा नहीं। कहा—

"बताओगी तभी जाने दूँगा।"

"हार कर राधा ने मुस्कराते हुए दाहिने हाथ की तर्जनी अपने हृदय पर रखी और क्षणभर में ही भाग खड़ी हुई।

मुग्ध में डूबा हुआ कृष्णचन्द्र कुछ देर निर्निमेष ठाकुरजी की ओर देखता रहा और फिर रसोईघर की ओर चल दिया। □



२९

गुरु मिली



शनै-शनै समय चार वर्ष आगे खिसक गया। कृष्णचन्द्र पूरे छब्बीस वर्ष का हो गया। दो वर्ष उसके पिता का देहान्त हुए भी हो गये, किन्तु घर सभालने मे उसे कोई विशेष अभिरुचि नही हुई। घर से स्कूल जाता और वापिस आकर राधा के ठाकुरजी को लेकर छेड़खानियाँ करता और बीच-बीच मे अट्टहास करके घर भर देता।

इसके विपरीत, राधा सिर्फ अठारह वर्ष की उम्र मे ही पूर्ण गृहिणी बन गई थी। ससुर के देहान्त के बाद तो घर की सारी जिम्मेदारी ही उस पर आ गिरी थी। पर इससे उसे तनिक भी परेशानी न थी। उसके ससार मे दो ही इष्ट थे। एक ठाकुरजी और दूसरे पति। ठाकुरजी की सेवा-पूजा के बाद उसका सारा समय घर की व्यवस्था और पति की शुश्रूषा मे जाता। पति का असीम अनुराग और बच्चो का सा सरल स्वभाव उसे अहर्निश सुख-सागर मे डुबोये रहता। पहले के समान अब वह कृष्णचन्द्र से ठाकुरजी को लेकर तुनकती नही। कह देती—

"तुम्हे मेरे ठाकुरजी के लिए परेशान होने की जरूरत नही। तुम अपने देश की फिक्र करो, ठाकुरजी की चिन्ता तो मैं स्वय ही कर दूंगी।"

लेकिन एक दिन राधा मारे आश्चर्य के हतबुद्धि-सी हो गई।

धुले वस्त्र पहने हुए जब वह ठाकुरजी की पूजा करके एक हाथ मे चरणामृत और दूसरे हाथ मे गगाजली लेकर पूजा-घर से निकल रही थी कि कमरे की देहरी पर उसने कृष्णचन्द्र को सिर झुकाए हुए देखा। ऐसा लगा मानो कृष्णचन्द्र ने उसी को मस्तक झुकाये हुए कहा था। हैरान होकर राधा बोली—

"अरे, उठो भी! मुझे बाहर आने दो! कोई समझेगा कि तुम मेरे सामने ही सिर झुकाए हुए हो।"

"तो क्या हुआ! ऐसा ही सही। याद है, इस घर मे आने पर प्रथम दिन तुमने ठाकुरजी के सामने पैरो पर सिर रखा था। आज मैंने ऐसा कर दिया तो क्या हुआ?

"छि छि मुझे नरक मे भेजोगे क्या?"

"नही राधा! तुम तो स्वर्ग मे जाओगी ही, साथ मुझे भी साथ ले चलना। ले चलोगी न?"

"पर तुम तो स्वर्ग-नरक कुछ मानते ही नही हो। क्या इस पृथ्वी पर किसी नये स्वर्ग का निर्माण हुआ है?"

"पृथ्वी पर का स्वर्ग तो हमारा घर है ही, जिसमे मैं मानवी अप्सरा के साथ रहता हूँ। मैं तो उस स्वर्ग की बात कह रहा हूँ, जिसमे मनुष्य मरने के बाद अपने पुण्य के बल पर जाता है।"

"तुम ? तुम ऐसा कह रहे हो? क्या बात है आज? तबियत तो ठीक है न?" राधा की आँखे आश्चर्य से फैल गई।

"हाँ, मैं अपने पूरे होश-हवास मे बोल रहा हूँ। चिन्ता मत करो।" कृष्णचन्द्र राधा की आशंका पर हँस पड़ा और बोला—

"कल से मैं भी ठाकुरजी की पूजा करूँगा।"

"मेरा अहोभाग्य, जो तुम पूजा करोगे। ठाकुरजी की शायद ऐसी ही इच्छा है। क्या उनके इस घर मे से दिन पूरे हो गये?"

कृष्णचन्द्र खिलखिलाकर हँस पडा। पत्नी के समीप आ उसकी ठोडी को अपने हाथ से ऊँची उठाकर स्नेह-सिक्त स्वर से बोला—

"ठाकुरजी के नही, मेरी नास्तिकता के दिन पूरे हो गये राधा! आज उसका जनाजा निकाल आया हूँ।"

"ऐसे कौन से गुरु मिल गये आज, जिन्होने तुम्हारी बुद्धि फेर दी?" राधा हैरान होकर बोली!

"गुरु मिले नही, गुरु मिली।"

"क्या ? क्या कहा?"

"यही कि गुरु मिली।"

"हाय, हाय, क्या हो गया तुम्हे आज?" राधा रुँआसी हो गई। उसे पक्का विश्वास हो गया कि उसके पति को कुछ हो गया है। गगाजली और चरणामृत एक ओर रखकर वह कृष्णचन्द्र के मस्तक और शरीर पर हाथ फेरकर देखने लगी कि कही उसे तेज बुखार तो नही हो आया है जिसके कारण ये अट-सट बक रहे है।

उसकी घबराहट देखकर कृष्णचन्द्र ने उसे अधिक देर भुलावे मे रखना उचित नही समझा। सहज स्वर से बोला—

"मैं सच कह रहा हूँ राधा! चलोगी मेरे गुरु के पास।"

"कौन है वह?" तनिक आश्वस्त होकर राधा ने पूछा।

"वे एक जैन साध्वी है, परम विदुषी, शान्ति और सन्तोष की साक्षात् मूर्ति। उनकी नैसर्गिक प्रभा देखकर तुम्हे मेरी बातो पर विश्वास हो जाएगा।"

"तुम कब मिले उनसे?"

"आज ही। रुण गांव से लौट रहा था। रास्ते मे सौभाग्य से

धुले वस्त्र पहने हुए जब वह ठाकुरजी की पूजा करके एक हाथ मे चरणामृत और दूसरे हाथ मे गगाजली लेकर पूजा-घर से निकल रही थी कि कमरे की देहरी पर उसने कृष्णचन्द्र को सिर झुकाए हुए देखा। ऐसा लगा मानो कृष्णचन्द्र ने उसी को मस्तक झुकाये हुए कहा था। हैरान होकर राधा बोली—

"अरे, उठो भी! मुझे बाहर आने दो! कोई समझेगा कि तुम मेरे सामने ही सिर झुकाए हुए हो।"

"तो क्या हुआ! ऐसा ही सही। याद है, इस घर मे आने पर प्रथम दिन तुमने ठाकुरजी के सामने पैरो पर सिर रखा था। आज मैंने ऐसा कर दिया तो क्या हुआ?

"छि छि मुझे नरक मे भेजोगे क्या?"

"नही राधा! तुम तो स्वर्ग मे जाओगी ही, साथ मुझे भी साथ ले चलना। ले चलोगी न?"

"पर तुम तो स्वर्ग-नरक कुछ मानते ही नही हो। क्या इस पृथ्वी पर किसी नये स्वर्ग का निर्माण हुआ है?"

"पृथ्वी पर का स्वर्ग तो हमारा घर है ही, जिसमे मैं मानवी अप्सरा के साथ रहता हूँ। मैं तो उस स्वर्ग की बात कह रहा हूँ, जिसमे मनुष्य मरने के बाद अपने पुण्य के बल पर जाता है।"

"तुम ? तुम ऐसा कह रहे हो? क्या बात है आज? तबियत तो ठीक है न?" राधा की आँखें आश्चर्य से फैल गई।

"हाँ, मैं अपने पूरे होश-हवास मे बोल रहा हूँ। चिन्ता मत करो।" कृष्णचन्द्र राधा की आशका पर हँस पड़ा और बोला—

"कल से मैं भी ठाकुरजी की पूजा करूँगा।"

"मेरा सद्भाग्य, जो तुम पूजा करोगे। ठाकुरजी की शामत थोड़े ही आई है। क्या उनके इस घर मे से दिन पूरे हो गये?"

कृष्णचन्द्र खिलखिलाकर हँस पडा। पत्नी के समीप आ उसकी ठोडी को अपने हाथ से ऊँची उठाकर स्नेह-सिक्त स्वर से बोला—

"ठाकुरजी के नही, मेरी नास्तिकता के दिन पूरे हो गये राधा! आज उसका जनाजा निकाल आया हूँ।"

"ऐसे कौन से गुरु मिल गये आज, जिन्होने तुम्हारी बुद्धि फेर दी?" राधा हैरान होकर बोली!

"गुरु मिले नही, गुरु मिली।"

"क्या ? क्या कहा?"

"यही कि गुरु मिली।"

"हाय, हाय, क्या हो गया तुम्हे आज?" राधा रुँआसी हो गई। उसे पक्का विश्वास हो गया कि उसके पति को कुछ हो गया है। गगाजली और चरणामृत एक ओर रखकर वह कृष्णचन्द्र के मस्तक और शरीर पर हाथ फेरकर देखने लगी कि कही उसे तेज बुखार तो नही हो आया है जिसके कारण ये अट-सट बक रहे है।

उसकी घबराहट देखकर कृष्णचन्द्र ने उसे अधिक देर भुलावे मे रखना उचित नही समझा। सहज स्वर से बोला—

"मैं सच कह रहा हूँ राधा! चलोगी मेरे गुरु के पास।"

"कौन है वह?" तनिक आश्वस्त होकर राधा ने पूछा।

"वे एक जैन साध्वी है, परम विदुषी, शान्ति और सन्तोष की साक्षात् मूर्ति। उनकी नैसर्गिक प्रभा देखकर तुम्हे मेरी बातो पर विश्वास हो जाएगा।"

"तुम कब मिले उनसे?"

"आज ही। रण गाँव से लौट रहा था। रास्ते मे सौभाग्य से

उनसे मुलाकात हो गई। उनकी बातो का मुझ पर बडा प्रभाव पडा। समझ लो दो घटे मे कृष्णचन्द्र की काया पलट गई। चलोगी न उनके दर्शन करने ?"

"हाँ चलूंगी। कब ले चलोगे ?"

"जब तुम कहो।"

"अच्छी बात है। पूर्णिमा के बाद ले चलना। पर अब चलकर स्नान करो। मैं जाकर खाना तैयार करती हूँ।"

"हाँ चलो, पर पहले ठाकुरजी का भोग ।"

"उन्हे थोडी देर भूखा रहने दो। तुम उठो अब।" कहती हुई राधा हँस पडी और अपने सौन्दर्य की छटा बिखेरती हुई चल दी।





३०

काल बली ले चला

आर्या गिरिजाकुमारी ने अभी नागौर मे प्रवेश नही किया था, किन्तु उनकी कीर्ति वहाँ पहुँच चुकी थी। फलस्वरूप जनसमूह दर्शनार्थ उमड पडा और मार्ग नर-नारियो से भर गया। भारी कोलाहल और जय-जयकार के बीच तीनो आर्याओ ने नगर-प्रवेश किया। प्रत्येक व्यक्ति खुशी से फूला नही समा रहा था और नैसर्गिक शान्ति तथा चारित्र्य की प्रतिमूर्तियो को देखकर अपने नेत्रो को सफल मान रहा था।

जन-समुदाय धीरे-धीरे उपाश्रय के समीप आ पहुँचा और गिरिजाकुमारी ने उसमे प्रवेश करने के लिये प्रथम सीढी पर कदम रखा। ठीक उसी समय उमा का दाहिना नेत्र जोरो से फडक उठा। किसी अनिष्ट की आशका से उसका दिल दहल गया। कुछ कहने का अवसर नही था अत वह चुप रही। जुलूस मे सम्मिलित हुए व्यक्ति उपाश्रय मे यथास्थान बैठे और भावभरी प्रार्थना की गई। आर्या गिरिजाकुमारी ने सक्षिप्त प्रवचन दिया।

उस समय दिवस का द्वितीय प्रहर प्रारम्भ हो चुका था। आर्या महिमावती और अर्चनाकुमारी ने आहार की गवेषणा की और सभी ने स्वल्पाहार किया।

गिरिजाकुमारी आहार से निवृत्त होकर आगन्तुको से वार्तालाप

करने मे व्यस्त हो गई । किन्तु कुछ समय पश्चात् जब अर्चनाकुमारी अपना कार्य समाप्त करके बाहर आई तो देखा कि भगवती अपने स्वभाव के विरुद्ध लेटी हुई हैं और आगन्तुक सब जा चुके हैं । अर्चना-कुमारी के हृदय मे प्रात काल ही चोर बैठ गया था । शीघ्रतापूर्वक आकर पूछा—

"भगवती ! आज आप असमय मे ही कैसे लेट गई हैं ?"

"कोई खास बात तो नही है बेटी ! मस्तक मे कुछ पीडा का अनुभव हो रहा है और लगता है कि शरीर मे भी कुछ भारीपन-सा है ।"

चिन्ताग्रस्त होकर अर्चनाकुमारी ने उनके मस्तक पर हाथ रखा वह उत्ताप मे जल रहा था । तीव्र ज्वर के लक्षण स्पष्ट प्रतीत हो रहे थे ।

"आपको तो ज्वर हो आया है भगवती !"

"हाँ लगता तो यही है पर क्या ? ठीक हो जायेगा कल तक । चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?"

पर अर्चनाकुमारी की चिन्ता मिट नही सकी । वह शीघ्रता-पूर्वक जाकर आर्या महिमावती को बुला लाई और उन्होंने चिकित्सक को बुलवाने का प्रबन्ध किया ।

चिकित्सा प्रारम्भ हुए लगभग दो मास होने आए, किन्तु गिरिजाकुमारी का स्वास्थ्य सुधरा नही । वे क्रमश कृश होती गई । इसी बीच समाचार आए कि आचार्य यशोभूषण नागौर के समीप ही ऊह नामक ग्राम मे पधार रहे है । उमा की दीक्षा के पश्चात् से अब तक छ वर्ष के दीर्घकाल मे आर्या गिरिजाकुमारी को आचार्य श्री के दर्शन प्राप्त करने का सुअवसर नही मिल

पाया था। अत गुरुदेव के दर्शन की तीव्र इच्छा उनके हृदय मे जागृत हुई।

आचार्य श्री के दर्शनो की इच्छा महिमावती तथा अर्चनाकुमारी के हृदय मे भी कम न थी किन्तु गिरिजाकुमारी के स्वास्थ्य को देखते हुए, कई मील का पैदल-प्रवास करना उन्हे खतरे से खाली न लगा। अत हिमावती ने विहार का तीव्र विरोध किया। कहा —

"भगवती ! आप विहार करने का आग्रह न करे। अभी आपका स्वास्थ्य ठीक नही है। मैं समझती हूँ कि आपके अस्वास्थ्य के विषय मे ज्ञात होने पर आचार्य श्री स्वय ही इधर पधारने का प्रयत्न करेंगे।"

गिरिजाकुमारी हँस पडी और मृदु स्वर से बोली—

"पगली बहन, ऐसा मुझे क्या हुआ है जो मैं चल ही नही सकूंगी और गुरुदेव को कष्ट करके यही दर्शन देने आना होगा। साधुओ मे इतनी सुकुमारता ?"

"लेकिन शरीर का कुछ खयाल रखना तो आवश्यक है भगवती ! आखिर यही तो हमारा सयम-साधना का प्रधान आधार है। इसकी अपेक्षा करना ठीक नही।"

"पर उपेक्षा कहाँ की जा रही है ? चिकित्सा चल रही है, और तुम दोनो इसकी आवश्यकता से अधिक सँभाल रखती हो। शरीर का प्राप्य इसे मिल रहा है अब आवश्यकता है मन के प्राप्य की। मन गुरुदेव के दर्शन करना चाहता है तो इसे भी करने दो। अन्यथा शायद यह गुरुदेव के दर्शन से वचित ही रह जाए।"

"यह आप कह क्या रही है ?"

"ठीक ही तो कह रही हूँ महिमा ! क्या तुम चाहती हो कि अन्त समय मे गुरु-दर्शन के बिना ही ये प्राण प्रयाण कर दें ? नही,

यह नही होगा। हम कल ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे। चिन्ता मत करो सब शुभ ही होगा, अर्चना कहाँ है ?"

"मैं इधर आपके पास ही तो हूँ भगवती !" गिरिजाकुमारी के सिरहाने की ओर खडी हुई उमा ने उमडती व्यथा को बल-पूर्वक दवाते हुए कहा।

गिरिजाकुमारी ने मुँह फेर कर उसके सूखे हुए मुँह और डब-डबाए हुए नेत्रो को देखा तो अत्यन्त स्नेह से अपनी ओर खीचकर कहा—

"अरे, तुम दोनो तो पागल हो ही, मुझे भी क्या अन्त मे पागल बनाओगी ? अर्चना ! शरीर का नाश तो अवश्यम्भावी है इसके लिए खेद क्या करना ? मृत्यु प्रभु का निमन्त्रण है। वह जब भी आए उसका सहर्ष स्वागत करना चाहिये।" तनिक विश्राम लेकर वह फिर बोली—"मुझे तो सन्तोष इस बात का है कि मेरे जीवन काल मे ही संयम-मार्ग पर चलने का तुम्हारा अभ्यास सफल हो गया है। आशा से अनुसार ज्ञानार्जन भी कर लिया है। तुम मेरे न होने पर भी सहस्र-रश्मि सूर्य बनकर जैनधर्म को प्रकाशित करो और अपनी प्रभा से जन-मानस को चिरकाल तक प्रभावित करो यही मेरी कामना है। संसार मे जीवन और मृत्यु का खेल तो चलता ही रहता है। प्रतिदिन प्राणी आते और जाते रहते है। यह कोई अनोखी बात नही है।"

"इसलिये बेटी, किसी के संयोग से राग और वियोग मे शोक करना नितान्त अनुचित और निरर्थक है। इसके अतिरिक्त महिमा-वती के होते तुम्हे किस बात की चिन्ता होनी चाहिए ? वास्तव मे तुम्हारे जीवन को बनाने वाली वही है। उनके हाथो मे तुम्हे सौप-कर मै निश्चिन्त हूँ।"

कण्ठावरोध के कारण उमा कुछ उत्तर न दे सकी, किन्तु आर्या महिमावती ने भगवती को आगे बोलने से रोका—

"बस कीजिए भगवती! आपको आज क्या हो गया है? आप शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करेगी।"

"अच्छा बहन! अब कुछ नही कहती। मैने सोचा कि शायद फिर कुछ न कह पाऊँ इसलिए ।"

"बात फिर बीच मे ही रोकनी पडी। आर्या महिमावती ने उन्हे आग्रहपूर्वक हाथ मे दवा थमा दी और जल का पात्र भी।

अगले दिन प्रात काल ही गिरिजाकुमारी ने सबके आग्रह और अपने स्वास्थ्य पर ध्यान न देते हुए नागौर से प्रस्थान कर दिया। शरीर निर्बल होने पर भी वे मानसिक बल के आधार पर धीरे-धीरे डेह जा पहुँची।

पुण्यात्मा गिरिजाकुमारी को अपने गुरुदेव का दर्शन करना था। लगता था कि केवल इसीलिये उन्होने अपनी आत्मा को महा-प्रयाण करने से रोक रखा था। गन्तव्य स्थान पर पहुँचते ही उन्होंने शय्या ग्रहण की और फिर उसे अन्त तक न छोड सकी।

दो दिन पश्चात् आचार्य यशोभूषण को डेह पहुँचने पर शिष्याओ के आगमन, और महासती गिरिजाकुमारी के अस्वास्थ्य के समाचार मिले और वे उसी समय मुनि जगतनारायण जी के साथ आर्याओ के निवास-स्थान पर आ पहुँचे। किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी और भगवती अनन्त यात्रा के लिये तैयार हो चुकी थी।

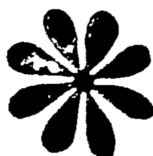
आचार्य के आगमन पर महा-प्रयाण के लिये प्रस्तुत परम-पावन और दिव्य-मूर्ति आर्या गिरिजाकुमारी का चेहरा परम आनन्द से खिल उठा। अथाह सन्तोष उनके शुभ्र मुख-मण्डल पर दृष्टिगोचर हो रहा था। अपने नेत्रो को धन्य मानते हुए उन्होंने उसी समय

सम्पूर्ण चराचर जीव-जगत् से क्षमा याचना की। तत्पश्चात् अपने पूज्यपाद आचार्य को धीरे-धीरे दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया तथा समाधि-मरण धारण करने की आज्ञा चाही।

वैराग्यमूर्ति आचार्य का हृदय भी इस अचानक अभियान को देखकर द्रवित हो गया और वे शीघ्रतापूर्वक बुझती हुई उस लौ को अपलक निहार रहे थे, लगता था कि उनके अन्तःकरण से सतत निकलते हुए अनन्त आशीर्वाद अपनी शिष्या को मूक विदाई दे रहे है।

अन्तिम बार उस पुनीत आत्मा के नेत्र खुले और गुरुदेव पर, मुनि जगननारायण जी पर, आर्या महिमावती पर, और फिर अन्त मे अर्चनाकुमारी पर आकर टिक गए। किन्तु धीरे-धीरे वे निमीलित हुए और पुन न खुल सके। उसी क्षण विश्व का कोना-कोना अपने प्रकाश मे उद्भासित करती हुई, सन्ध्या कालीन प्रभाकर की भाँति वे अनन्त की ओर प्रयाण कर गई।

विधि का विधान पूरा हुआ और आदिसागर यति की भविष्य-वाणियों मे से एक सत्य साबित हो गई। □



३१
शक्ति-संचय

उपाश्रय मे भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। आर्या गिरिजा-कुमारी को स्वर्ग-प्रयाण किये कई दिवस बीत चुके थे। किन्तु लगता था कि शोक की काली तमिस्रा का अभी अन्त नही हुआ। नर-नारी आते और व्यथापूर्ण हृदय से स्वगस्थ आत्मा को भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि देकर चले जाते। उस स्वर्गीय विभूति का अभाव लोगो के हृदयो को अब तक सन्तुलित नही कर पाया था। प्रत्येक प्राणी का मन उस दिवगत आत्मा के लिए बार-बार रो उठता था।

स्वनाम धन्य आर्या महिमावती यन्त्र-चालित की भाँति अपने नित्य-नियम और नित्यक्रिया मे सलग्न रहती। उनके चेहरे की गम्भीरता और वज्र सदृश दृढता के घेरे को कोई तोड नही पाता था। किन्तु फिर भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि उस घेरे के अन्दर व्यथा का कैसा दावानल सुलग रहा है। प्रत्येक आने वाले वे सहज भाव मे बात करती, उनके प्रश्नो के उत्तर देती, किंतु वाणी के खोखलेपन को वे स्वय भी छिपा नही पाती थी।

सबसे अधिक कठिनाई उन्हे अर्चनाकुमारी को सम्हालने मे हो रही थी। वह विह्वल की भाँति महिमावती की ओर देखा करती। हृदय के भीतर और बाहर सभी जगह उसे शून्यता दृष्टिगोचर होती। उसे लगता कि इस अनन्त शून्य को भेदकर प्रकाश की एक किरण

भी अब कभी उस तक नही पहुँच सकेगी । भगवती की विद्यमानता मे आठ वर्ष का काल बात करते व्यतीत हो गया था । कितना स्नेह पाया था उनसे, कितनी लगन और तन्मयता से उन्होने उसे कुछ योग्य बनाया था । उन्हे मानो बहुत पूर्व ही आभास हो गया था कि इस नर-देह मे उन्हे अधिक समय नही रहना है ।

इन्ही भावनाओ मे अर्चनाकुमारी हर समय डूबती उतरती रहती थी । आज भी वह खोई-खोई-सी महिमावती के समीप बैठी थी । ठीक उसी समय उसके पिता मुनि जगतनारायणजी ने उपाश्रय मे प्रवेश किया ।

उन्हे देखते ही दोनो आर्याएँ उठ खडी हुई उन्हे वदन किया और बैठने के लिए प्रार्थना की । मुनि श्री ने आशीर्वाद देते हुए आसन ग्रहण किया और आर्या महिमावती तथा अपनी पुत्री अर्चना-कुमारी की ओर दृष्टिपात करते हुए मृदुस्वर से कहा—

"गुरुदेव ने आपका कुशलक्षेम जानने के लिए मुझे भेजा है । कहिये आपका मन सुस्थिर है न ?

"हाँ आर्य ! हम प्रयास कर रहे है भगवती के अभाव को सहा बनाने का, किन्तु लगता है कि अर्चना उसमे सफल नही हो रही है ।" महिमावती ने कुछ म्लान होकर उत्तर दिया । अर्चनाकुमारी का हृदय पिता को देखकर भर आया था, पर वह बरबस अपने आपको सम्हाल कर बैठी थी ।

"क्यो अर्चना ! यह कायरता कैसी ?"

पिता के मधुर तिरस्कारपूर्ण वचनो को सुनकर उसी कम्पित स्वर से बोली—"प्रयत्न तो बहुत करती हूँ, पर सफलता नही मिलती ।"

"तो क्या ऐसे ही कमजोर हृदय को लेकर तुम सयम की आराधना करोगी ? ऐसे अस्थिर चित्त से साधना-पथ पर वढोगी ? महादेवी गिरिजाकुमारी पर अगर तुम्हारी सच्ची श्रद्धा, भक्ति और स्नेह है तो उनके गुणो का स्मरण करो और उनके वताये हुए मार्ग पर अक्षरश चलने का प्रयत्न करो। उनके वियोग मे मन को अशान्त वनाए रखना और आकुल-व्याकुल वने रहना तो मोह का लक्षण है वेटी! और मोह-ग्रस्त रहकर तुम अपने पथ पर अग्रसर नही हो सकोगी। भगवान महावीर के इस कथन को तुम्हे हमेशा ध्यान मे रखना चाहिये —

"दुक्ख हय जस्स न होइ मोहो"

अर्थात् जिसके मोह नही है, समझो उसका दु ख नष्ट हो गया।

"सदा स्मरण रखो अर्चना, जव तक मानव मोह और आसक्ति का घर वना है तव तक किसी भी स्थिति मे उसे शान्ति और निरा-कुलता प्राप्त नही हो सकती। ससार के किसी भी पदार्थ अथवा किसी भी सम्वन्धी के द्वारा मन को सच्चा सुख प्राप्त नही होता। मोही जीव अपने राग-भाव के कारण ही दु ख का अनुभव करता है। शरीर तो अस्थिर होता है, इसकी नैसर्गिक वनावट ही ऐसी है कि इसके वदलने मे पलभर भी समय नही लगता। अनादिकाल से ससार मे भटकते जीव ने न जाने कितने परिवार वनाये है। एक भी जीव ऐसा नही है जो अनेक वार इसका आत्मीय न हो चुका हो। पर शरीर वदलते ही सगे-सम्वन्धी विराने हो जाते है, आत्मीय पराये हो जाते है। स्वय अपना शरीर भी तो अपना नही रहता! फिर माता-पिता, गुरु-शिष्य सव कैसे अपने वने रह सकते है ?"

"इसलिये मेरा कहना है कि तुम वस्तु-स्वरूप का चिन्तन करो,

तभी राग-भाव से निवृत्ति हो सकेगी। जगत के सच्चे स्वरूप का ज्ञान ही सच्चे वैराग्य का जनक होता है और सच्चा वैराग्य संयम की साधना में सहायक बनता है।''

"आपका कथन सत्य है। मुझे अपने मन की कमजोरी पर घोर पश्चात्ताप है। आज आपने मेरे मानस-चक्षुओं को खोल दिया। मैं अब मन को संयत रखने का पूरा प्रयत्न करूंगी।'' अर्चनाकुमारी ने मन को आश्वस्त अनुभव करते हुए उत्तर दिया।

"सुनकर मुझे अत्यन्त सुख हुआ। ईश्वर करे तुम अपने प्रयत्न में सफल होओ। उससे आर्या गिरिजाकुमारी की आत्मा प्रसन्न होगी। आज उनके अभाव में तुम्हारा कर्तव्य उनके लिए शोक करना नहीं, वरन् उनकी कीर्ति में चार चाँद लगाना है। उनका स्मरण तुम्हारे जीवन को उच्चता की ओर ले जाए, उनके गुणानुवाद करते हुए तुम स्वयं भी गुणों का आगार बनो, मैं यही चाहता हूँ। यद्यपि हम साधु भी छद्मस्थ हैं अतः हमारे हृदयों में मोह-भाव पैदा होना अस्वाभाविक नहीं है किन्तु हमारा प्रयत्न यही होना चाहिए कि हम उसे जड़ न जमाने दें। तुम जानती ही हो कि महामना 'गौतम' को भी केवलज्ञान की प्राप्ति तब तक नहीं हुई थी, जब तक उनके हृदय से भगवान महावीर के प्रति रहा हुआ मोह-भाव नष्ट नहीं हुआ था।

अर्चनाकुमारी जैसे जाग उठी। उसने अपने पिता मुनि रत्ना-करजी के पैरों में स्नेहित मस्तक झुकाकर विनम्र श्रद्धा से नमस्कार कर क्षमा-याचना की। मन की प्रबल शक्ति का अनुभव कर उसका हृदय फिर विकसित हो उठा और अपनी साधना तथा संयम की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गई। बोली—

"मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने अगीकृत पथ पर सफलता पूर्वक अग्रसर हो सकूं।"

"ऐसा ही होगा बेटी, ऐसा ही होगा। तुम्हारी आत्म-शक्ति को मैं पहचानता हूँ। मोहवश ही यह कुछ निष्क्रिय हुई है, किन्तु इससे क्या हुआ? आज का तुम्हारा पश्चात्ताप उसे पूर्व की अपेक्षा भी अधिक क्रियाशील और निर्मल बनायेगा। तुम निश्शक होकर अपने कल्याणकारी-पथ पर अग्रसर होती रहोगी। कहते हुए उन भव्यात्मा वृद्ध मुनि जगतनारायणजी ने आर्या महिमावती को सम्बोधित किया —

"आर्या! बहुत विलव हो गया है। किन्तु मुझे अत्यन्त हर्ष है कि गुरुदेव ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुझे भेजा था वह पूरा हो गया। अर्चना का कमजोर मन पुन शक्ति प्राप्त कर चुका है। अब मुझे इजाजत दीजिये। कल प्रात काल ही हमे इस शहर से प्रस्थान कर जाना है। आपको भी आचार्य श्री ने स्मरण किया है, सुविधानुसार आने का प्रयत्न कीजियेगा।"

महिमावती अब तक पिता-पुत्री का वार्तालाप सुन रही थी। उनके परिणामस्वरूप परम निश्चितता की सास लेते हुए गद्गद होकर कहा—

"मुनिवर! मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अर्चना को लेकर जो महान् चिन्ता थी वह आपकी कृपा से दूर हो गई ह। आप पधारे! हम दोनो अभी आचार्य श्री के दर्शनार्थ आ रही हे।"

अचना के साथ महिमावती जब आचार्य यशोभूषण के निवास-स्थान पर पहुँची, वे किसी दैनिक पत्र को उलट-पुलट कर देख रहे थे। शिष्याओ को देखते ही उनके अतरतम का गम्भीर स्नेह उनके दिव्य

तभी राग-भाव से निवृत्ति हो सकेगी। जगत के सच्चे स्वरूप का ज्ञान ही सच्चे वैराग्य का जनक होता है और सच्चा वैराग्य सयम की साधना मे सहायक बनता है।"

"आपका कथन सत्य है। मुझे अपने मन की कमजोरी पर घोर पश्चात्ताप है। आज आपने मेरे मानस-चक्षुओ को खोल दिया। मैं अब मन को सयत रखने का पूरा प्रयत्न करूँगी।" अर्चनाकुमारी ने मन को आश्वस्त अनुभव करते हुए उत्तर दिया।

"सुनकर मुझे अत्यन्त सुख हुआ। ईश्वर करे तुम अपने प्रयत्न मे सफल होओ। इससे आर्या गिरिजाकुमारी की आत्मा प्रसन्न होगी। आज उनके अभाव मे तुम्हारा कर्तव्य उनके लिए शोक करना नही, वरन् उनकी कीर्ति मे चार चॉद लगाना है। उनका स्मरण तुम्हारे जीवन को उच्चता की ओर ले जाए, उनके गुणानुवाद करते हुए तुम स्वय भी गुणो का आगार बनो, मै यही चाहता हूँ। यद्यपि हम साधु भी छद्मस्थ है अत हमारे हृदयो मे मोह-भाव पैदा होना अस्वाभाविक नही है किन्तु हमारा प्रयत्न यही होना चाहिए कि हम उसे जड न जमाने दे। तुम जानती ही हो कि महामना 'गौतम' को भी केवलज्ञान की प्राप्ति तब तक नही हुई थी, जब तक उनके हृदय से भगवान महावीर के प्रति रहा हुआ मोह-भाव नष्ट नही हुआ था।

अर्चनाकुमारी जैसे जाग उठी। उसने अपने पिता मुनि जगत-नारायणजी के पैरो के समीप मस्तक झुकाकर विनम्र शब्दो से क्षमा-याचना की। मोह की प्रबल शक्ति का अनुभव कर उसका हृत् पिड विकपित हो उठा और अपनी साधना तथा सयम की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गई। बोली—

"मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने अगीकृत पथ पर सफलता पूर्वक अग्रसर हो सकूं।"

"ऐसा ही होगा बेटी, ऐसा ही होगा। तुम्हारी आत्म-शक्ति को मैं पहचानता हूँ। मोहवश ही यह कुछ निष्क्रिय हुई है, किन्तु इससे क्या हुआ? आज का तुम्हारा पश्चात्ताप उसे पूर्व की अपेक्षा भी अधिक क्रियाशील और निर्मल बनायेगा। तुम निश्शक होकर अपने कल्याणकारी-पथ पर अग्रसर होती रहोगी। कहते हुए उन भव्यात्मा वृद्ध मुनि जगतनारायणजी ने आर्या महिमावती को सम्बोधित किया —

"आर्या! बहुत विलब हो गया है। किन्तु मुझे अत्यन्त हर्ष है कि गुरदेव ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुझे भेजा था वह पूरा हो गया। अर्चना का कमजोर मन पुन शक्ति प्राप्त कर चुका है। अब मुझे इजाजत दीजिये। कल प्रात काल ही हमे इस शहर से प्रस्थान कर जाना है। आपको भी आचार्य श्री ने स्मरण किया है, सुविधानुसार आने का प्रयत्न कीजियेगा।"

महिमावती अब तक पिता-पुत्री का वार्तालाप सुन रही थी। उसके परिणामस्वरूप परम निश्चितता की सास लेते हुए गद्गद होकर कहा—

"मुनिवर! मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अर्चना को लेकर जो महान् चिन्ता थी वह आपकी कृपा से दूर हो गई है। आप पधारे! हम दोनो अभी आचार्य श्री के दर्शनार्थ आ रही ह।"

अचना के साथ महिमावती जब आचार्य यशोभूपण के निवास-स्थान पर पहुँची, वे किसी दैनिक पत्र को उलट-पुलट कर देख रहे थे। शिष्याओ को देखते ही उनके अतरतम का गम्भीर स्नेह उनके दिव्य

चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान के रूप मे झलकने लगा। आर्याओ के नमस्कार के उत्तर मे आशीर्वाद देते हुए उन्होने पूछा—

"आप प्रसन्न हैं ?"

"आपकी कृपा है गुरुदेव, किन्तु भगवती के अभाव मे हृदय अपने को व्यथित तथा निराधार अनुभव करता है।" महिमावती के शब्दो मे कातरता थी।

"धर्म का आधार सबसे बडा आधार है आर्या! वही एक ऐसा सम्बल है, जिसे ग्रहण कर लेने पर कोई भी अभाव मन को खेदखिन्न नही बना सकता इसके अलावा ससार के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील है, उनके कारण मनोबल का ह्रास करना बुद्धिमत्ता नही है।"

"यथार्थ है भगवन्!"

"मैं सतुष्ट हूँ महादेवी! आपकी सयम-निष्ठा और चारित्रिक दृढता पर मुझे पूर्ण विश्वास और गर्व है। मैं आशा करता हूँ कि आप तथा विचक्षण बुद्धि आर्या अर्चनाकुमारी, एक दूसरे के सहयोग से स्वर्गीया गिरिजाकुमारी के अभाव को पूरा करेगी। उनकी समस्त विशेषताएँ ससार आप लोगो मे ही प्राप्त करेगा।" तनिक विराम लेकर आचार्य पुन बोले—

"और आर्या अर्चना! तुम्हारे लिये तो दुविधा का कोई कारण ही नही है। सरल और स्नेहशील आर्या महिमावती तुम्हारे लिये गिरिजाकुमारी के स्थान पर है। इनकी हार्दिक लगन और अथक परिश्रम से तुमने जिस प्रकार उच्च ज्ञान हासिल किया है, उसी प्रकार अब भी इनकी छत्रछाया मे प्रगति करते हुए तुम समाज मे सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करोगी।"

"आपकी शुभ कामना मेरा मार्गदर्शन करेगी भगवन् । आपका वरदहस्त मेरे मस्तक पर रहना चाहिए।" अपनी वडी-वडी पलको को किंचित् उठाकर अत्यन्त विनम्रता से अर्चनाकुमारी ने प्रत्युत्तर दिया।

"वह तो रहेगा ही वेटी ! आखिर शिष्य और शिष्याओ के गौरव से ही तो मैं गौरवान्वित होता हूँ। मेरा अन्त करण सभी के लिये कल्याण कामना करता है।"

आचार्य के हृदय की उदारता और महानुभावता का अनुभव करती हुई आर्याएँ कुछ क्षण मौन वैठी रही। अन्त मे महिमावती ने मौन तोडा—

"भगवन् ! कल प्रस्थान करने का विचार आपने एकाएक ही कैसे कर लिया ?"

"वर्षावास के लिये जयपुर पहुँचना है महादेवी ! समय अल्प है। उम्र अधिक हो जाने से मुनि जगतनारायणजी से अधिक विहार नही होता। अत थोडा-थोडा चलने का ही विचार है।"

पिता का उल्लेख होते ही सहसा अर्चनाकुमारी ने पूछ लिया—

"गुरुदेव ! आपको सतोष तो है उनसे ?"

सुनकर आचार्य विस्मित हुए। वोले—

"यह कैसी वात है वेटी ? अपने पिता को तुम पहचानती नही ? ऐसे देव पुरुष क्या विश्व मे सहज ही उपलब्ध होते है ? मेरा भाग्य सराहनीय है कि मुझे तुम्हारे पिता के सदृश शिष्य की प्राप्ति हुई। क्या मुझे स्वय ही उनकी प्रशसा करनी होगी ?"

"अपराध क्षमा हो भगवन् ! वैसे ही उत्सुकता जागृत हो आई,

उनके भूतपूर्व ऐश्वर्यसम्पन्न और रईसी जीवन का स्मरण हो आने के कारण ।"

"तो सुनो ! मुझे तो लगता है कि उस रईसी का स्मरण भी शायद मुनिवर्य को नही है । वस्त्र के स्थान पर शरीर को ढकने के लिये वे मोटे खद्दर को उसी प्रसन्नता से काम मे लेते है, जिस प्रसन्नता से कभी वे अपनी मखमल की पोशाक धारण करते थे । प्रतिदिन नाना प्रकार के व्यञ्जनो को ठुकरा देने वाले जगतमुनि अब समस्त भोज्य पदार्थों को, चाहे वह मिष्टान्न हो, नमकीन हो, दही हो या सब्जी और फुलका हो एक पात्र मे, तुम्हे विश्वास नही होगा बेटी ! एक ही पात्र मे, एक साथ मिलाकर ग्रहण करते है । वह भी दिन मे एक बार । और इसके अलावा बचा हुआ सारा समय उनका गम्भीर अध्ययन और साधना मे व्यतीत होता है । क्या ऐसा जीवन किसी साधारण प्राणी का बन सकता है ?"

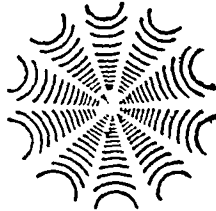
सच्चे साधक के योग्य पिता के त्यागमय जीवन के विषय मे जानकर, तथा स्वयं गुरुदेव के मुखारविंद से, उनकी गद्गद होकर की गई प्रशसा को सुनकर अर्चनाकुमारी की आँखो मे हर्षाश्रु उमड आए । वह कुछ बोल न सकी, जडवत् बैठी रह गई । उसकी स्तब्धता तब भग हुई जब पुन आचार्य के कुछ शब्द उसके कानो मे टकराए—

"तुम ऐसे महापुरुष की पुत्री हो अर्चना ! इसीलिये तो मुझे तुमसे बडी-बडी आशाएँ है । इस बार आठ वर्ष पश्चात् मै तुमसे मिला हूँ । किन्तु समय को देखते हुए तुमने जो उच्च ज्ञान प्राप्त किया है, उससे मुझे पूर्ण सन्तोष है और आशा है कि पुन जब साक्षात्कार का अवसर आएगा तुम उच्चता के एक और शिखर को पार कर लोगी ।"

"अब दर्शन कब दीजियेगा भगवन् ?" कृतज्ञता से भीगी हुई उमा ने पूछा ।

"जब विधि का विधान होगा । साधुओ का निश्चित कार्य-क्रम तो होता नही बेटी !"

ठीक इसी समय सामने दीवार पर टगी हुई वृहत्काय घडी ने टन्-टन् करके चार बजाए और आर्याओ ने आचार्य श्री को नमस्कार कर सजल नयनो से विदाई ली । 



३२

क्या मिलता है तुम्हें ?

●

समय अपनी अबाधगति से चला जा रहा था। आर्या गिरिजाकुमारी के निधन के पश्चात् अर्चनाकुमारी को समाज से अधिक सम्पर्क बढाना पडा। उनकी उपस्थिति मे तो वह अधिकतर ज्ञानार्जन मे व्यस्त रहती, बहुत कम किसी से परिचय होता। प्रथम तो वह स्वय इस विषय मे अनुत्सुक रहती, दूसरे इसकी आवश्यकता ही नही पडती थी किन्तु अब नित्य प्रवचन देने का भार उन पर आ गया और दर्शनार्थ आने वाले व्यक्तियो को समय देना भी अनिवार्य हो गया।

इससे अल्प-काल मे ही उनकी ख्याति चारो ओर फैलने लगी। सुसस्कृत भाषा मे दिये जाने वाले उनके विद्वत्तापूर्ण तथा मार्मिक प्रवचन श्रोताजन मत्र-मुग्ध होकर सुनते तथा गभीर से गभीर विषय को भी अत्यन्त सरल तरीके से समझा देने की उनकी शक्ति पर आश्चर्य प्रकट करते। श्रोताओ की सख्या मे दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती गई। उनमे सिर्फ राजस्थान के ही नही अपितु गुजरात, दिल्ली, यु० पी० तथा पजाब आदि दूरस्थ प्रदेशो के व्यक्ति भी होते थे।

अर्चनाकुमारी कई दिनो से देख रही थी कि प्रतिदिन प्रात काल प्रवचन के प्रारम्भ होते समय घडी से बजते हुए आठ के टकोरो के साथ ही एक सुशिक्षित और अत्यन्त सुसस्कृत दिखाई देने वाली

युवती आती और वडे मनोयोग से प्रवचन सुनती। वीच-वीच मे अपनी नोटवुक मे वह कुछ नोट भी करती जाती तथा प्रवचन की समाप्ति पर कुछ पास आकर उन्हे वदन करती और तुरन्त ही लौट जाती। यह क्रम वहुत दिनो तक चलता रहा। एक दिन भी उसमे वाधा नही आई। न कभी वह समय से पहले आती, न देर तक ठहरती और न ही किसी से एक शब्द वोलती।

उम्र करीव सत्ताईस वर्ष रही होगी। उसका ऊँचा कद और सुडौल शरीर सदैव श्वेत साडी मे आवेष्टित रहता। सिन्दूरविहीन प्रशस्त मस्तक, तीखीनाक। पर साथ ही मुरझाए हुए गुलाव के सदृश उदास मुखडा और आकर्षक नेत्र, जिनके आस-पास एक वोझिल हृदय की कालिमा फैली रहती। अधरो की ललाई मानो सकुचित होकर छिप जाना चाहती और नेत्रो की द्रवणशील कालिमा के लिये स्थान रिक्त कर देती। सुप्त कामनाओ से युक्त उसका ज्वलत सौन्दर्य मूक रुदन करता हुआ-सा दिखाई देता, और उसकी लम्वी-लम्वी सुन्दर अगुलियो मे थमी हुई लेखनी द्वारा मानो अपनी वेदनापूर्ण कहानी अकित करवाता।

आर्या अर्चनाकुमारी अनेक वार मुग्ध होकर उसे देखने लगती। प्रवचन के मध्य मे भी उनकी दृष्टि कई वार जाकर उस मनोहारिणी छवि को आपाद मस्तक छू आती। अन्त मे जव उनकी उत्सुकता सीमा लांघ चली तो एक दिन उन्होंने व्याख्यान के पश्चात् नमस्कार करने के लिए आने पर स्वय ही उसे सकेत द्वारा अपने पास आने का निमत्रण दिया।

इस आकस्मिक आह्वान पर वह चौक पडी और तनिक सकोच-पूर्वक अर्चनाकुमारी के समीप आ खडी हुई। म्लान मुस्कानयुक्त उसके चेहरे पर दृष्टिपात करते हुए अर्चनाकुमारी ने सस्नेह पूछा—

"आपका नाम ?"

"मेरा नाम जानकी है भगवती, पर कृपया मुझे 'आप' कहकर सम्बोधन न करे। केवल जानकी ही कहे।"

"ओह · · ।" कहती हुई अर्चनाकुमारी वार्तालाप के प्रारम्भ मे ही व्याघात पाकर कुछ स्तब्ध हो गई, और पुन बोलने के लिए सूत्र खोजने लगी। कुछ क्षणो के पश्चात् ही उन्होने फिर प्रयास किया—

"अच्छा जानकी! यह जो तुम प्रतिदिन प्रवचन मे आती हो इससे तुम्हे कुछ मिलता है ?"

"जी बहुत कुछ, अन्यथा मै आती क्यो ?"

"अच्छा तुम रोज अपनी कॉपी मे लिखती क्या हो ?"

"आपके कथन का साराश।"

"क्या बताओगी आज क्या लिखा ?"

"यही कि अहिंसा जैन धर्म का प्राण है। जैन धर्म के मनोहर, भव्य और विशाल भवन की पहली ईंट अहिंसा है। दूसरे शब्दो मे जै धर्म का दूसरा नाम ही अहिंसा धर्म अथवा दया धर्म है। इसके अला भी भारतीय तथा अभारतीय सभी धर्मों ने अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ ध माना है। वैदिक, बौद्ध, सिक्ख, मुसलमान और ईसाई आदि स धर्मों के प्रतिपादक ग्रन्थो और धर्म नेताओ ने अहिंसा की मुक्तकण्ठ सराहना की है। अहिंसा वह अद्भुत समाधान है जिसके द्वारा प वार, समाज, देश और विश्व की समस्याएं सुलझाई जा सकती है वैर, विरोध और प्रतिस्पर्धा के कारण होने वाले झगडो को मिटा जा सकता है।"

"किन्तु जानकी! अनेक व्यक्ति अहिंसा को अनाचरणी आत्म-घातक एव कायरता की जननी कहते हैं। वे आरोप लगाते है

कि अहिंसा के कारण ही राष्ट्र का अध पतन हुआ है। उनके खयाल से जैनियो की अहिंसा ने देश को कायर और निर्वीर्य बना डाला है। हिंसाजन्य पाप से भयभीत होकर भारतीय शौर्य और वीर्य को गँवा वैठे, जिसके कारण यहाँ की प्रजा के मानस मे से युद्ध करने की भावना नितान्त नष्ट हो गई और ऐसी स्थिति मे विदेशी आक्रमणकारियो ने इस देश को अपने अधीन कर लिया। इस विपय मे तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

जानकी का गौर चेहरा तमतमा उठा। मानो किसी ने श्वेत गुलाव के पुष्प को हटाकर चुपके से वहाँ लाल-गुलाव रख दिया हो वह आवेशपूर्वक वोल पडी—

"ये आरोप असत्य हैं भगवती ! ज्ञात होता है कि आरोप-कर्ताओ ने भारतीय इतिहास पर गम्भीरता से विचार नही किया है। भारत का इतिहास पूर्णतया सावित करता है कि जव तक इस देश मे अहिसा के उपासक शासक राज्य करते रहे, तव तक यहाँ की प्रजा मे शौर्य और पराक्रम की तनिक भी कमी नही रही। उन शासको ने अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रुओ के साथ भी वीरतापूर्ण युद्ध किये और कदापि कायरता से मस्तक नही झुकाया। सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक अहिसा धर्म के सवसे वडे उपासक और प्रचारक थे, किन्तु उनके शासन-काल मे भारत कभी पराधीन नही हुआ। वल्कि उस काल मे ही भारत की सवसे अधिक विशाल सीमाएँ थी।"

"इसके अतिरिक्त प्राचीन इतिहास को छोड दिया जाए तो भी इस आरोप का सही उत्तर गाँधी जी के जीवन से मिलता है। गाँधी जी अहिसा के उपासक थे किन्तु क्या उन्हे कोई कायर कह सकता है ? अहिसा के दिव्यास्त्र को ग्रहण करके उन्होंने शक्तिशाली ब्रिटिश

सरकार का डटकर सामना किया और रक्त की एक बूंद भी बहाए बिना उसके पैर उखाड दिये। अहिंसा की शक्ति और प्रभाव से ही सैंकडो वर्षो की दासता का अन्त हुआ। गाँधी जी का दृढ और स्पष्ट कथन था कि मेरी अहिंसा के सिद्धान्त मे कायरता और दुर्बलता के लिए कतई स्थान नही है। वे तो यहाँ तक कहा करते थे कि—"एक हिंसक तो एक अहिंसक बन सकता है, किन्तु कायर कभी अहिंसक नही बन सकता।"

अर्चनाकुमारी चुपचाप मुग्ध-भाव से जानकी का चेहरा देखते हुए उसकी बात सुन रही थी। जानकी कहती गई—

"वास्तव मे अहिंसा का कायरता से कोई सम्बन्ध नही। दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है। अगर अहिंसा से कायरता और हिंसा मे शूरवीरता का जन्म होता तो सभी हिंसक व्यक्ति शूरवीर ही होते। किन्तु न तो पूर्वकाल के इतिहास से और न आधुनिक समय को देखते हुए ही यह बात प्रमाणित होती है। सैंकडो काँग्रेसी वीरो ने अहिंसा के प्रशस्त-पथ का अनुसरण करते हुए निर्भीकता-पूर्वक अपने सीने मे गोलियाँ खाई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा मनुष्य को कदापि कायर नही बनाती। इस प्रचण्ड शक्ति की उपासना करने वाला निर्विवाद रूप से निर्भीक, शूरवीर और तेजस्वी ही बनेगा।

"अहिंसा को जैन धर्म की बपौती माना जाना भी गलत है। यद्यपि जैन धर्म के उपदेष्टाओ ने अहिंसा के सिद्धान्त को पूर्णता के सर्वोच्च शिखर पर अवश्य पहुचाया है, और अहिंसा के विशाल प्रागण मे विश्व के समस्त चराचर जीवो का समावेश किया है, अहिंसा को ही मूलभूत धर्म माना है, किन्तु ससार के अन्य किसी भी धर्म ने हिंसा को धर्म के रूप मे अगीकार नही किया है। अहिंसा के बिना कोई भी

धर्म नही टिक सकता। प्रत्येक धर्म आत्मशाति और विश्वशाति के पवित्र उद्देश्य को लेकर ही स्थापित हुआ है, और यह उद्देश्य अहिसा के अभाव मे पूरा हो ही नही सकता। ससार मे अगर कही शाति दृष्टिगोचर होती है और मानव जाति मे दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, सहानुभूति आदि की जो दिव्य भावनाएँ पाई जाती है, वे सव अहिसा की ही तो वहुमूल्य देन है प्राणीमात्र मे अगर हिंसा और द्वेप की भावना जागृत हो जाय और अहिसा की भावना का लेशमात्र भी न रहे तो उस समय ससार की स्थिति क्या नरक तुल्य नही हो जाएगी ? समग्र विश्व को आज अहिसा के अमृत को आवश्यकता है। भीपण महायुद्धो से त्रस्त और ध्वस्त जगत आज शाति की कामना कर रहा है, और वह शांति प्रत्येक धर्म के अनुयायियो को अहिसाव्रत ग्रहण करने से ही मिल सकती है। जैन धर्म द्वारा उपदिष्ट और आधुनिक काल मे गाँधी जी द्वारा व्यवहृत तथा परीक्षक अहिसा का सिद्धान्त ही जगत का त्राण करने मे समर्थ हो सकता है और आज की भयाकुल मानव-जाति विनाश की आग मे झुलसने से वच सकती है। इसलिये अहिसा का सिद्धान्त सिर्फ जैनियो का सिद्धान्त न होकर मानव मात्र का सिद्धात और धर्म है।"

जानकी इतना कहकर रुक गई और यह ध्यान आते ही कि वह आर्या अर्चनाकुमारी के समक्ष इतना वहुत वोलती चली गई है, सकुचित होकर मद-मद मुस्कराने लगी।

अर्चनाकुमारी के गम्भीर और तेजस्वी मुख पर आन्तरिक प्रसन्नता की लहर दौड गई। वोली—

"तुम्हारे विचार अत्यन्त सुन्दर है जानकी ! जैसा शरीर सुन्दर है वैसा ही मन भी ठीक है न ?"

"आप तो परिहास कर रही है भगवती !" भावावेश मे दी गई अपनी स्पीच के कारण जानकी शरमा गई।

"नही, परिहास नही, सत्य कह रही हूँ। पर साथ ही सोच रही हूँ कि इतने दिन हुए यहाँ आते हुए, पर तुमने कभी मुझसे बात नही की। ऐसा क्यो ?"

"मै सोचती थी कि मुझ अकिंचन मे आपकी क्या रुचि होगी ?"

"वाह ऐसा कैसे समझ लिया तुमने ?"

"मै देखती हूँ कि बडे-बडे विद्वान और उच्च व्यक्ति आपके दर्शन तथा प्रवचन का लाभ लेने के लिये आते है, और प्रवचन के पश्चात् आप उनकी नाना प्रकार की समस्याओ को सुलझाने मे व्यस्त हो जाती है, इसलिये हिम्मत नही होती।" जानकी ने सहज-भाव मे मन की दुविधा व्यक्त की।

"अच्छा अब तो यह सकोच नही रहेगा ?"

"नही, अब आपकी सेवा मे उपस्थित होने का प्रयत्न करूँगी। पर अब इजाजत दीजिये काफी देर हो गई है।" कहते हुए उसने नमस्कार किया और धीरे-धीरे वहाँ से चल दी।

नेत्रो से ओझल होने तक अर्चनाकुमारी को देखती रही। उन्हे आश्चर्य हो रहा था कि नवपरिचिता जानकी के प्रति उनके हृदय मे आकर्षण और ममता का अकुर कैसे फूट रहा है। □

३३

कल्पना सत्य हुई

जानकी जैन समाज के सुप्रतिष्ठित और प्रकाण्ड विद्वान श्री प्रकाशचन्द्र जी की पुत्री थी। चौबीस-पच्चीस वर्ष की अल्प-वय मे ही माग का सिन्दूर धुल जाने के कारण पिता के यहाँ पर ही रहती थी। प्रकाशचन्द्र जी का परिवार अत्यन्त सुसस्कृत, शिक्षित और साहित्यप्रेमी था। जानकी की भी साहित्य के प्रति गहरी रुचि थी। यद्यपि उसने राजनीति विज्ञान मे एम० ए० किया था, पर हिन्दी साहित्य उसका परम प्रिय विषय था। वह स्वय कहानियाँ तथा कविताएँ लिखा करती थी और वे समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती थी। कभी-कभी वह वृहत् कवि-सम्मेलनो मे अथवा साहित्य गोष्ठियो मे भाग लिया करती थी, किन्तु उसे उनमे भाग लेना रुचिकर नही लगता था। विशेष आग्रह होने पर ही वह ऐसे समारोहो मे शामिल होती, अन्यथा टाल दिया करती। किसी से मिलना-जुलना तथा विशेष परिचय प्राप्त करना उसे नही भाता था। इसका कारण उसकी गहरी भावुकता ही थी। वह सदा अपने मे ही उलझी रहती, अपने मानस का ही मन्थन किया करती और फिर उसे कहानियो, कविताओ और निबन्धो मे उडेला करती, पर किसी के द्वारा प्रशसा के दो बोल सुनते ही मानो उसका मन कछुए की तरह हाथ-पैर समेट कर चुप बैठ जाता।

ऐसा लगता था जैसे जानकी इस दुनिया मे नही रहती। उसकी दुनिया इस दुनिया से परे एक काल्पनिक दुनिया थी, जहां वह निस्संकोच विचरण किया करती थी। उसे महसूस होता, मानो वह किसी दूसरी दुनिया से आई है। माता, पिता, भाई, भाभी या कि इस ससार मे किसी भी व्यक्ति से उसका कोई नाता नही। एक बदली की तरह वह आई है और उसी की तरह शीघ्र उडकर चली जाएगी। रात उसे किसी लम्बे सफर का बुलावा जान पडती और हर सुबह एक विश्राम-स्थल। उसे प्रतिपल अपना मन दुखता-सा जान पडता, कुछ पाने के लिये। वह प्रतीक्षा करती किसी अज्ञात काल्पनिक आत्मा की जो उसे इस दुखमय ससार से परे ले जाए अपनी बांहो का सहारा देते हुए मार्गदर्शन करे। उसके काल्पनिक नेत्रो के सामने बार-बार कोई अस्पष्ट आकृति उभर आती, शान्तिमय श्वेत दूधिया चाँदनी के आवरण से आवेष्टित, चन्द्रमा के समान अलौकिक, ऊगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, पर साथ ही पुष्पो के समान कोमल और आकर्षक। अपने नेत्रो को वह बार-बार खोलती और बन्द करती किन्तु उसे पहचान न पाती और न ही अपने समीप ला पाती। असफलता के कारण उसका हृदय निराशा मे चीखने-सा लगता और चाहता कि क्षितिज का किनारा वह अपने नाखूनो से फाड डाले और उस मानसमूर्ति को निकट से जी भरकर देख ले, पहचान ले।

समय इसी प्रकार उसके मन को उद्वेलित करता हुआ बीत चला, और वह अधिकाधिक विरक्त होती गई। कोई भी उसकी व्यथा और मन की अभिलाषा को समझ नही पाया। यद्यपि वह सभी से कोमल व्यवहार रखती, दुनियादारी निभाने मे प्रयत्नशील रहती, पर उसका मन कही भी, किसी मे भी नही रमता। उसी इस उदा-

पन को सब महसूस करते पर उसका इलाज किसी की भी समझ मे नही आता। समझने की कोई विशेप कोशिश भी नही करता। ससार के समस्त व्यक्ति सिर्फ उनी प्राणी का खयाल करते है, उसी की ओर ध्यान देते है जिससे उन्हे किसी लाभ की आशा होती है। जानकी के द्वारा किसी को किसी लाभ की आश तो थी नही अत उसके मन की व्यथा को समझने के लिए कौन परेशान होता ? फलत दुनिया की दृष्टि मे किसी भी प्रकार के अभाव से रहित और बडे परिवार से घिरे रहकर भी जानकी अपने को एकाकी महसूस करती। जीवनोपयोगी समस्त सुविधाओ को प्राप्त करके भी, गहरी आत्मीयता के अभाव मे वह अपने को निराधार समझती और अपने अन्तर्मन की व्यथा को अपने मे ही सजोये रहती।

ऐसी ही मन स्थिति मे कालचक्र घूम रहा था कि एक दिन जानकी अपनी माता के साथ भगवती अर्चनाकुमारी का प्रवचन सुनने गई। सैकडो महिलाओ के बीच मे बैठी जानकी की ओर अर्चनाकुमारी का ध्यान नही जा सका, किन्तु उच्चासन पर विराजमान अर्चनाकुमारी को देखकर जानकी चौक पडी। उसका हृत्पिण्ड उछलने लगा। प्रथम बार उनके समक्ष पहुँचने पर भी उसे ऐसा लगा कि जैसे वह उन्हे पहचानती है, जन्म-जन्मान्तर से जानती है। एक अनिर्वचनीय प्रसन्नता की लहर उसके सम्पूर्ण शरीर और मन मे दौड गई।

प्रवचन का एक शब्द भी वह न सुन सकी। रह-रहकर उसे अपने कल्पनालोक मे सदा दिखने वाली वह तेजोमयी आकृति नेत्रो के सामने मूर्त रूप धारण किये दिखाई देने लगी। वह बार-बार अपने उत्पल-कमल से नेत्र उठाकर अर्चनाकुमारी को निहारने लगी। शुभ्र

ऐसा लगता था जैसे जानकी इस दुनिया मे नही रहती। उसकी दुनिया इस दुनिया से परे एक काल्पनिक दुनिया थी, जहाँ वह निस्सकोच विचरण किया करती थी। उसे महसूस होता, मानो वह किसी दूसरी दुनिया से आई है। माता, पिता, भाई, भाभी या कि इस ससार मे किसी भी व्यक्ति से उसका कोई नाता नही। एक बदली की तरह वह आई है और उसी की तरह शीघ्र उडकर चली जाएगी। रात उसे किसी लम्बे सफर का बुलावा जान पडती और हर सुबह एक विश्राम-स्थल। उसे प्रतिपल अपना मन दुखता-सा जान पडता, कुछ पाने के लिये। वह प्रतीक्षा करती किसी अज्ञात काल्पनिक आत्मा की जो उसे इस दुखमय ससार से परे ले जाए अपनी बाँहो का सहारा देते हुए मार्गदर्शन करे। उसके काल्पनिक नेत्रो के सामने बार-बार कोई अस्पष्ट आकृति उभर आती, शान्तिमय श्वेत दूधिया चाँदनी के आवरण से आवेष्टित, चन्द्रमा के समान आलौकिक, ऊगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, पर साथ ही पुष्पो के समान कोमल और आकर्षक। अपने नेत्रो को वह बार-बार खोलती और बन्द करती किन्तु उसे पहचान न पाती और न ही अपने समीप ला पाती। असफलता के कारण उसका हृदय निराशा से चीखने-सा लगता और चाहता कि क्षितिज का किनारा वह अपने नाखूनो से फाड डाले और उस मानसमूर्ति को निकट से जी भरकर देख ले, पहचान ले।

समय इसी प्रकार उसके मन को उद्वेलित करता हुआ बीत चला, और वह अधिकाधिक विरक्त होती गई। कोई भी उसकी व्यथा और मन की अभिलाषा को समझ नही पाया। यद्यपि वह सभी से कोमल व्यवहार रखती, दुनियादारी निभाने मे प्रयत्नशील रहती, पर उसका मन कही भी, किसी मे भी नही रमता। उसके इस उखडे-

पन को सब महसूस करते पर उसका इलाज किसी की भी समझ मे नही आता। समझने की कोई विशेष कोशिश भी नही करता। ससार के समस्त व्यक्ति सिर्फ उसी प्राणी का खयाल करते है, उसी की ओर ध्यान देते है जिसमे उन्हे किसी लाभ की आशा होती है। जानकी के द्वारा किसी को किसी लाभ की आश तो थी नही अत उसके मन की व्यथा को समझने के लिए कौन परेशान होता ? फलत दुनिया की दृष्टि मे किसी भी प्रकार के अभाव मे रहित और वडे परिवार से घिरे रहकर भी जानकी अपने को एकाकी महसूस करती। जीवनोपयोगी समस्त सुविधाओ को प्राप्त करके भी, गहरी आत्मीयता के अभाव मे वह अपने को निराधार समझती और अपने अन्तर्मन की व्यथा को अपने मे ही सजोये रहती।

ऐसी ही मन स्थिति मे कालचक्र घूम रहा था कि एक दिन जानकी अपनी माता के साथ भगवती अर्चनाकुमारी का प्रवचन सुनने गई। सैकडो महिलाओ के बीच मे बैठी जानकी की ओर अर्चना-कुमारी का ध्यान नही जा सका, किन्तु उच्चासन पर विराजमान अर्चनाकुमारी को देखकर जानकी चौक पडी। उसका हृत्पिण्ड उछ-लने लगा। प्रथम वार उनके समक्ष पहुँचने पर भी उसे ऐसा लगा कि जैसे वह उन्हे पहचानती है, जन्म-जन्मान्तर से जानती है। एक अनिर्वचनीय प्रसन्नता की लहर उसके सम्पूर्ण शरीर और मन मे दौड गई।

प्रवचन का एक शब्द भी वह न सुन सकी। रह-रहकर उसे अपने कल्पनालोक मे सदा दिखने वाली वह तेजोमयी आकृति नेत्रो के सामने मूर्त रूप धारण किये दिखाई देने लगी। वह वार-वार अपने उत्पल-कमल से नेत्र उठाकर अर्चनाकुमारी को निहारने लगी। शुभ्र

चाँदनी के समान श्वेत वस्त्र, आन्तरिक पवित्रता और निर्मलता से दीप्त आकर्षक नेत्र, बाल-रवि सा दमकता हुआ चेहरा, सुडौल हाथ और उन्ही के अनुरूप लम्बी और सुन्दर अँगुलियाँ जानकी विस्फारित दृष्टि से पुन -पुन उस छवि को देख रही थी और सोच रही थी—

"यही तो है वह भव्य आकृति, जिसे मैं जन्म-जन्मान्तर मे खोज रही हूँ। मेरा तो जनम-जनम का नाता है इसके साथ। यही तो मेरी कल्पना मे बार-बार दृष्टिगोचर होती है। ओह, कितनी भाग्यवती हूँ मैं ? लगता है आज मुझे अपने एकाकी पथ का मार्ग-दर्शक मिल गया, ससार के दु ख रूपी तूफानो से हिचकोले खाती हुई मेरी मानस-नौका को सम्बल प्राप्त हो गया।

जानकी का चेहरा आन्तरिक प्रसन्नता से भर गया। अनिमेष दृष्टि से वह अर्चनाकुमारी की ओर देखती रही। वे कहती थी—"ससारी जीवो ने जिसे सुख समझ रखा है वह परपदार्थावलम्बी है, सान्त है, परिमित है और दुखो का बीज रूप हे। वह पारिमार्थिक दृष्टि से सुख नही है। सच्चा सुख या आत्मिक-सुख वही है जो बाह्य या आन्तरिक किसी भी पदार्थ पर निर्भर न हो, जो काल और परिभाषा से भी सीमित न हो। अर्थात् जो अक्षय और अनन्त हो और भविष्य मे दुख का कारण बनने वाला न हो।"

"आज विश्व का प्रत्येक प्राणी अपनी स्थिति से भिन्न स्थिति के लिये लालायित रहता है, और उसमे सुख मानता है। किन्तु अभि-लपित अवस्था प्राप्त हो जाने पर भी वह सुख का अनुभव नही कर पाता। एक इच्छा पूरी होती है या नही, पर अनेक नवीन इच्छायें जागृत हो जाती है। और इच्छाओ को पूर्ण करके सुख पाने की उसकी चेष्टा विफल हो जाती है। आचार्यों ने कहा भी है—

भुक्त्वाऽप्यनन्तशो भोगान्, देवलोके यथेप्सितान् ।
यो हि तृप्ति न सम्प्राप्त स किं प्राप्स्यति साम्प्रतम् ?

मनुष्य अनन्त-अनन्त वार स्वर्ग लोक मे जन्म ग्रहण कर चुका है, इच्छानुसार वहाँ के भोग-भोग चुका है। फिर भी इसे तृप्ति नही हुई तो क्या अब इस लोक के सुखो से यह तृप्त हो सकेगा ?''

''बन्धुओ ! सुख आत्मा का गुण है। गुण सदैव गुणी मे ही रहता है। अतएव सच्चा सुख आत्मा मे ही रहा हुआ है। बाह्य पदार्थों मे उसे खोजना मानव की मूढता है। वही मनुष्य वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है, जो समस्त इच्छाओ का निरोध कर लेता है, तथा बाह्य तथा आभ्यतर सयोगो का त्याग कर देता है। माता-पिता, पुत्री, परिवार, महल, मकान, धन-सम्पत्ति आदि बाहर के पदार्थों का सयोग बाह्य सयोग कहलाता है, और राग-द्वेष आदि का सयोग आभ्यतर कहलाता है। इन दोनो का त्याग कर देने पर जीव, निरीह-निस्पृह बनता है और सवर धर्म का अनुष्ठान करके 'केवलज्ञान' तथा 'केवलदर्शन' को प्राप्त कर सकता है। मन, वचन, तथा काय के योगो का निरोध करके आत्मा शैलेशी अवस्था यानी सुमेरुवत् अकम्प दशा प्राप्त करता है। तब पूर्ण निर्विकार दशा प्राप्त करके सिद्ध गति प्राप्त करने मे समर्थ होता है।''

''अभिप्राय यह है कि सच्चा सुख मुक्त अवस्था प्राप्त करने मे है। जैसे-जैसे आत्मा पर-पदार्थो से अपनी ममता हटाता जाएगा और अपने स्वरूप मे निष्ठ होता जायेगा, वैसे-वैसे वह मुक्त अवस्था और दूसरे शब्दो मे सच्चे सुख की प्राप्ति करता जायेगा। इच्छाओ का निरोध होना उत्कृष्ट सुख है, और इच्छाओ का होना परम दुख। इस तथ्य को समझकर जो प्राणी वीतराग प्ररूपित धर्म का आचरण

करेगा वह निश्चय ही कालान्तर मे अक्षय मुख का अधिकारी वन सकेगा ।"

प्रवचन समाप्त हुआ, पर जानकी की तन्मयता भग न हुई । उसका अन्तर्मन कह रहा था—"यही तो मैं चाहती हूँ, मुक्ति के मार्ग की खोज ही कर रहा है मेरा मन । वह अक्षय मुग्व प्राप्त करने के लिये ही तो मेरा हृदय वावला है । भगवती ! तुम्ही तो मेरी मार्ग-दर्शिका हो । तुम्हे मै युगो से ढूँढ रही हूँ । मेरा मार्गदर्शन करो, मुझे रास्ता वताओ . ।"

"जानकी, घर चलो अव, प्रवचन समाप्त हो गया ।"

माँ के शब्द कानो से टकराते ही मानो जानकी की तन्द्रा टूट गई । वह हडवडाकर उठ खडी हुई और चुपचाप चल दी ।

उस दिन के वाद प्रतिदिन, प्रवचन आरम्भ होने के ठीक समय पर आना उसका नित्यक्रम वन गया । किसी भी दिन और किसी भी कारण से वह उसमे वाधा नही पडने देती । अर्चनाकुमारी की भव्य आकृति को अपने नेत्रो मे भरे हुए, अत्यन्त मनोयोग से वह प्रवचन सुनती, समझने की कोशिश करती और महत्त्वपूर्ण वातो को अपनी नोटवुक मे लिख लिया करती । किन्तु आश्चर्य की वात यह थी कि उसने एक दिन भी अर्चनाकुमारी से मिलने की, वात करने की कोशिश नही की । मन ही मन जिनकी आराधना करती थी, जिन्हे अपनी पथ-प्रदर्शिका मानती थी, एक वार भी उनके समक्ष जाने की, उन्हे अपना परिचय देने की इच्छा व्यक्त नही की । उनका स्नेह मानो एक-तरफा था, उस सच्चे भक्त की तरह, जो भगवान की कृपा प्राप्त न होने पर भी अपनी सेवा-पूजा मे त्रुटि नही करता, अपनी ओर से असीम स्नेह प्रदान करने पर भी आदान की आकाक्षा नही रखता था ।

किन्तु हार्दिक और सच्चा स्नेह कभी निष्फल नही जाया करता। जानकी की ओर से प्रयत्न न करने पर भी भगवती अर्चना-कुमारी की दृष्टि मे उसकी भाव-विभोर अवस्था आये बिना न रह सकी और उनके मूक स्नेह ने उन्हे जानकी को अपने पास बुलाने को विवश कर दिया। उनके हृदय मे भी उसके प्रति एक अभूतपूर्व भाव आखिर उमड ही पडा।





३४
पति और परश्मेवर

●

"नमस्कार . . !"

"कौन कृष्णचन्द्रजी ?" अर्चनाकुमारी तनिक चौंक उठी। वे उस समय बडे मनोयोग से किसी वृहत्शास्त्र के पन्ने उलट-पुलट कर उसमे कुछ खोज रही थी।

"जी हाँ, मैं कृष्णचन्द्र ही हूँ, पर आप चौंक क्यो पडी ?"

"कृष्णचन्द्र के इस सहज और भोलेपन से पूछे गये प्रश्न को सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पडी। शास्त्र का गूढ विषय उनके दिमाग से अन्तर्धान हो गया।"

"बहुत दिनो बाद अचानक आप आये हैं न ! इसीलिए।"

"ओह, गलती हुई मुझसे, कृपया क्षमा कर दीजिए या कोई सजा दे दीजिए। मैं बहुत भुलक्कड हूँ।"

"उसके पश्चात्ताप का परिमाण देखकर अर्चनाकुमारी के सम्पूर्ण चेहरे पर वात्सल्य भाव फैल गया। हँसते हुए बोली—

"अब इस एक अपराध की सजा जमा रहने दीजिये। दो-चार और गलतियाँ करने पर इकट्ठी ही सजा दे दूंगी।"

"क्या मैं जानबूझ कर गलतियाँ करता हूँ ?"

"जानबूझ कर ही तो इतने दिनो बाद आने की गलती की है।"

"नही, मैं भूल गया था। कह चुका हूँ, फिर भी आप मानती नही।"

अच्छा ऐसा ही सही, कृष्णचन्द्र की तनिक-सी बात मे उत्तेजना देखकर अर्चनाकुमारी पुन हँस दी। सोचने लगी—"इस मनुष्य को क्रुद्ध कितना सरल है।"

"बाहर राधा खडी है।"

"राधा ? कैसी राधा ?" अर्चनाकुमारी ने आश्चर्य और उत्सुकता से पूछा।

"इसी कृष्णचन्द्र की राधा, जीवित और सशरीर।" कृष्णचन्द्र ने शान्ति से अपनी ओर इशारा करते हुए कहा।

पलक मारते ही अर्चनाकुमारी समझ गई और अत्यन्त उद्विग्न होकर झुंझलाती हुई बोली—

"कैसे आदमी है आप ? पत्नी को बाहर खडा कर आये और यहाँ बातो मे मशगूल हो गये। उन्हे अपने साथ अन्दर क्यो नही लाये ?"

"मै क्या करता ? वह कहने लगी—आप पहले जाकर देख आइये कि भगवती अन्दर है या नही ?"

"ओह, तो आपने देखा नही क्या अभी तक मुझे ? जाइये, लेकर आइये उन्हे यहाँ। क्या सोच रही होगी वह इतनी देर से बाहर खडी हुई ?"

'अच्छा' कहकर कृष्णचन्द्र चल दिया और कुछ क्षणो के पश्चात् ही राधा के साथ पुन लौटा। अर्चनाकुमारी की दृष्टि राधा की ओर उठ गई। करीब इक्कीस वर्ष की उम्र, छरहरा सुडौल शरीर, रग न अधिक गोरा और न अधिक काला ही, पर चेहरा अत्यन्त आकर्षक। मस्तक पर सिंदूर की बडी गोल बिन्दी, तीखी

नाक और नुकीली ठोडी तथा इन सबको भी मात कर देने वाले बडे-बडे नेत्र, वह जरी-किनारी की बसन्ती रग की सुन्दर साडी पहने हुए थी जिसके चौडे पल्ले पर जरी की ही बडी सुन्दर कैरी कढी हुई थी। मस्तक पर साडी का पल्ला तनिक आगे को खिचा हुआ था। अत्यन्त सकुचित और शरमाती हुई राधा ऐसी लग रही थी मानो प्रथम बार ही ससुराल मे कदम रख रही हो। भोलापन उसके चेहरे पर बिखरा पडा था।

"राधा! यही है मेरी गुरु और बहन, नमस्कार करो।"

पर कृष्णचन्द्र के कहने से पहले ही राधा ने झुककर अर्चना-कुमारी के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया था।

"अपने धर्म का पालन करो बहन!" भगवती ने आशीर्वाद दिया।

"कौनसा धर्म? ठाकुरजी की पूजा? वह तो राधा बराबर करती है। उसके लिये आशीर्वाद देने की जरूरत नही है।" कृष्ण-चन्द्र बीच मे ही बोल पडा।

"ठाकुरजी को लेकर मजाक नही करते कृष्णचन्द्रजी!" अर्चना कुमारी ने सस्मित समझाते हुए कहा।

"क्यो न करू मजाक? ठाकुरजी मेरे प्रतिद्वन्द्वी जो है। उनके भोग लगने से पहले मुझे खाना नही मिलता। उनके शयन करने से पहले मैं सो नही पाता और उनके जागने से पहले मुझे चाय नही मिलती ।"

"बापरे! कितने झूठे हो तुम ?" अत्यन्त भोलेपन से अपनी बडी-बडी आँखें नटेरती हुई राधा बोली। लगा कि वह अर्चनाकुमारी की उपस्थिति ही भूल गई।

"कौन कहता है मै झूठा हूँ ?"

"मै कहती हूँ । ठाकुरजी कभी तुम्हारे किसी काम मे वाधा देते हैं ?"

"हाँ देते हैं वाधा । कल ही मै उनको उठाकर किसी मन्दिर मे रख आऊँगा ।"

"आहा · · हा ! वडे आये मन्दिर मे रखने वाले छूकर तो देखो ठाकुरजी को !"

"जरूर छुऊँगा और विना नहाए छुऊँगा ।"

"कैसे वहुरुपिया हो जी तुम ! अभी उस दिन तो कह रहे थे कि अव ठाकुरजी की पूजा करूँगा ।"

"हाँ, तो पूजा कर आया करूँगा मन्दिर मे ही ।"

तुम और मन्दिर तक जाओगे ? दुनिया ही न उलट जाएगी ? कितनी वार कहा तव तो आज मुझे लेकर यहाँ तक आ पाए हो ।"

"वाह, मैंने कव मना किया था ? तुम्ही ने तो कहा था कि पूनम के वाद ले चलना ।"

"पर मैंने यह कव कहा था कि तीन पूनम निकल जायँ तव चौथी पूनम को चलूँगी ?"

"अभी तीन पूनम निकल गई क्या उसके वाद ?"

"नही जी ! तुम्हारी पूनम तो अभी एक वर्ष वाद आयेगी ।"

अर्चनाकुमारी अव अपने पर जव्त न रख सकी और यह मधुर कलह देखकर हँस पडी । वे सोच रही थी—'दोनो ही एक सरीखे है ।' कितना वचपन है इनमे अभी तक । पूछ वैठी—

"राधा वहन, क्या कृष्णचन्द्रजी तुमसे सदा इसी तरह झगडते रहते है ?"

"आप देख तो रही है भगवती ! इसी तरह परेशान करते हैं।" राधा शरमा कर बोली।

"परेशान करता हूँ मैं ?" कृष्णचन्द्र कपाल पर आँखें चढा-कर बोला—"और यह राधा क्या कम बोल रही थी ? देख तो लिया आपने नमूना।"

"नमूना तो दोनो का देख लिया। भगवान ने आप लोगों की जोडी खूब मिलाई है। पर आप राधा बहन के ठाकुरजी को लेकर हँसी क्यो करते है ?"

"भगवती ! आज आप इनको मेरे ठाकुरजी का नाम लेने का त्याग करवा दीजिये।" राधा ने शरारत भरी वकिम निगाह कृष्ण-चन्द्र की ओर डालते हुए आर्या अर्चनाकुमारी से आग्रह किया।

"पर इससे पहले आप इससे पूछिये तो सही कि इसके ठाकुर-जी बडे है या मैं ?" कृष्णचन्द्र कहाँ चूकने वाला था।

मृदु मुस्कराहटपूर्वक आर्या अर्चनाकुमारी ने राधा से कहा—

"राधा बहन ! तुम वास्तव मे ही पति-परायण सती साध्वी राधा हो, यह मैं जान गई हूँ। तुम्हारे सरल और निष्कपट हृदय का परिचय मुझे मिल गया है। ठाकुरजी के प्रति तुम्हारी अनन्य भक्ति तुम्हारे गौरव को बढाती है। फिर भी तुम्हे प्रतिमा, पति और पर-मेश्वर इन तीनो के महत्व तथा उनमे रही हुई भिन्नता को समझ लेना चाहिये।"

"अवश्य, मुझे अवश्य समझाइये भगवती !" कहती हुई राधा ने अपने विशाल नेत्रो मे जिज्ञासा लाते हुए अर्चनाकुमारी से आग्रह किया।

"देखो बहन ! प्रतिमा ठाकुरजी की, या राम, कृष्ण, बुद्ध अथवा महावीर किसी की भी हो, वह केवल जड वस्तु मात्र होती है। उसका

महत्त्व है, और बहुत है, पर सिर्फ इस दृष्टि से कि जिस महान आत्मा का वह प्रतीक है उसके जीवन का, उसके महान गुणो का, उसके महान कार्यो का उसे देखकर स्मरण किया जाए। अन्यथा कोई पूजा और अर्चना करने से कुछ लाभ हो, ऐसा नही लगता। वह सिर्फ आत्म-ज्ञान विहीन श्रद्धालु भक्तो के मनस्तोष के लिये ही रह जाती है।"

"जड होने के कारण उसमे राग-द्वेप आदि चैतन्य-प्राणियो मे रहने वाले गुण-दोप नही होते। इसलिये भक्ति तथा सेवा-पूजा के अभाव मे वह रुष्ट नही होती और किये जाने पर तुष्ट भी नही होती। न उससे शाप दिये जाने का ही भय होता है और न वरदान पाने की आशा ही रहती है। उसकी अवज्ञा और उपेक्षा होने पर भी उसे दुख अथवा कष्ट नही होता। आवेश या क्रोध नही आता, पर इसके विपरीत ।"

"इसके विपरीत क्या महादेवी ?" राधा की आतुरता वढ रही थी।

"इसके विपरीत, पति की सेवा, शुश्रूपा मे असावधानी होने पर और तनिक भी उसके विपरीत चलने पर उसे कष्ट होता है, दुख होता है और असन्तोष होता है। क्योकि वह हाड-मांस का वना हुआ चैतन्य प्राणी होता है। पत्नी पुरुप की पूरक होती है। पुरुप के सभी अभाव उसे पाकर स्वयमेव भर जाते है। प्रतिमा को सिर्फ पूजा-अर्चना की आवश्यकता होती है किन्तु पति को पत्नी के हार्दिक सहयोग की आवश्यकता रहती है। और इसी प्रकार ससार मे रहने पर पत्नो को भी पति पर आश्रित रहना होता है, उसी के द्वारा जीवनोपयोगी समस्त सुविधाओ को प्राप्त करना पडता है। लता जिस प्रकार वृक्ष का अवलम्ब होकर वढती है, फूलती है, फलती है

उसी प्रकार नारी भी पुरुष का सहारा लेकर अपनी जीवन-नौका को इस ससार सागर मे आगे बढाती है। पुरुष के असन्तुष्ट होने पर नारी का जीवन कभी सुखमय नही हो सकता, निराकुल नही बन पाता।"

"इसके अतिरिक्त वेद-पुराणो और धर्म-ग्रन्थो मे पति को परमेश्वर की सज्ञा दी गई है। पतिव्रता नारी के लिये पति ही परमेश्वर है, पूज्य है और परम सुख-प्रदाता है। किसी ने कहा है—

भर्तु: शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देव पूजनात्॥

"देवताओ की पूजा और वन्दना से दूर रहने पर भी जो स्त्री अपने स्वामी की सेवा मे लगी रहती है, वह उस सेवा के प्रभाव से उत्तम स्वर्ग लोक को प्राप्त करती है। इसलिये राधा बहन, अपने ठाकुरजी की पूजा-उपासना करते हुए भी तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अपने पति की ।"

"पूजा ज्यादा मन लगाकर किया करो!" कृष्णचन्द्र बीच मे ही खुश होकर बोल पडा। "सुन लिया न राधा! अब चौबीस घण्टे ठाकुरजी की पूजा करने की जरूरत नही है। मुझे खुश रखा करो यही तुम्हारे लिए काफी है। भगवती ने निर्णय कर दिया।"

"किन्तु परमेश्वर ?"

"परमेश्वर और क्या ? पति ही तो परमेश्वर होता है, जैसे तुम्हारे लिये मै ?"

"हाँ, हाँ, बडे परमेश्वर हो न तुम! तुम्ही तो दुनिया को बनाते और बिगाडते हो। तुम्ही ससार के प्राणियो को उनके कर्मो

के अनुसार फल देते हो, तुम्हारे अलावा और तो परमेश्वर है ही कहाँ ?" राधा ने पति को चिढाया।

"यह क्या बात है भगवती ! राधा को तो अभी अकल आई ही नही।" कृष्णचन्द्र ने मुँह बनाया।

"राधा सच कहती है कृष्णचन्द्रजी ! परमेश्वर को पाना आसान नही है। इसके लिये ससार के समस्त पदार्थो पर से आसक्ति हटानी पडती है। प्रत्येक प्राणी के प्रति रहे हुए मोह को त्याग देना होता है। इस ससार के वार-वार जन्म और मरण के दुखो से छुटकारा पाने के लिये मुमुक्षु प्राणी को धन, वैभव, स्वजन, परिजन सभी से नाता तोडकर विरक्ति भाव अपनाना पडता है।"

"वस, वस भगवती ! राधा को कृपा करके यह शिक्षा मत दीजिये, अन्यथा मै वे-मौत मर जाऊँगा।" कृष्णचन्द्र का चेहरा दयनीय हो आया और मुँह से शब्द निकल पडे—

"इससे तो अच्छा यही है कि राधा पूर्ववत् अपने ठाकुरजी की पूजा किया करे। मै वाधा नही डालूंगा।"

"पर ठाकुरजी को तो तुम कल मन्दिर मे रख आओगे न !" राधा ने ओठ दवाकर मुस्कराहट को छिपाते हुए वनावटी गम्भीरता से कहा—

"नही, नही ले जाऊँगा। वल्कि उनसे और वडे तथा सुन्दर ठाकुरजी खरीद लाऊँगा।"

राधा खिलखिलाकर हँस पडी। साथ ही पति के अगाध स्नेह का अनुभव कर उसका मन-मयूर नाच उठा। गौरव और गर्व से दीप्त उसका आकर्षक चेहरा अनेक गुनी शोभा विखेरने लगा।

अर्चनाकुमारी उस अद्भुत और पारस्परिक स्नेह से ओत-प्रोत युगल को देखकर विमुग्ध हो गई।

"अच्छा भगवती ! अब इजाजत दीजिये। राधा के ठाकुरजी बहुत देर से अकेले है, घबरा रहे होगे।"

"पर तुम तो साथ हो न ! ठाकुरजी से भी बडे।" पति परा-यण राधा ने अपनी सलज्ज पलकें उठाकर आँखो ही आँखो मे मुस्कराते हुए कहा—

"नही राधा रानी ! मेरी तो छोटा रहने मे ही कुशल है।" उसकी मुख-मुद्रा देखकर अर्चनाकुमारी भी अपनी हँसी नही रोक पाई। बोली—

"अब कब आइएगा आप दोनो ?"

"जब ठाकुरजी की आज्ञा मिलेगी।" हँसते हुए कृष्णचन्द्र ने राधा की ओर दृष्टिपात किया। किन्तु राधा ने उसकी ओर न देखते हुए भगवती को नमस्कार किया।

"पुन आना बहन !"

"अवश्य भगवती ! पर अब की बार इन बडे ठाकुरजी को साथ नही लाऊँगी।"

"क्या · ? क्या कहा · ·?" कृष्णचन्द्र की आँखें फिर कपाल पर चढी।

"कुछ नही, चलो अब !" राधा आँचल से हँसी दबाती हुई चल पडी। 

३५
भावुक जानकी



अगले दिन महावीर जयन्ती मनाई जाने वाली थी । जनता बडे उत्साह उल्लास से इस दिन की प्रतीक्षा मे थी। प्रात काल ब्राह्म मुहूर्त मे ही सैकडो नवयुवक इकट्ठे हो गए और प्रेरणाप्रद मधुर गान गाते हुए प्रभात फेरी के लिए निकल पडे । ब्यावर नगर की प्रत्येक सडक और गली उनके गीतो से गूंज उठी ।

प्रभात फेरी के समाप्त होते ही लोग भगवती अर्चनाकुमारी का प्रवचन सुनने के लिये उपाश्रय मे आकर अपना-अपना स्थान ग्रहण करने लगे । प्रवचन भवन खचाखच भर गया और सबकी उत्सुक निगाहे बार-बार भगवती के लिये नियत किये हुए ऊँचे मच की ओर उठने लगी । धीरे-धीरे घडी ने आठ के टकोरे लगाने शुरू किये किन्तु वे पूरे भी न हो पाए थे कि अर्चनाकुमारी की गरिमामय भव्य आकृति पर लोगो की श्रद्धापूरित दृष्टि पडी । वे अपनी दो शिष्याओ के साथ मथरगति से मच की ओर बढ रही थी । नर-नारियो ने खडे होकर उच्च स्वर से जय-जयकार किया और मस्तक झुकाकर श्रद्धा भेट की । उस तुमुल घोष के साथ ही उन्होंने आसन ग्रहण किया तथा अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया । उस उठे हुए हाथ मे मानो सबको शात हो जाने का मूक आदेश भी था उसके कारण कुछ क्षणो मे ही गम्भीर शान्ति व्याप्त हो गई । स्त्री-

पुरुषो के नेत्र भगवती की सौम्य आकृति का सतत दर्शन करने के लिये और कान उनकी मधुर वाणी को श्रवण करने के लिये जागरूक हो उठे।

छोटी-सी एक प्रार्थना के बाद ही अर्चनाकुमारी ने अपनी मजी हुई भाषा मे भगवान महावीर की विशेषताओ पर और उनके जन-कल्याणकारी सिद्धान्तो पर विस्तृत प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। उन्होने बताया—

"इस विशाल भूतल पर असख्य महापुरुष, अवतार माने जाने वाले विशिष्ट पुरुष तथा जन-मानस पर छा जाने वाले तीर्थंकर भी हुए है। किन्तु भगवान महावीर के समान तपस्वी, अपरिमित धैर्य, साहस, क्षमता और सहिष्णुता का आदर्श उपस्थित करने वाला महापुरुष दूसरा नही हुआ। गोशालक, शूलपाणि यक्ष, सगमदेव, चण्डकौशिक भुजग और अनार्य लोगो द्वारा दी गई रोमांचकारी पीडाओ के समय भी वे सुमेरु के समान अडिग और अडोल रहे। उन्होने महावीर नाम प्राप्त किया।

"महावीर इस पृथ्वी पर एक अद्वितीय क्रान्तिकारी महापुरुष के रूप मे आए। किसी एक क्षेत्र मे ही नही वरन् उन्होने सर्वतोमुखी क्रान्ति का बिगुल बजाया। उन्होंने ही उस काल के तापसो के बाह्य क्रियाकाड को निरर्थक बता कर उन्हे आभ्यन्तर तपस्या की ओर प्रेरित किया उसका महत्त्व समझाया। परस्पर खडन-मडन मे अपनी शक्ति को व्यय करने वाले दार्शनिको को अनेकान्तवाद का महामत्र दिया। जन्मगत जातिवाद, जो कि मानवीय सद्गुणो की अवगणना करता था, उसके स्थान पर महावीर ने गुणो तथा कार्यों को महत्त्व प्रदान किया। यज्ञ के नाम पर असख्य मूक पशुओ का जीवनान्त कर देने वाले क्रूर क्रियाकाड का विरोध करके मोक्ष का सही मार्ग

सुझाया। उस समय, जबकि नारियो की महत्ता को लोग भूल गए थे, उन्हे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा था, उन्होने ही 'साध्वी-सघ' का निर्माण करके पुन नारियो को प्रतिष्ठा प्रदान की।"

'महावीर की वाणी मे शाश्वत सत्य था जिसने जन-मानस मे क्रान्ति उपस्थित कर दी। विश्व मे हिंसा, शोषण और कदाग्रह के स्थान पर अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की पीयूष धाराएँ वह निकली।

"आज विज्ञान के विनाशकारी युग मे इन सिद्धान्तो के प्रचार और प्रसार की अनिवार्य आवश्यकता है। तभी आपका मानव-समाज पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न बन सकता है। हमे चाहिये कि हम भारतीय संस्कृति के इन मूलभूत सिद्धान्तो को अपनाएँ और समाज तथा राष्ट्र मे सर्वत्र सुख और शान्ति का सचार करें। तभी हमारा भगवान महावीर को स्मरण करना तथा उनकी जयन्ती मनाना सार्थक होगा।"

प्रवचन करीब एक घण्टे तक चलता रहा। उसके समाप्त होने पर जनता प्रमुदित होकर अपने गन्तव्य की ओर चल दी। धीरे-धीरे भवन खाली हो गया किन्तु जानकी मन्त्रमुग्ध की तरह बैठी रह गई। उसका ध्यान तब भग हुआ जब अर्चनाकुमारी मच से उतर कर रवाना हो गई। प्रतिदिन के विपरीत आज वह भी उठी और घर जाने के बजाय भगवती के साथ चल कर उपाश्रय मे आई।

लगातार बोलने के कारण कुछ थकी हुई अर्चनाकुमारी ने अपना आसन बिछाकर उस पर बैठते हुए कहा—

"आओ जानकी बैठो।"

"जी आप विराजिये।" कहते हुए उनके बैठ जाने पर वह भी समीप ही बैठ गई।

"कहो, प्रसन्न हो न ?"

"जी हाँ।" जानकी ने संक्षिप्त उत्तर दिया, किन्तु अर्चनाकुमारी ने लक्ष्य किया कि उनके सदा अव्यक्त और उदास दिखाई देने वाले चेहरे पर एक अभूतपूर्व आतरिक आह्लाद की आभा बिखरी हुई थी और नेत्रो मे अवर्णनीय प्रसन्नता की चमक थी। देखकर उनके मन को अत्यन्त सतोष हुआ। परम स्नेह से उन्होने कहा—

"काफी वक्त हो गया जानकी ! तुम्हे भोजन करना होगा अब।"

"और आप ?"

"मैं उपवास करूँगी आज।"

"मैं भी उपवास कर लूंगी।"

"क्यो ? तुम क्यो कर लोगी ?

"यो ही ।"

"वाह ! हम साधु हैं, यथाशक्ति तपस्या हमे करनी ही चाहिये। पर तुम क्यो करोगी ?"

"इसलिये कि आप कर रही है।"

"यह भी कोई बात है ! तुम जाओ अब !"

"मन जो नहीं करता जाने को।" कहते हुए जानकी के चेहरे पर कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दिया किन्तु लगता था कि उसका मन मुस्करा रहा है।

"नही करता मन तो न सही। पर तुम जिद क्यो कर रही हो ? जाती क्यो नही ?" उसके भूखी रह जाने की कल्पना से उद्विग्न होकर भगवती ने स्नेहसिक्त झुंझलाहट मे पुन उसे चले जाने को कहा।

जानकी का चेहरा पलक मारते ही उदास हो आया बोली—

"क्या मेरा आपके समीप अधिक देर ठहरना आपको अच्छा नही लगता ?"

"कैसी पगली हो तुम ! मैं क्या ऐसे मन से तुम्हे जाने को कह रही हूँ ?"

"तब कैसे मन से कह रही है आप ?"

"जैसे राम ने वन जाते समय सीता से अयोध्या मे रहने को कहा होगा।"

"फिर सीता रही क्या अयोध्या मे ?"

"नही ।"

"तब फिर मै ही क्यो आपके कहने से चली जाऊँ ?" अब जानकी का चेहरा मुस्कराहट को छिपा न सका।

अर्चनाकुमारी भी हँस पडी—"अच्छा बाबा, मत जाओ ! तुम जीत गई बस ? पर जानकी ! क्या तुम्हारा मन सीता के समान दृढ है ?" कौतूहल वश उन्होने पूछ लिया।

"इसकी परीक्षा समय आने पर आप स्वय कर लीजियेगा। पर आज तो मैं आपसे कुछ अध्ययन करने की शुरूआत करना चाहती हूँ।"

"अवश्य, यह तो बडी प्रसन्नता की बात है जानकी ! बोलो, तुम क्या पढना चाहती हो ?" भगवती ने अत्यन्त हर्ष और उत्साह-पूर्वक कहा।

"मेरी मन्द बुद्धि जो चीज ग्रहण कर सके वही शुरु करवा दीजिये !"

"कैसी बात करती हो ? बुद्धि मन्द होती तो तुम एम० ए० कैसे कर लेती ?"

"मै सत्य ही कह रही हूँ भगवती ? भौतिक ज्ञान मे रट रटा-

कर एम० ए०-बी० ए० कर लेना कोई बडी बात नही है। बुद्धिमानी तभी साबित हो सकती है जब आध्यात्मिक। ज्ञान हासिल करके उसे आत्मसात् किया जाए। मुझमे इतनी योग्यता कहाँ है ? इसलिए तो मेरा मन बडा व्यथित रहता है। आप कृपा करके मुझे मार्गदर्शन कीजिए जिससे मै जीवन और जगत के रहस्य को समझ सकूँ और इस आत्मा की मुक्ति के लिये कुछ कर सकूँ।"

"पराये दुख से पलमात्र मे दुखी हो जाने वाली अर्चनाकुमारी ने दयार्द्र होकर जानकी का कोमल और सुडौल हाथ अपने हाथ मे ले लिया तथा उसे सान्त्वना देते हुए कहा—

"इतनी निराशा क्यो जानकी! ज्ञान प्राप्ति के लिए जब तुम्हारे हृदय मे इतनी बेकली है तो तुम क्यो नही प्राप्त कर सकती ?"

"लेकिन यह तभी हो सकता है, जबकि मेरे इस थामे हुए हाथ को छूकर, आज के शुभ दिन आप वचन दे कि जीवन मे कभी भी और किसी भी कारण से आप मुझसे विमुख न होगी।"

अर्चनाकुमारी स्तब्ध हो गई। इतने दिनो मे वे जान गई थी कि जानकी अत्यन्त भावुक है, किन्तु उसकी भावुकता इतनी अधिक और सीमातीत है, यह उन्होने आज ही जाना। कुछ क्षणो तक वे कुछ न बोल सकी, पर उसके बाद हृदय की गहराई से निकलते हुए उनके एक-एक शब्द को जानकी ने सुना। वे कह रही थी—

"साधुओ का कथन मात्र ही वचन के सदृश होता है जानकी! हम साधुओ का तो ससार के समस्त प्राणियो के प्रति सद्भाव होता है तुम भी उन्ही मे से हो न! फिर आशका किस बात की ?"

"मेरा मन बेसहारा है भगवती! अवलम्बहीन।"

"ऐसा क्यो कह रही हो ? माता-पिता, भाई-भतीजे, भरा-पूरा

पीहर और फिर धन-सम्पत्ति तुम्हारे पास प्रचुर मात्रा मे है। किस बात की कमी है तुम्हे ?"

"हां, सभी कुछ है और सभी कोई है, पर मुझे लगता है कि मेरा कोई नही है। मेरा कुछ भी नही है। ऐसा क्यो लगता है, मुझे नही मालूम, पर लगता है आप मुझे सहारा दीजिए। मेरे मन को, मेरी आत्मा को, मुझे आपके सभी तरह के सहयोग की अपेक्षा है भगवती ! कहिये प्रदान करेगी ?'

आर्या अचनाकुमारी समझ नही पा रही थी कि क्या कहे ? ससार मे रहकर भी अकेलापन महसूस करने, और परिवार के बीच रहकर भी अपने को निराधार मानने वाली भावुक जानकी को वे कैसे सान्त्वना दे ? मोहकर्म का कम से कम बध हो, सतत इस प्रयत्न मे रहने वाले उनके मन मे भी छद्मस्थ होने के कारण ममता का ज्वार उमड पडा। इच्छा हुई कि वे जानकी को अपने हृदय से लगाकर एक मासूम बालक के समान थपथपाकर शान्त करे, येन-केन-प्रकारेण उसे सन्तुष्ट करे। किन्तु अपनी इच्छा को उन्होने मन ही मन मे रखकर कहा—

"इतनी अधीरता किसलिये जानकी ? तुम समझदार, बुद्धिमती और सुशिक्षित हो। अपना और अपनी आत्मा का हित किसमे है, यह समझने मे समर्थ हो। फिर इतनी चिन्ता और परेशानी किस बात की ? मेरे द्वारा अगर किसी भी प्रकार का सहयोग तुम्हे मिल सकता है तो मै प्रस्तुत हूँ। मेरा अथवा किसी भी सन्त का जीवन अपने और दूसरो के कल्याण के लिए ही होता है, भटके हुए या दुखी मनुष्यो के लिए आश्रयस्थल होना है। साधु-पुरुष दूसरो के दुख से दुखी और उनके सुख से सुखी होते है।"

'इसके अलावा जानकी ! तुम्हे सहयोग और साथ ही तुम

जैसी विदुषी का संसर्ग पाकर मुझे भी तो परम प्रसन्नता होगी न ! जीवन के इस दीर्घ राज-पथ पर प्रत्येक प्राणी, चाहे वह साधु हो या कोई भी साधारण व्यक्ति, एकाकी नही चल पाता। सहयात्री की अपेक्षा रखता है। अपने अनुरूप साथी पाकर वह अपने मार्ग को सुगम महसूस करता है, और सरलता से चल सकने की क्षमता अपने मे अनुभव करता है। निःस्वार्थ सहयोग, जिसे हम मित्रता कहते हैं, उसमे एक अनूठा ही माधुर्य होता है। सु-मित्र का समागम पथ की बाधाओ को सरल करते हुए उसमे होने वाले कष्टो को आधा करता है, यही नही, वह आनन्द को चौगुना बढा भी देता है।"

"भगवती ! आप सच कह रही है ? क्या मेरा साथ आपको रुचिकर होगा ? मेरे निर्बल और अशक्त मन को आप अपने साथ आगे बढा सकेंगी ? मैं भार रूप नही लगूंगी आपको ?' असीम जिज्ञासा और व्याकुलता से भरे हुए अपने मीन-सदृश नेत्र जानकी ने अर्चनाकुमारी के शान्त और सौम्य चेहरे पर टिका दिये। उसके प्राण मानो उस समय आँखो मे ही आ बसे थे, और कान भगवती का निर्णय सुनने के लिए अधीर हो रहे थे।

अर्चनाकुमारी किंकर्तव्यविमूढ-सी हो रही थीं। कुछ क्षणो तक उनके मुंह मे बोल निकल ही नही पाए। उन्हे लग रहा था, मानो जानकी की आत्मा जनम-जनम मे स्नेह की, आत्मीयता की भूखी है। अत्यन्त विगलित होकर उन्होने जानकी को अपने पास खीच लिया और उसके सिर और पीठ पर अपना वात्सल्यपूर्ण हाथ फेरने लगीं। उस ममतापूर्ण स्पर्श का विद्युत की तरह असर हुआ और वह अनिर्वचनीय सुख तथा सन्तोष का अनुभव करती हुई अपनी आश्रयदात्री की गोद मे मुंह छिपाकर पड गई। उसकी आंखो मे आंसू बह चले।

कुछ क्षण इसी प्रकार बीते। अर्चनाकुमारी ने उसके मन को

हलका होने दिया। कोई बाधा नही डाली। कुछ समय बाद जब जानकी सुस्थिर हुई, तो उन्होने परम स्नेह से उसके अश्रुसिक्त चेहरे को ठोडी के सहारे ऊँचा उठाया और आँखो के द्वारा उसके हृदय की अबूझ गहराई को छूते हुए कहा—

"तुम मुझे भार-रूप क्यो लगोगी जानकी! अपना मार्ग तुम अपने ही साहस और शक्ति से तो पार करोगी। जीवन-पथ पर चलना तो प्रत्येक प्राणी को स्वय ही पडता है। पर होता यह है कि सशक्त और साहसी व्यक्ति प्रसन्न वदन बना रहकर सरलतापूर्वक अपना मार्ग तय करता है और कमजोर मन का व्यक्ति उत्साह रहित होने के कारण बडी कठिनाई से मंजिल की ओर चल पाता है। किन्तु ऐसे निर्बल प्राणियो की यात्रा भी सुगम हो जाती है, अगर उन्हे सच्चा साथी और सहयोगी मिल जाए।"

"जानकी! सहयात्री के बिना यात्रा कठिन हो जाती है। उसके अभाव मे प्राणी न पूरी प्रसन्नता का अनुभव कर पाता है और न दुःख के बोझ को ही हलका कर सकता है। हर्ष और दुख का बँट-वारा करने वाला साथी ही होता है। सच्चा मित्र है भी वही, जो अपने मित्र के सुदिन और दुर्दिन मे समान रूप से काम आए।"

"इसलिए, तुम मुझ पर विश्वास रखो, मेरे द्वारा तुम्हे जितना भी सहयोग मिल सकता है अवश्य मिलेगा। तुम्हे निराश होने की तथा अपने को निर्बल मानने की तनिक भी आवश्यकता नही है। तुम्हारा सम्पर्क मुझे अत्यन्त प्रिय और रुचिकर होगा। भला तुम-सी सुसंस्कृता और उच्चमना का साथ मिलने पर किसे प्रसन्नता नही होगी? अपने आपको हीन मत समझो। तुम्हारी आत्मा मे भी वैसी ही ज्वलंत शक्ति छिपी हुई है जैसी मुझमे और संसार के अन्य प्राणियो

मे विद्यमान है। सिर्फ उसे जगाने की आवश्यकता है। और यह तुम्हारे लिए तनिक भी कठिन नही। मै प्रयत्न करूँगी कि तुम उसे पहचान सको और आत्मकल्याण मे सहायक बना सको।"

भगवती के आश्वासनपूर्ण वचनो को सुनकर हर्षातिरेक से जानकी विह्वल हो गई। उसका सुन्दर चेहरा कुन्दन के समान दमक उठा और आँखो से अदम्य उत्साह की किरणे फूट पडी। उसे लगा, मानो आज से उसका नव-जीवन प्रारम्भ हो रहा है। प्रत्येक वस्तु उसे नवीन दिखाई देने लगी।

"भगवती ।" जानकी ने कुछ कहना चाहा पर उसका कण्ठ रुक गया, वह कुछ कह न सकी।

"तुम्हे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है जानकी! मैने तुम्हारे मन को पढ लिया है। प्रसन्न होओ और अपने मे साहस का सचार करो। तुम जानती हो न, 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' अब आओ! आज से मै तुम्हे 'तत्वार्थ सूत्र' पढाना प्रारम्भ करती हू।"

आज्ञाकारी बालक की भाँति जानकी उठ खडी हुई और भगवती के चरण-स्पर्श कर प्रसन्नवदन पाठ लेने बैठ गई।



३६

देख ली दिवाली



देखने-देखते छ मास वीत गए। जानकी एक के वाद एक कई धर्म-ग्रन्थ पढ गई। अर्चनाकुमारी के सान्निध्य मे उसकी कमजोर आत्मा शक्तिसचय करती रही और आध्यात्मिक ज्ञान उसके हृदय मे घिरे अवसाद को हटाता गया। अलौकिक आह्लाद से परिपूर्ण उसका मन मानो नया जन्म लेकर अतीत के गह्वर से भाग चला। भगवती के स्नेह का सम्वल उसके निर्वल मन को सवल वनाने मे अतीव सहायक सिद्ध हुआ। निर्वाध शान्ति और सन्तोष उसके चेहरे पर कान्ति विखेरने लगे। लगता था कि सदा प्रफुल्लित रहने वाला उनका सहज स्वभाव वहुत दिनो की निद्रा के पश्चात् जाग उठा है।

आर्या अर्चनाकुमारी जानकी मे यह परिवर्तन देखकर अत्यन्त प्रसन्न थी। उन्हे उसका सरल और निष्कपट व्यक्तित्व वहुत ही भाता था। जानकी नित्य आती थी, और उसके आते ही उन्हे लगता था मानो उपाश्रय मे मधुरिमा फैल गई हो। उसका पढना, वोलना, हँसना, मुस्कराना या शिशु के समान तनिक-सी वात पर रूठ जाना सभी प्रिय था। पूर्व मे सदा गमगीन वना रहने वाला उसका आकर्षक चेहरा अव वसन्त के समान विहँसता हुआ दिखाई देता था। किन्तु पन्द्रह दिन वाद ही चातुर्मास समाप्त होने वाला था और उन्हे वहाँ से प्रस्थान करना था। जानकी के मन पर

उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? कैसे उसे समझाया जायेगा ? दीपावली की शाम को यही सोचती हुई वे बैठी थी कि उनके कानो मे सुपरिचित मधुर स्वर टकराए।

"भगवती !"

जानकी के गद्‌गद स्वर से उनकी तन्मयता भग हो गई। देखा, वह चुपके से आई और पैरो पर मस्तक झुकाकर उनकी गोद मे अपनी दोनो कुहनियाँ टिकाकर हथेलियाँ अपने चेहरे पर रखे हुए बैठ गई। उसे इतना पास आकर बैठते हुए और मुस्कराती हुई दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए देखकर अर्चनाकुमारी ने बडे स्नेह से उसकी बिखरी हुई अलको को समेटते हुए कहा—

"आ गई .... तुम ?"

"और नही तो क्या बिना आए ही आपके पास बैठी हूँ ?"

जवाब सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पडी। बोली—

"आज बहुत प्रसन्न हो जानकी ! क्या बात है ?"

"बात तो कुछ नही।"

"फिर .... ?"

"आज दीपावली है न !"

"तो क्या हुआ ?"

"तो क्या हुआ ? कुछ भी नही ?" छोटे से दो प्रश्नो मे मे ही ढेर सारे प्रश्न पूछती हुई जानकी ने उलाहने के स्वर मे कहा।

"साधुओ के लिए तो सभी दिन समान होते है जानकी !"

"क्यो होते है समान ? क्या उनके मन नही होता ?" जानकी नाराज होकर बोली।

"मन तो होता है पर उसमे होली, दीपावली के लिए स्थान नही होता।"

"जगह तो आपके मन मे मेरे लिये भी नही थी, पर मैंने बनाली या नही ? ऐसे ही दीपावली के लिए भी बन जायेगी। चलिये उठिये न अब !" जानकी ने अर्चनाकुमारी का हाथ खीचकर उन्हे उठाने की कोशिश करते हुए कहा।

"पर कहाँ ?" उसकी उतावली पर मुस्कराते हुए भगवती ने आश्चर्य से पूछा।"

"ऊपर छत पर। वहाँ से देखेगे।"

"तो तुम देख आओ जाकर।"

"नही आपके साथ चलूँगी।"

"पर मुझे दिवाली यही से दिखाई दे रही है।"

"यहाँ से ? कहाँ ? मुझे तो कुछ भी नही दिखाई देता ?"

जानकी के व्यग्रतापूर्ण भोलेपन पर हँसते हुए अर्चनाकुमारी ने कहा—"कल्पना के नेत्रो से देखो ! असख्य जलते हुए दीपक, रग-बिरगे बल्बो से जगमगाती हुई दुकाने, कानो के पर्दे फाड देने वाले पटाखे, और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणो से सजे और लदे हुए नर-नारी, और क्या देखना है बताओ ?"

"कुछ नहीं देखना, देख तो लिया सब।" कहते हुए वह भगवती से दूर हटकर चुपचाप बैठ गई।"

"अरे, तुम नाराज हो गई क्या ?"

"क्या होगा नाराज होकर।" बहुत ही धीमे स्वर से जानकी ने उत्तर दिया।

"अच्छा चलो दिवाली देखे।" कहकर अर्चनाकुमारी ने उसे उठाने का प्रयत्न किया किन्तु हाथो पर आँसुओ की गरम-गरम बूँदे गिरते ही वे चौक पडी।

उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? कैसे उसे समझाया जायेगा ? दीपावली की शाम को यही सोचती हुई वे बैठी थी कि उनके कानो मे सुपरिचित मधुर स्वर टकराए।

"भगवती !"

जानकी के गद्गद स्वर मे उनकी तन्मयता भग हो गई। देखा, वह चुपके से आई और पैरो पर मस्तक झुकाकर उनकी गोद मे अपनी दोनो कुहनियाँ टिकाकर हथेलियाँ अपने चेहरे पर रखे हुए बैठ गई। उसे इतना पास आकर बैठते हुए और मुस्कराती हुई दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए देखकर अर्चनाकुमारी ने बडे स्नेह से उसकी बिखरी हुई अलको को समेटते हुए कहा—

"आ गई · तुम ?"

"और नही तो क्या बिना आए ही आपके पास बैठी हूँ ?"

जवाब सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पडी। बोली—

"आज बहुत प्रसन्न हो जानकी ! क्या बात है ?"

"बात तो कुछ नही।"

"फिर ?"

"आज दीपावली है न !"

"तो क्या हुआ ?"

"तो क्या हुआ ? कुछ भी नही ?" छोटे से दो प्रश्नो मे से ही ढेर सारे प्रश्न पूछती हुई जानकी ने उलाहने के स्वर मे कहा।

"साधुओ के लिए तो सभी दिन समान होते है जानकी !"

"क्यो होते हैं समान ? क्या उनके मन नही होता ?" जानकी नाराज होकर बोली।

"मन तो होता है पर उसमे होली, दीपावली के लिए स्थान नही होता।"

"जगह तो आपके मन मे मेरे लिये भी नही थी, पर मैंने बनाली या नही ? ऐसे ही दीपावली के लिए भी बन जायेगी। चलिये उठिये न अब !" जानकी ने अर्चनाकुमारी का हाथ खींचकर उन्हे उठाने की कोशिश करते हुए कहा।

"पर कहाँ ?" उसकी उतावली पर मुस्कराते हुए भगवती ने आश्चर्य से पूछा।"

"ऊपर छत पर। वहाँ से देखेगे।"

"तो तुम देख आओ जाकर।"

"नही आपके साथ चलूँगी।"

"पर मुझे दिवाली यही से दिखाई दे रही है।"

"यहाँ से · ? कहाँ ? मुझे तो कुछ भी नही दिखाई देता ?'

जानकी के व्यग्रतापूर्ण भोलेपन पर हँसते हुए अर्चनाकुमारी ने कहा—"कल्पना के नेत्रो से देखो ! असख्य जलते हुए दीपक, रग-विरगे वल्वो से जगमगाती हुई दुकानें, कानो के पर्दे फाड देने वाले पटाखे, और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणो से सजे और लदे हुए नर-नारी, और क्या देखना है वताओ ?"

"कुछ नही देखना, देख तो लिया सब।" कहते हुए वह भगवती से दूर हटकर चुपचाप वैठ गई।"

"अरे, तुम नाराज हो गई क्या ?"

"क्या होगा नाराज होकर।" वहुत ही धीमे स्वर से जानकी ने उत्तर दिया।

"अच्छा चलो दिवाली देखे।" कहकर अर्चनाकुमारी ने उसे उठाने का प्रयत्न किया किन्तु हाथो पर आँसुओ की गरम-गरम वूँदे गिरते ही वे चौंक पडी।

"अरे, तुम तो रोने लगी जानकी ! मैंने तो मजाक किया था। दीपावली के शुभ दिन मे कोई रोता है ?"

"आपके लिए शुभ और अशुभ दिन क्या ? सभी तो समान है। और फिर कल्पना मे दिवाली देख ही ली, अब क्या देखेंगी चलकर ?"

जानकी का गुस्सा बडा प्यारा लग रहा था पर आँसुओ का गिरना नहीं, अत अर्चनाकुमारी एक तरह से उसे खींच ले गई।

छत पर पहुँचते ही उसकी रोती हुई आँखे हँसने लगी। और वह खुश होकर जगमगाते हुए दीपको को देखती रही। आज उसे दिवाली देखने मे जो खुशी हो रही थी, वह अवर्णनीय थी। दीपक की प्रत्येक लौ उसके हृदय मे खुशी का ज्वार ला रही थी। चारो ओर बिखरे हुए समग्र प्रकाश को उसके नेत्र अपने मे समाए ले रहे थे। धीमे स्वर मे वह कुछ गुनगुना उठी।

अर्चनाकुमारी का ध्यान रोशनी की ओर नहीं था। वे एक खम्भे के सहारे खडी हुई शून्य दृष्टि से किसी एक ही ओर निहारे जा रही थी, पर जानकी की धीमी गुनगुनाहट ने उनका ध्यान खींच लिया।

"क्या गा रही हो जानकी ?"

चोरी पकडी गई जानकर जानकी शरमा गई, बोली—

"गा कहाँ रही थी भगवती ! यो ही ।"

"पर सुनाओ न ! तुम कविताएँ लिखती हो पर मुझे आज तक एक भी न सुनाई। आज सुनानी पडेगी।" अर्चनाकुमारी ने आग्रह-पूर्वक कहा और वही छज्जे के नीचे बैठ गई।

छुटकारे का रास्ता न पाकर जानकी उनके समीप ही बैठ गई

और गाने का आग्रह बढ़ाने लगीं। ... हुए कंठ से स्वर बह चले—

जल रहे दीप अगणित सभी ओर, पर
आज मैं देखती हूँ तुम्हें ही मुखर !
मौन सन्देश ... ...,
मगर कह रही हूँ तुम्हें ... !
इक नई ज्योति जो जग उठी प्राण में,
शान्ति जो यह अनोखी बसी प्राण में,
आज नूतन जनम मिल गया है मुझे,
औ, नई चाह भी जग गई प्राण में।
मत इन्हें अब भुलाना कभी प्राण तुम !
अब न मन को सताना कभी प्राण तुम !
स्नेह दीपक जलाया बडी साध से,
अब न इसको बुझाना कभी प्राण तुम !
पास आकर न अब दूर जाना कभी,
बस यही आज मैं कह रही हूँ तुम्हें !

अर्चनाकुमारी मुग्ध होकर सुन रही थी। गीत समाप्त होते ही सराहना किये बिना न रह सकी—

"बहुत सुन्दर गाती हो जानकी ! कितनी भावुक हो तुम ? तुम्हारा अन्तर और बाह्य दोनो ही अनुपम है।"

"पसन्द आया आपको ? जानकी ने सकुचित होते हुए बात काटी।"

"क्यो नही, बहुत पसन्द आया । पर अब चलो, जल्दी, कल का पाठ सुना दो, और नया याद करने के लिए ले लो ।"

"आज तो जी नही चाहता ।"

"तो तुम्हारा जी आखिर चाहता क्या है ?" अर्चनाकुमारी ने मीठी झिडकी दी ।

"आपकी गोद मे चुपचाप लेटे रहना । आज दिवाली है न ?"

"पागलपन मत करो जानकी ! साधुओ का किसी पर अधिक मोह रखना ठीक नही ।" लेकिन तब तक जानकी भगवती की गोद मे मस्तक रख कर लेट चुकी थी । उनके वात्सल्य मे भीगी हुई परमसुख का अनुभव करती हुई वह लापरवाही से बोली—

"क्यो ? क्या साधुओ के मन मे स्नेह भी नही होता भगवती !"

"होता है, किन्तु उस पर ससार के प्रत्येक प्राणी का अधिकार होता है । किसी एक पर ही अपनी ममता उडेल देने से साधु अन्य प्राणियो को समान भाव से स्नेह-प्रदान करने के अपने कर्तव्य का पालन नही कर सकता ।"

"तो न सही । ससार मे असख्य साधु-महात्मा है । हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, सिक्ख आदि सभी जातियो मे साधु-सन्तो की कमी नही, उनमे से एक आप ही सिर्फ अपने कर्तव्य का पूरी तरह से पालन न कर पाएँ तो क्या फर्क पडेगा ?"

"वाह, यह कैसी बात है तुम्हारी ? कल को तुम यह भी कह दोगी कि ससार के अनेक साधु सन्त तो मोक्ष मे जाएँगे ही, एक आप ही मुक्ति प्राप्त न कर पाएँ तो क्या फर्क पडेगा ?"

जानकी खिलखिलाकर हँस पडी और बडे लाड से अर्चनाकुमारी के गले मे अपनी बाहे डालते हुए बोली—

"यह कैसे कहूँगी भगवती ! मुक्ति प्राप्त करना और स्नेह देना

क्या एक ही वात है ? मुक्ति तो प्राणी को अपने ही परिश्रम से प्राप्त करनी पडती है, पर स्नेह तो विना परिश्रम किये भी मिल जाता है। और वह भी एक से नही तो दूसरे से और दूसरे से नही तो तीसरे से प्राप्त किया जा सकता है।"

"आज तुम्हे हो क्या गया है ?' धीरे ने जानकी के हाथो को अपने गले मे से निकालते हुए अर्चनाकुमारी ने कहा।

"कहाँ ? कुछ भी तो नही हुआ।"

"फिर ये उल्टी-सीधी वातें क्यो कर रही हो। छ महीने मे यही सव पटा है क्या मुझसे।"

"नही, पटा तो सव सीधा ही है, पर आज दीपावली के कारण उस सवसे छुट्टी ले रखी है।"

"छुट्टी ? छुट्टी तो पन्द्रह दिन वाद तुम्हे यो ही मिल जाएगी।"

"क्या मतलव ?" जानकी ने चौकते हुए पूछा।

"मतलव यही कि पन्द्रह दिन वाद चातुर्मास समाप्त हो जाएगा और हम यहाँ से चल देगे।"

"क्या ? क्या कहा आपने ?"

"कहा तो जानकी! कि हमे चातुर्मास के समाप्त होते ही यहाँ से विहार करना होगा।"

"नही, यह नही हो सकता, कभी नही हो सकता।" जानकी तडपकर वोल उठी।

अर्चनाकुमारी उसकी उत्तेजना देखकर पलभर को सहम गई। पर फिर धीरे से उसका हाथ अपने हाथो मे लेकर समझाने का प्रयत्न करती हुई वोली—

"क्यो नही, बहुत पसन्द आया। पर अब चलो, जल्दी, कल का पाठ सुना दो, और नया याद करने के लिए ले लो।"

"आज तो जी नही चाहता ।"

"तो तुम्हारा जी आखिर चाहता क्या है ?" अर्चनाकुमारी ने मीठी झिडकी दी।

"आपकी गोद मे चुपचाप लेटे रहना। आज दिवाली है न ?"

"पागलपन मत करो जानकी! साधुओ का किसी पर अधिक मोह रखना ठीक नही।" लेकिन तब तक जानकी भगवती की गोद मे मस्तक रख कर लेट चुकी थी। उनके वात्सल्य मे भीगी हुई परमसुख का अनुभव करती हुई वह लापरवाही से बोली—

"क्यो ? क्या साधुओ के मन मे स्नेह भी नही होता भगवती !"

"होता है, किन्तु उस पर ससार के प्रत्येक प्राणी का अधिकार होता है। किसी एक पर ही अपनी ममता उडेल देने मे साधु अन्य प्राणियो को समान भाव से स्नेह-प्रदान करने के अपने कर्तव्य का पालन नही कर सकता।"

"तो न सही। ससार मे असख्य साधु-महात्मा है। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, सिक्ख आदि सभी जातियो मे साधु-सन्तो की कमी नही, उनमे से एक आप ही सिर्फ अपने कर्तव्य का पूरी तरह से पालन न कर पाएँ तो क्या फर्क पडेगा ?"

"वाह, यह कैसी बात है तुम्हारी ? कल को तुम यह भी कह दोगी कि ससार के अनेक साधु सन्त तो मोक्ष मे जाएँगे ही, एक आप ही मुक्ति प्राप्त न कर पाएँ तो क्या फर्क पडेगा ?"

जानकी खिलखिलाकर हँस पडी और बडे लाड से अर्चनाकुमारी के गले मे अपनी बाहे डालते हुए बोली—

"यह कैसे कहूँगी भगवती ! मुक्ति प्राप्त करना और स्नेह देना

क्या एक ही बात है ? मुक्ति तो प्राणी को अपने ही परिश्रम से प्राप्त करनी पड़ती है, पर स्नेह तो बिना परिश्रम किये भी मिल जाता है। और वह भी एक से नही तो दूसरे से और दूसरे से नही तो तीसरे से प्राप्त किया जा सकता है।"

"आज तुम्हे हो क्या गया है ?' धीरे से जानकी के हाथो को अपने गले मे से निकालते हुए अर्चनाकुमारी ने कहा।

"कहाँ ? कुछ भी तो नही हुआ।"

"फिर ये उल्टी-सीधी बाते क्यो कर रही हो। छ महीने मे यही सब पढा है क्या मुझसे।"

"नहीं, पढा तो सब सीधा ही है, पर आज दीपावली के कारण उस सबसे छुट्टी ले रखी है।"

"छुट्टी ? छुट्टी तो पन्द्रह दिन बाद तुम्हे यो ही मिल जाएगी।"

"क्या मतलब ?" जानकी ने चौकते हुए पूछा।

"मतलब यही कि पन्द्रह दिन बाद चातुर्मास समाप्त हो जाएगा और हम यहाँ से चल देगे।"

"क्या ? क्या कहा आपने ?"

"कहा तो जानकी! कि हमे चातुर्मास के समाप्त होते ही यहाँ से विहार करना होगा।"

"नही, यह नही हो सकता, कभी नही हो सकता।" जानकी तडपकर बोल उठी।

अर्चनाकुमारी उसकी उत्तेजना देखकर पलभर को सहम गई। पर फिर धीरे से उसका हाथ अपने हाथो मे लेकर समझाने का प्रयत्न करती हुई बोली—

"जानकी, शान्त होकर मेरी बात सुनो !"

"नही ! मै कुछ भी सुनना नही चाहती ।"

कहते हुए तीव्र झटके मे अपना हाथ छुड़ाकर वह सतर होकर बैठ गई। मारे आवेश के उसका चेहरा लाल हो गया और आँखो की पुतलियाँ आँसुओ मे डूब गई ।

"मुझे समझने की कोशिश करो जानकी ! इतनी बुद्धिमती होकर भी जरा-सी बात पर नाराज होना तुम्हे शोभा देता है क्या ?" अर्चनाकुमारी के स्वर मे अनुनय का पुट था ।

"यह जरा सी बात है आपकी ? आज का दिन ही मिला आपको प्रस्थान का शुभ समाचार सुनाने के लिये ? मुझे तो क्रोध करना शोभा नही देता पर आपको यह निष्ठुरता दिखाना शोभा देती है ? और देगी क्यो नही, आप साधु जो है। साधुओ के हृदय मे उपेक्षा, विरक्ति और कठोरता के अलावा और क्या हो सकता है ? स्नेह और कोमलता का बीज ही जब तक भस्म न हो जाय तब तक आप साधु कैसे ?"

असह्य क्रोध के कारण जानकी आपे से बाहर हो गई। छोटे-बड़े का, गुरु और शिष्य का भेद-भाव ही उस समय उसके दिमाग से निकल गया। वह भूल गई कि जिनको आज वह जली-कटी सुना रही है, उनसे कुछ मिनिट वार्तालाप करने के लिए भी दुनिया तरसती है। जिसके हाथो मे से उसने तेजी से हाथ खींच लिया है, उनके चरणो को एक बार छूने के लिए भी प्राणी लालायित रहते है। और जिनका उसने इतना समय बरबाद किया है उनके क्षणभर दर्शन कर पाने को ही अपना सौभाग्य मानते है। बुद्धि और ज्ञान सब उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने मे अपना म्लान मुंह लेकर जा छिपे ।

मोह-कर्म की यह करामात देखकर भगवती अर्चनाकुमारी दग रह गई। कुछ क्षण किंकर्तव्यविमूढ की सी स्थिति मे गुजारने के पश्चात् वे पश्चात्तापपूर्ण स्वर मे बोली—

"मुझसे वास्तव मे भूल हुई जानकी! मैंने असमय मे विहार की बात कहकर तुम्हारे कोमल मन को दुखाया। इसके लिए तुम मुझे क्षमा करो। मैं अपनी गलती के लिए स्वयं भी प्रायश्चित्त कर लेती हूँ।"

अबकी बार दग रह जाने की बारी जानकी की थी। भगवती के शब्दो से चमत्कृत होकर पूछ बैठी—

"कैसा प्रायश्चित्त ?"

"आज की सम्पूर्ण रात्रि इसी आसन पर बैठकर ध्यान और स्वाध्याय करके गुजारूँगी।" अत्यन्त शान्ति और स्निग्धतापूर्वक अर्चनाकुमारी ने उत्तर दिया।

जानकी पानी-पानी हो गई। समस्त रोष आँखो की राह बह चला। घोर पश्चात्ताप की आग मे जलकर उसका मन मोम हो गया। भगवती को कहा हुआ एक-एक शब्द स्वयं उसे सालने लगा। विगलित होकर उसने दोनो हाथो से उनके चरण पकड लिए और रुँधे हुए कण्ठ से बोली—

"मुझे क्षमा कीजिये भगवती! दोष मेरा ही है। मेरे अपराध के लिए आपको प्रायश्चित्त करने की जरूरत नही। और अगर आपने ऐसा किया तो मैं भी घर नही जाऊँगी। यही इसी तरह आपके पैर पकडे बैठी रहूँगी।" आगे वह बोल नही सकी। पैरो पर टप-टप गिरते हुए आँसू ही आगे की बात अर्चनाकुमारी से कह चले।

अत्यन्त उद्विग्न होकर करुणामयी भगवती ने उस स्नेह की

भूखी जानकी को हृदय से लगा लिया और उसके भीगे कपोलो पर से बहते हुए आँसुओ को पोछती हुई बोली—

"तुम तो सचमुच ही पगली हो जानकी! क्यो रोई इतनी ?"

"आपने क्यो कहा जाने के लिये ?" जानकी रूठे हुए स्वर मे कह उठी।

"मैंने भूल की, पर उसकी सजा भी तो तुमने कम नही दी।" अर्चनाकुमारी ने उसकी ठोडी उठाकर मुस्कराते हुए कहा।

"मैं तो मूरख हूँ ।" कहती हुई जानकी ने पुन उस ममतामयी गोद मे मुँह छिपा लिया। ☐



३७

कब···?



समय बीतना था, बीत चला। चातुर्मास समाप्त होना था, हो गया। किसी को सुख होता है या दुख इसकी परवाह काल ने कभी की नही, तो उस बार जानकी के कारण वह अनवरत गति मे व्यक्तिक्रम क्यो डालता ? अनन्त पथ का वह पथिक कदम बढा चला और भगवती के प्रस्थान की वेला आ पहुँची।

महामहिम वसुन्धरा पर प्रथम बार नयन उघाडने से लेकर अब तक के जीवन मे अर्चनाकुमारी ने अगणित उलट-फेर देखे। प्रत्येक बार उन्होने अपना मार्ग चुना, और दृढता से उस पर कदम बढाए। वे अडिग चरण कभी थमे नही, हारे नही। बढते रहे, चलते रहे। पर समस्त बाधाओ को ठोकर मार कर हटा देने वाले उन धीर चरणो मे इस बार जानकी का स्नेह बेडी बन गया, जिसे हटाना असभव तो नही, पर कठिन अवश्य था। वज्रमयी बेडियाँ सरलता से तोडी जा सकती है किन्तु कुसुमवत् कोमल स्नेह-पाश तोडना देवताओ के लिए भी मुश्किल है। मानव की तो फिर बिसात ही क्या है। हाँ, साधु इसके लिये अपवाद होते हैं और इसीलिये अर्चनाकुमारी अपने निर्दिष्ट समय पर प्रस्थान करने के लिये उद्यत हो गई।

इस बीच अर्चनाकुमारी के पिता महामुनि श्री जगतनारायण

जी का, तथा महिमामयी आर्या महिमावती का स्वर्गवास हो चुका था। बडो का साया धीरे-धीरे उनके मस्तक पर से हट जाने पर नवीन शिष्याओ के लिये वे स्वय छत्र-छाया बन गई। गुरुता के गौरव को धारण किये हुए अपनी दो शिष्याओ सहित उन्होने राजस्थान की राजधानी जयपुर की ओर कदम बढाए। असख्य नर-नारी काफी दूर तक उनके साथ रहे और अन्त मे भाव-भरी विदाई देकर लौट चले।

जानकी चुपचाप चल रही थी। कई दिनो से उसकी जबान पर मानो ताला लग गया था। उसके सौम्य चेहरे पर से हँसी लुप्त हो गई थी, और हृदय मे प्रफुल्लता के स्थान पर विषाद ने घर कर लिया था। आज भी वह एक शब्द भी उच्चारण किये बिना यन्त्रवत् चल रही थी। उसके शुष्क चेहरे और बुझी हुई आँखो की ओर देखकर भगवती का हृदय व्यथा से परिपूर्ण हो गया। दबे हुए स्वर से उन्होने पुकारा—

"जानकी!"

जानकी ने कोई उत्तर नही दिया। उसने सुना ही नही। लगता था कि उसकी इन्द्रियाँ उसकी इच्छा से काम नही कर रही थी, उनसे बलपूर्वक काम लिया जा रहा था। अर्चनाकुमारी ने तनिक समीप आकर पुन कहा—

"जानकी सुनो! अब तुम भी लौट जाओ। सब लौट जा रहे है।"

इस बार जानकी ने सुन लिया और उसी क्षण भगवती के चरण छूकर जाने को उद्यत हो गई। बोली कुछ नही।

अर्चनाकुमारी दिग्मूढ की तरह उसे देखने लगी। सोच रही

थी, यह आज्ञा पालन कैसा ? न शिकवा, न शिकायत और न ही शीघ्र लौटने का आग्रह। भारी कठ से उन्होंने स्वय कहा—

"जानकी, प्रसन्न रहना ! हम वापिस जल्दी लौटेंगे।"

"कब ?"

जलती हुई आंखो, और सूखे हुए गले से पूछा गया यह दो अक्षरो का प्रश्न बन्दूक की गोली की तरह अर्चनाकुमारी के दिल-दिमाग मे धँसता चला गया। क्या जवाब दें इसका, सूझा ही नही। वह कैसे कहती कि उनका साधु जीवन है। एक-एक कदम चलकर ही जमीन नापनी पडती है। ट्रेन या बस मे बैठकर तो जा नहीं सकते, ऊपर से लम्बी यात्रा। जयपुर देहली और पजाब होते हुए सम्भवत वे काश्मीर की ओर निकल जाएँ। और इतने मे तो दो-चार वर्ष भी लग सकते है। तो क्या इसी को जल्दी लौटना कहा जाएगा ? अपनी जबान से निकाले हुए शब्दो पर पश्चात्ताप करता हुआ उनका हृदय मन-ही मन सिर धुनने लगा। जानकी की एकटक देखती हुई झिझक हीन निगाहो की ओर देखने मे उन्हे भय मालूम हो रहा था। साथ मे आए हुए समस्त स्त्री-पुरुषो को क्षणभर मे मगल-मत्र सुनाकर विदा दे देने वाले उनके हृदय मे एक शब्द 'कब' उथल-पुथल मचा रहा था। उसका समाधान किये बिना कदम कैसे बढते ? मानो वही थम गए। मन की इस उलझन से परास्त होकर वे समीप ही पडे हुए शिलाखण्ड पर बैठ गई और खीचकर जानकी को भी बिठा लिया। टूटती-सी देह लिये जानकी अर्चनाकुमारी के समीप बैठ गई।

"अपने मन को सम्हालो जानकी !" अत्यन्त नरम स्वर से कहते हुए भगवती ने जानकी का मुंह अपने हाथ से ऊँचा उठाया पर देखा कि उसकी पुतलियाँ अश्रुओ मे तैर रही थी।

"छि यह क्या ? तुम तो रो रही हो।"

जानकी कुछ बोली नही, उसने अपना मुँह नीचे की ओर झुका लिया। आँसू झर-झर कर हृदय को हल्का करने लगे।

अर्चनाकुमारी ने सतोष की साम ली। वे जानती थी कि गहरी से गहरी व्यथा को भी आँसू अपने साथ बहाकर मन को हल्का कर देते है। वे कुछ कहने ही जा रही थी कि सहसा घोडे की टापो की आवाज सुनाई दी। मुडकर देखा तो मालूम हुआ कि एक तागा आ रहा है और उसमे कृष्णचन्द्र अपनी पत्नी राधा के साथ बैठा हुआ है। कुछ क्षणो मे ही ताँगा समीप आ गया और दम्पती नीचे उतरे। देखकर अर्चनाकुमारी के चेहरे पर बरबस तनिक सी मुस्कान फैल गई और जानकी के आँसू व्याघात पाकर थम गए। उन्हे पोछ-कर वह सतर्क होकर बैठ गई।

"भगवती ! नमस्कार। आपने तो अचानक ही प्रस्थान कर दिया।"

"अचानक कैसे भाई ? चातुर्मास समाप्त हुआ, और चातुर्मास के पश्चात् साधुओ को भ्रमण तो करना ही चाहिये।"

"क्यो ?"

"क्योकि भ्रमण किये बिना वे अधिक से अधिक लोगो के सम्पर्क मे नही आ सकते। साधुओ का जीवन सिर्फ अपने कल्याण के लिये नही होता। उनके हृदय मे मानव मात्र के कल्याण की कामना होती है। अपना परिवार, अपना मोहल्ला और अपना नगर ही उनके लिये अपना नही होता, सारी सृष्टि उनकी अपनी होती है। इसके अलावा आज शहरो की अपेक्षा छोटे-छोटे गाँवो मे जाकर जहाँ शिक्षा का प्रचार और प्रसार अधिक नही होता तनिक-तनिक-सी बात पर लोग मरने और मारने के लिये तैयार हो जाते हैं, ऐसे अज्ञानियो को

सन्मार्ग पर लाना साधुओ का कर्तव्य है, और उसे पूरा करने के लिये भ्रमण करना अनिवार्य है।"

"लेकिन आप तो कश्मीर की ओर जाने का विचार कर रही है जहाँ के अधिकाश लोग मासाहार पर जीते है, धर्म किस चिडिया का नाम है, यह भी नही जानते। ऐसे लोगो के बीच आप किस प्रकार निर्दोप आहार प्राप्त कर सकेगी, और कैसे उनको धर्म का मर्म समझा पाएँगी ? हिसा करना जिनके लिए युगो से एक सहज और स्वाभाविक क्रिया बनी हुई है, ऐसे पापियो के लिए मार्ग के अनेकानेक कष्ट आप क्यो सहेगी भगवती ?"

"आप भूल रहे है कृष्णचन्द्रजी ! जागे हुए को जगाने की अपेक्षा सोए हुए को जगाना अधिक जरूरी होता है। धर्म तो अधम-उद्धारण है। पापियो को उपदेश की आवश्यकता धर्मात्मा लोगो से अधिक है। जिन लोगो को किसी ने करुणा, दया और क्षमा का महत्व नही समझाया, मानव-धर्म क्या है यह नही बताया, ऐसे लोग अगर हिंसा तथा अन्य पाप करते है तो उसमे उनका क्या दोष है ? वे हमारे लिए दया के पात्र है, घृणा के नही। दूसरी बात है निर्दोष आहार प्राप्त होने की, इसके लिए आप चिन्ता न करें। जैसा कि आपने कहा, उधर अधिकाश व्यक्ति मासाहारी होते है। ठीक है, पर सब तो नही न ? फिर क्या ? मिलेगा ही कुछ न कुछ। सयम मार्ग पर चलने वाले प्राणी भूख-प्यास की परवाह नही करते। और इसीलिए रूखा-सूखा खाकर और अनेक बार फाके करके भी अपना आचार शुद्ध बनाये रखते है।"

"आप धन्य है भगवती ! ईश्वर आपके महान उद्देश्य की पूर्ति करे। हमारी शुभ कामनाएँ आपके इस सुदूर प्रवास मे साथ रहेगी। आप जिस महान् लक्ष्य को लेकर इस लम्बी यात्रा पर

निकल रही हैं, आपकी दृढता उसमे निश्चय ही सफलता प्राप्त करेगी।'

"आपकी शुभ कामनाओ को मैं सदा याद रखूँगी कृष्णचन्द्र जी ! पर अब आठ बज गए हैं। धूप तेज हो जाने से हमे चलने मे दिक्कत होगी। अत अब रवाना होना चाहिए।" कहते हुए अर्चना-कुमारी उठ खडी हुई पर राधा पर दृष्टि पडते ही उन्होने सस्नेह पूछा—

"राधा बहन, अच्छी हो न ? आज कुछ बोली नही तुम ?"

"भगवती मैं आप लोगो की बात सुन रही थी।" राधा ने आदरपूर्वक उत्तर दिया। पर कृष्णचन्द्र जल्दी से बोल पडा—

"मैं बताता हूँ भगवती ! इसके न बोलने का असली राज। इसके ठाकुर जी चोरी चले गए।"

"अरे ! यह कैसे ?" अर्चनाकुमारी चकित हुई।

"ऐसा हुआ कि चोर ठाकुर जी का सोने का सिहासन चुरा ले गया। उसी मे ठाकुर जी सोये हुए थे। छोटे मे तो थे ही, उसी मे चले गये।"

'फिर ?"

"फिर क्या मैंने बहुत कहा कि दूसरे बडे और अच्छे ठाकुर जी ला देता हूँ। पर यह कहती है, अब ठाकुरजी लाने की जरूरत नहीं। तुम जो हो उनकी जगह।"

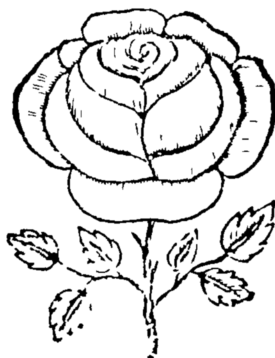
राधा अब चुप न रह सकी। गुस्से मे आँखे तरेरती हुई बोली—

"फिर झूठ बोले ! मैंने कब कही ऐसी बात ? तुम्ही ने तो कहा था कि अच्छा हुआ चोरी चले गये, ऐसे ठाकुरजी किस काम के जो अपनी रक्षा स्वय न कर सके।"

"जी ।" प्रयत्न करूँगी। वह अधिक बोल न सकी।

अर्चनाकुमारी ने क्षणभर के लिए आपादमस्तक देखा और घूमकर चल दी।

जानकी निर्निमेष दृष्टि से, जब तक भगवती नेत्रो से ओझल न हो गई उनकी ओर देखती रही और अन्त मे एक गहरा नि श्वास छोडकर भारी हृदय से राधा के साथ ताँगे मे आकर बैठ गई। 



३८

गोली मार दूँगा !

"अजी सुनते हो ?"

"क्यों क्या बात है ?"

"बात और क्या होगी, चार बज गए। मैं रसोई पका रही हूँ। तुम अब सिलबट्टे के पास से उठो न। नहाने-धोने जाओ।"

"उठता तो हूँ ठकुरानी ! तंग मत करो। साली कुछ असर ही नही करती। एक लोटा पी गया पर लगता है पानी ही नही। आज फौज मे होता तो गोली मार देता। पर होता कैसे ? सरकार अंधी जो है। उसे दिखाई कहाँ देता है कि साठ साल का हो गया हूँ फिर भी बिना हथियार के शेर को मार सकता हूँ, इतनी ताकत है मुझमे। साली पेंशन क्या देती है मुझे, हाथ-पैर तोड़ कर रख दिये। क्या करूँ पेंशन का जब अपनी ताकत आजमाने का मौका ही नही मिलता।"

"क्यों नही मिलता मौका ? यह क्या रोज सिलबट्टे पर ताकत आजमाया करते हो।" ठकुरानी रूपा ने ओढ़नी का पल्ला मुँह से कुतरते हुए कह दिया।

"देखो भागवान ! मजाक मत किया करो, नही तो गोली मार दूँगा।"

"कैसे मार दोगे ? बन्दूक है भी ?"

"नहीं है तो न सही। तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ, मेरे हाथ-पैरों में जंग लगी जा रही है और तुमको हँसी सूझती है। असली राजपूत हूँ बजरंग, हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठा रहूँ?"

"तभी तो कहती हूँ कहीं नौकरी कर लो।"

"फिर तुमने नौकरी का नाम लिया। ठाकुर बजरंग किसी की नौकरी करेगा? गुलामी?"

"तो फौज में और क्या करते थे?"

"वह देश का काम था, दुष्टों को सजा देने का। अच्छे काम के लिये मर-मिटना गुलामी नहीं, बहादुरी कहलाती है। सिर हथेली पर लिये रहना पड़ता है। उस समय मुझे जो सुख था उसका हजारवाँ हिस्सा भी आज नहीं है। इससे तो अच्छा होता कि मैं तभी किसी लड़ाई में काम आ जाता।"

"हाय, हाय, ऐसा मत कहो! काम आते तुम्हारे दुश्मन।" रूपा ने विकल होकर पति के मुँह पर हथेली रख दी।

"मैं क्या झूठ कहता हूँ रूपा! बहादुर होकर घर में बैठा रहूँ, यह मेरे लिये शोभा की बात है क्या? इसी दुख को भुलाने के लिये तो थोड़ी सी छान लेता हूँ। लेकिन ससुरी यह भी अब असर नहीं करती।" ठाकुर बहकने लगा—

"तीन-तीन ब्याह किये पर भगवान की कृपा न होने से औलाद भी नहीं हुई। साली एक भी हो जाती तो गोली मार देता।"

"किसे गोली मार देते? औलाद को?" रूपा जोर से हँस पड़ी।

"क्या कहती हो तुम? कोई अपनी औलाद को भी गोली

मारता है या मैं ही मार देता ?'' ठाकुर का नशा क्षणभर के लिए मानो हिरन हो गया।

''मैं क्या जानूं ? तुम्हीं कह रहे थे अभी !'' ठकुरानी ने वार्तालाप मे आनन्द लेते हुए फिर उसे छेड़ा।

''मैं कह रहा था तो ठीक ही तो कह रहा था। कोई झूठ बोला हूँ मैंने ? ऐसी औलाद किस काम की जो कभी पैदा ही न हो। मैंने तो सुना है कि भगवान के राज्य मे देर हो सकती है पर अंधेर नही। यहाँ तो अंधेर ही अंधेर है। साठ साल का हो गया पर मिट्टी का एक पूत भी देखने को न मिला। अच्छा ही हुआ साले पैदा होते तो सबको फौज मे भेज देता।''

''हाँ, और क्या करते तुम · ?'' रूपा ठकुरानी फिर हँस पडी।

''क्यो ? मैं क्या कुछ कर नही सकता ? अब भी लडाइयाँ लड सकता हूँ, बात की बात मे कइयो को जमीन पर सुला सकता हूँ। मेरा अचूक निशाना देखा है तुमने ? गई हो तुम कभी फौज मे ?''

''मैं क्यो जाने लगी फौज मे ? अपनी पहले वाली दोनो बीवियो को क्यो नही ले गए ?'' रूपा ने चिढाया।

''कैसे ले जाता, दोनो ही बीमार रहती थी। एक को तपेदिक हो गया था दूसरी को मिरगी। वही मैदान मे गो-गो करने लगती।''

''तो क्या मैं ही फालतू हूँ फौज मे ले जाने के लिये ?''

''अरे, कौन साला ले जाता है तुम्हे फौज मे ? एकाध गोली लग जाए तो वही भगवान को प्यारी हो जाओ। और इधर बुढापे मे मेरी मिट्टी पलीद हो। निकम्मी औलाद भी तो कोई नही है।

होती तो कुछ बात भी थी। पर मुझे क्या? मरने दो सालों को नहीं हैं तो। मैं क्या परवाह करता हूँ किसी की? होते भी तो साले कोई फौज में जाते? आजकल के लड़के सब हरामखोर होते हैं। हाथ-पैर ही नहीं हिलते उनके। मुझे ही बैठाकर खिलाना पड़ता। कोई साला ठडाई बाँट कर भी नहीं देता।"

"अरे तो गालियाँ क्यों देते हो बिचारों को?" हँसमुख रूपा ने पति के नशे का पूरा आनन्द लेना चाहा।

"क्या करूँ गालियाँ नहीं दूँ तो? मेरे बुढ़ापे में भला वे किस काम आए, बताओ? यह तो गनीमत है कि मेरे शरीर में अब भी इतनी ताकत है, नहीं तो वह आलसी की औलाद मेरे किस काम आती आज? मुँहजला एक भी तो आमरे का नहीं हुआ।"

रूपा अब जब्त न कर सकी। पति की उलटी-सीधी बातों को सुनकर वह हँस-हँस कर दोहरी हो गई।

"तुम इतना हँस क्यों रही हो ठकुरानी? क्या अपनी औलाद को कोई कुछ कहता नहीं? जी जलने लगता है तो मुँह से कुछ निकल ही जाता है। इसमें इतना हँसने की क्या बात है? पर देखो तो, दूर सड़क पर कौन आता हुआ दिखाई दे रहा है? कोई साधु-सन्यासी है क्या?" अचानक ही सड़क की ओर देखते हुए ठाकुर ने कहा।

रूपा चौंक कर उठ खड़ी हुई। उसका मैका किशनगढ़ में था जहाँ साधु-संन्यासियों का आना-जाना बना ही रहता था। राजपूत होने पर भी बचपन में ही वह सन्तों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती थी और कभी-कभी उनके दर्शन करने आया करती थी। उसके पिता साधुओं के परम भक्त थे और अनेक बार वे सन्तों का भिक्षा

देने के लिये घर लाया करते थे । ठाकुर की बात सुनते ही उसने सड़क पर आँखें फैलाई और अत्यन्त प्रसन्न होकर बोल पड़ी—

"हाँ ठाकुर ! यह तो जैन साध्वियाँ हैं । हमारे धन्य भाग जो आज हमे इनके दर्शन होगे ।" रूपा कुछ और कहने को थी पर पति की गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर चुप हो गई । देखा—क्षणभर मे ही ठाकुर का नशा गायब हो गया था, और चेहरे पर कठोरता आ गई थी । वह बोला—

"देखो ठकुरानी, मैं कितनी ही बार कह चुका हूँ कि तुम्हे साधु-साध्वियो से सम्पर्क रखने की जरूरत नही । पर तुम हो कि मानती ही नही । जाओ अन्दर जाकर खाना बनाओ ।"

रूपा सहम गई, पर बोली कुछ नही । पति के स्वभाव को वह जानती थी । चुपचाप मन मारकर भारी कदमो से अन्दर चली गई ।

ठाकुर बजरग बचपन से साधु-साध्वियो के प्रति उपेक्षा रखता आया था । उसके पिता, दादा, परदादा सभी फौज मे रहे थे । वह भी अपनी युवावस्था से ही पलटन मे भरती हो गया था । मरने-मारने और लड़ने के अतिरिक्त और कोई विचार उसके दिमाग मे उन दिनो नही आते थे । जीवन-भर फौज मे रहने के कारण उसे रिटायर हो जाने पर भी फौज के ही सपने आते रहते थे । हर समय बन्दूक, गोली और लड़ाई ही उसके दिमाग पर छाई रहती । दुर्भाग्य से शादी होने के बाद साल भर मे ही उसकी पहली पत्नी मर गई और दुबारा शादी करने के करीब दो वर्ष मे दूसरी भी चल बसी । पिता ने तीसरा ब्याह भी कर दिया । तीसरे ब्याह की रूपा अत्यन्त खुशमिजाज और भगवान तथा साधु-सन्तो मे भक्ति रखने वाली सुन्दर युवती थी । बजरग ठाकुर इस दृष्टि से विपरीत विचारो वाला था ।

भक्ति नाम की भावना उसके हृदय मे कभी पैदा नही हुई । साधु-साध्वियो के नाम से ही उसे चिढ थी, और इसीलिये ऐसे सयोग आ पडने पर वह ठकुरानी रूपा से नाराज हो जाता। जीवन मे इसे दो प्रकार से दुख महसूस होते थे। एक तो फोज से छुट्टी मिल जाना, और दूसरा कोई सन्तान न होना। दोनो ही दुखो को भूलने के लिए वह प्रतिदिन भग पिया करता । तीसरी पत्नी रूपा ही उसके बुढापे का एकमात्र आधार थी। उसके विमुख हो जाने के भय से वह उसे भरसक भगवद् भक्ति और साधु-समागम से बचाने का प्रयत्न करता।

जयपुर से छ माइल दूर छोटे से गाँव मे, ठीक सडक पर ही उसका पुश्तैनी छोटा-सा मकान था। फौज की नौकरी छूट जाने के बाद से वह घर मे ही रहता और अधिकतर बाहर बरामदे मे बैठा हुआ सडक की चहल-पहल देखा करता। आज भी उसी स्थान पर बैठे हुए उसे दूर से ही अपनी शिष्याओ सहित आती हुई भगवती अर्चनाकुमारी दिखाई दे गई। उन्हे देखते ही ठाकुर का मन खिन्न हो गया। विरक्त भाव से चुपचाप बैठा हुआ वह शायद फौज और लडाई की कल्पना करता रहा।

शनै-शनै अर्चनाकुमारी समीप आई। पीठ और कन्धे पर पहनने ओढने और बिछाने के साधारण वस्त्रो को बाँधे हुए तथा हाथो मे काष्ठ के पात्रो की झोलियाँ लिये हुए उन तीन आर्याओ को ठाकुर देख रहा था। भगवती को देखकर उसे लगा मानो शान्ति और सन्तोष ही मूर्तिमान होकर उसके सामने खडे हो। सोचने लगा—ऐसा दिव्य चेहरा तो शायद उसने जिन्दगी मे देखा ही नही। कैसा अनन्त व्यक्तित्व है यह?" पर शीघ्र ही इन विचारो को एक झटके से हटाकर उसने अपनी उपेक्षा और विरक्ति की भावनाओ को

उभारा और सतर होकर बैठा रहा। अर्चनाकुमारी तब तक समीप आ चुकी थी और पूछ रही थी—

"भाई! क्या तुम्हारे मकान मे हमे रातभर ठहरने के लिए स्थान मिल सकेगा! कल प्रात काल ही हम जयपुर के लिये रवाना हो जाएँगी।'

ठाकुर के घर मे पांच, छ कमरे थे और रहने वाले सिर्फ दो ही प्राणी। सहज ही स्थान दिया जा सकता था किन्तु ठाकुर बरसो की आदत कैसे छोड देता। उसके मुँह से निकल ही गया—

"यहाँ तो जगह नही है!"

"नही है! तो कोई बात नही। सूर्यकुमारी! चलो, वह सामने खण्डहर दिखाई दे रहा है। हम उसी मे ठहर जाएँगे।" अर्चना-कुमारी ने अपनी बडी शिष्या को सम्बोधन करते हुए कहा, और उसी सहज सौम्यता को लिए हुए उस ओर चल दी। उनके चेहरे पर रही हुई प्रफुल्लता तनिक भी कम न हुई और न ही एक भी शिकन आई।

ठाकुर यह देख रहा था। वह आशा कर रहा था, उसके पुन आग्रह करने की और फिर भी स्थान न मिलने पर निराश और परेशान हो जाने की। पर कहाँ! कुछ भी तो नही हुआ। स्थान मिलने पर जो खुशी होती, न मिलने पर भी वैसी ही खुशी उन सभी के चेहरे पर दिखाई दे रही थी। ठाकुर झुंझला उठा और बहुत देर तक बुत बना बैठा देखता रहा कि किस प्रकार सामने के जीर्ण और नष्टप्राय खण्डहर मे आर्याओ ने अपना सामान रखकर रात्रि व्यतीत करने की व्यवस्था की है। वह सोच रहा था, साँप, बिच्छू और अन्य विषैले जन्तुओ के भय से जिस श्मशानवत् जगह मे

वर्षों से किसी ने पैर नहीं रखा था उस स्थान पर साध्वियाँ कैसे रहेंगी ? पर रहेंगी, यह तो निश्चित ही हो गया था।

ठाकुर को अपने मन की कमजोरी पर आश्चर्य हुआ। वह परेशान हुआ कि सदा से साधुओं के प्रति नफरत पूर्ण बनी रहने वाली भावनाओं के स्थान पर उसके दिल में ये कोमल और उनके दुःख-दर्द को महसूस करने वाले विचार कहाँ से उदित हो रहे हैं ? वह सोचने लगा—'कितना अच्छा होता, अगर मैं इस समय फौज में होता। तब ये विचार मेरे दिमाग में क्यों आते ? मुझे क्या मतलब होता, आर्याओं के दुःख-कष्ट से। पर अभी भी मैं क्यों परवाह करूँ ? मुझे क्या लेना-देना है उनसे ? ठकुरानी नाराज हो, तो हो'।

रूपा का स्मरण होते ही वह फिर गुस्से से भर गया। वह क्यों उन लोगों पर भक्ति रखती है ? मेरे नाराज होने पर क्यों वह एक भी शब्द कहे बिना गुस्सा करके अन्दर चली गई ? गई तो जाय, मुझे क्या ? पर यह क्या ? सहसा उसने देखा कि दोनों छोटी बच्चियाँ हाथों में आरती लिये उसी के घर की ओर आ रही हैं। शायद [illegible]।

ठाकुर किंकर्तव्यविमूढ़ था। नशे की ओर से उसका सिर चकरा रहा था। [illegible] मारने को वह एकाएक एक अजीब काण्ड कर बैठा। बिना उचित-अनुचित का विचार किये वह उठा और फटाक से दरवाजा बन्द करके अन्दर हो गया। पर दुर्दमनीय [illegible] के कारण खिड़की की जाली में से [illegible] प्रतिक्रिया देखने लगा।

उधर बच्चियाँ भी सीढ़ियों तक आ पहुँची थीं। पर ठाकुर को [illegible] से उठकर अन्दर जाते और दरवाजा बन्द करते [illegible]-

कर वे पलभर के लिये ठिठक कर ही सहज और स्वाभाविक भाव से लौट गई ऐमे लौट गई जैमे कुछ हुआ ही न हो। ठाकुर देखता रहा। उसने यह भी देखा कि उसके घर से लौटकर आर्याएँ अन्य किमी घर की ओर नही गई। अपने स्थान पर ही जाकर सभवत कुछ पठन-पाठन मे लग गई।

यह खूब रही । ठाकुर को और ज्यादा गुस्सा आया। क्या मेरे घर के अलावा और कोई घर इन्हे भिक्षा लेने के लिये नही मिला ? इमका मतलब यह है कि ये आज कुछ खाऐगी नही। भूख तो लगी ही होगी, न जाने कितनी दूर से तो चलकर आयी है। मैंने दरवाजा वन्द कर लिया तो क्या हुआ ? भूखी रहकर क्या ये मुझे सजा देगी ? अकेले मेरे घर का ठेका तो है नही। कुछ ही दूर पर और भी तो घर है। वहाँ क्यो नही गई । देर हो गई होगी शायद ? हो जाए मेरी बला से ! मुझे क्या दुख होगा ? मै तो खूब खाऊँगा ही। मुझे तो साला एक जून भी खाने को न मिले तो हाथी जितनी शक्ति घटकर चूहे जितनी रह जाती हे। यह सब इस शिवजी की बूटी की कारस्तानी है। इसके मारे भूख और खुल जाती हे। मेरा वश चलता तो इसे भी गोली मार देता। पर शिवजी भी इसके विना नहीं रह सकते तो फिर मैं क्या चीज हूँ। ठकुरानी नाराज हो गई तो हो जाने दो, मेरा क्या बिगाड लेगी। मै परवाह नही करता किसी की किसी की भी । वडबडाता हुआ ठाकुर दरवाजा खोलकर फिर बाहर आ गया। बैठ गया अपने उसी स्थान पर। उठा ही नही।

अबेर होती देखकर ठकुरानी रूपा बाहर आई, गम्भीर और उदास चेहरे से बोली—

वर्षों से किसी ने पैर नही रखा था उस स्थान पर साध्वियाँ कैसे रहेगी ? पर रहेगी, यह तो निश्चित ही हो गया था।

ठाकुर को अपने मन की कमजोरी पर आश्चर्य हुआ। वह परेशान हुआ कि सदा से साधुओ के प्रति नफरत पूर्ण बनी रहने वाली भावनाओ के स्थान पर उसके दिल मे ये कोमल और उनके दुख-दर्द को महसूस करने वाले विचार कहाँ से उदित हो रहे है ? वह सोचने लगा—'कितना अच्छा होता, अगर मैं इस समय फौज मे होता। तब ये विचार मेरे दिमाग मे क्यो आते ? मुझ क्या मतलब होता, आर्याओ के दुख-कष्ट से। पर अभी भी मै क्यो परवाह करूँ ? मुझे क्या लेना-देना है इनसे ? ठकुरानी नाराज हो, तो हो'।

रूपा का स्मरण होते ही वह फिर गुस्से से भर गया। वह क्यो इन लोगो पर भक्ति रखती हे ? मेरे नाराज होने पर क्यो वह एक भी शब्द कहे बिना गुस्सा करके अन्दर चली गई ? गई तो जाय मुझे क्या ? पर यह क्या ? सहसा उसने देखा कि दोनो छोटी साध्वियाँ हाथो मे झोली लिये उसी के घर की ओर आ रही हैं। शायद भिक्षा के लिये।

ठाकुर किंकर्तव्यविमूढ था। नशे की झोक मे उसका क्रोध बढ रहा था। पलक मारते ही वह एकाएक एक अजीब काण्ड कर बैठा। बिना अनुचित-उचित का विचार किये वह उठा और फटाक से दरवाजा बन्द करके अन्दर हो गया। पर दुर्दमनीय कौतूहल को न रोक सकने के कारण खिडकी की जाली मे से अपनी करतूत की प्रतिक्रिया देखने लगा।

आर्याएँ बरामदे की सीढियो तक आ पहुँची थीं। पर ठाकुर को तीव्र गति से उठकर अन्दर जाते और दरवाजा बन्द करते देख-

कर वे पलभर के लिये ठिठक कर ही सहज और स्वाभाविक भाव मे लौट गई ऐमे लौट गई जैमे कुछ हुआ ही न हो। ठाकुर देखता रहा। उसने यह भी देखा कि उसके घर से लौटकर आर्याएँ अन्य किसी घर की ओर नही गई। अपने स्थान पर ही जाकर सभवत कुछ पठन-पाठन मे लग गई।

यह खूब रही । ठाकुर को और ज्यादा गुस्सा आया। क्या मेरे घर के अलावा और कोई घर इन्हे भिक्षा लेने के लिये नही मिला ? इसका मतलब यह है कि ये आज कुछ खाऐंगी नही। भूख तो लगी ही होगी, न जाने कितनी दूर से तो चलकर आयी है। मैंने दरवाजा वन्द कर लिया तो क्या हुआ ? भूखी रहकर क्या ये मुझे सजा देंगी ? अकेले मेरे घर का ठेका तो है नही। कुछ ही दूर पर और भी तो घर हैं। वहाँ क्यो नही गई । देर हो गई होगी शायद ? हो जाए मेरी वला से ! मुझे क्या दुख होगा ? मैं तो खूब खाऊँगा ही। मुझे तो साला एक जून भी खाने को न मिले तो हाथी जितनी शक्ति घटकर चूहे जितनी रह जाती है। यह सब इस शिवजी की वूटी की कारस्तानी है। इसके मारे भूख और खुल जाती है। मेरा वश चलता तो इसे भी गोली मार देता। पर शिवजी भी इसके विना नही रह सकते तो फिर मै क्या चीज हूँ। ठकुरानी नाराज हो गई तो हो जाने दो, मेरा क्या विगाड लेगी। मै परवाह नही करता किसी की किसी की भी । वडवडाता हुआ ठाकुर दरवाजा खोलकर फिर वाहर आ गया। वैठ गया अपने उसी स्थान पर। उठा ही नही।

अवेर होती देखकर ठकुरानी रुपा वाहर आई, गम्भीर और उदास चेहरे से वोली—

"चलो खाना खालो !"

"मुझे भूख नही है · ।"

"भूख नही है ?" रूपा आश्चर्य से मुँह बाए खडी रह गई। ऐसा तो कभी सुना नही। पूछा—

"क्यो नही है भूख ?"

"यो ही ···।"

"पर खालो न थोडा-सा !" रूपा ने आग्रह किया। पति आखिर पति है। हजार मन के खिलाफ चले पर भारतीय नारी उस पर सदय ही हो जाती है। रूपा के हृदय मे भी कोमल भावनाएँ जाग उठी।

पर ठाकुर खिन्न था। झुँझला पडा—"मै नही खाऊँगा ठकुरानी ! जिद मत करो।"

"आखिर बात क्या हुई · ?" रूपा समझ नही पाई।

"बात और क्या होगी ? सारी दुनिया मेरी दुश्मन है। जी चाहता है सबको गोली से उडा दूं।"

"हाँ, उडा देना गोली से, पर अभी-अभी दुनिया ने क्या बिगाड दिया है तुम्हारा ?"

"बिगाड क्या सकती है मेरा ? मै क्या परवाह करता हूँ किसी की ? कोई भूखा रहे या प्यासा, ठाकुर बजरग का क्या जाता है ? भूखे रहकर सब कोई डराना चाहते है मुझे।"

"पर कौन भूखा रहकर तुम्हे डरा रहा है ? मुझे समझाकर बताओ तो सही !"

"इसमे समझने की क्या बात है ? भूखे रहने का मतलब भी

क्या तुम समझती नही हो ठकुरानी ? नही समझने लायक क्या वात कही है मैंने ? मैं कोई पढा लिखा हूँ कि वडी ऊँची और न समझ मे आने वाली वात कहूँगा ? मैं तो लडना और वन्दूक चलाना ही सिर्फ जानता हूँ।"

"पर कौन है भूखा ? मै तो सदा ही तुम्हारे वाद खाया करती हूँ।"

"आहा-हा ! जैसे मै तुम्हारी भूख से ही व्याकुल हो रहा हूँ। तुम खाओगी, यह क्या मैं जानता नही ?"

"तव फिर किसकी वात कर रहे हो ?"

"उनकी, जो उस सामने वाले खण्डहर मे ठहरी हुई है। उन आर्याओ की।"

"पर तुम्हे क्या मालूम कि वे भूखी हैं ?" रूपा ने चौक कर कहा।

"मुझे नहीं तो और किसे मालूम होगा ? अपनी आँखो से क्या मैं देख नही रहा था ? मेरे सामने ही तो वे झोली लेकर इधर आयी थी, और मैंने दरवाजा वन्द कर लिया तो उलटे पैरो लौट गई। सीधी उसी स्थान पर।"

रूपा समझ गई। एक गहरी सास उसके कलेजे को चीरती हुई निकल आई। कई क्षणो तक दिग्मूढ की भाँति वही खडी रही। एक शब्द भी मुँह से नहीं निकला। अपने निष्कपट किन्तु आदत से लाचार पति से वह कहती भी तो क्या ? यही तो एक उसकी कमजोरी थी। अन्यथा ठाकुर के समान सरल और निष्पाप व्यक्ति दुनिया मे विरले ही होते होगे, यह वह जानती थी। पति की उस

विचित्र दशा पर उसे बडी दया आई। शाम भी फिर आई थी अत आजीजी करते हुए बोली—

"अब जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ! उठो, खाना ठण्डा हो रहा है।"

"हो जाने दो ठण्डा, सब रख दो उठाकर, मै अभी कुछ नही खाऊँगा। तुम जाओ अपना काम करो, नही तो"।" ठाकुर ने वाक्य पूरा नही किया और गुम्म होकर बैठ गया।

जिद करने से कोई लाभ नही होगा। रूपा इस बात को जानती थी। अत नि शब्द धीरे-धीरे हृदय पर मानो मन भर बोझ लिये हुए वह अन्दर चली गई। उसने भोजन के पदार्थ ढँककर रख दिये और चौका-बासन समेटने मे लग गई। करीब घण्टे भर मे सारे कार्य निपटाकर उसने भीतर कमरे मे ठाकुर का बिस्तर बिछाया और अपना भी थोडा-सा फैलाकर दीवाल से टिककर बैठ गई। ठाकुर बाहर ही बैठा था। यह कोई नई बात नही थी। सदा ही वह बहुत रात बीते तक बरामदे मे बैठा रहता और इक्के-दुक्के राहगीरो को देखते हुए समय व्यतीत करता था। पर आज रूपा चिन्तित और व्यथित थी। ठाकुर की अशान्ति के कारण को जानकर वह उद्विग्नता के मारे छटपटा रही थी। पर कोई उपाय भी तो नही था। उसकी जिद वह जानती थी और इसीलिये वह जान गई थी कि आज वह किसी भी हालत मे भोजन नही करेगा। आर्याओ के लिये ठाकुर के हृदय मे कोमल भाव नही था, किन्तु उसकी आँखो के सामने कोई भूखा सोए, मानवता के नाते यह वह बर्दाश्त नही कर सकता था। कोई भी अभावग्रस्त व्यक्ति उसके दरवाजे पर आकर खाली हाथ लौट आए यह सम्भव नही था। नालायक, निकम्मा, आलसी और इसी तरह की अनेक गालियाँ देकर तथा

गोली से उडा देने की बात कहकर भी वह भूखे को भोजन और नगे को वस्त्र अवश्य देता। साथ ही जब जरूरत हो तब पुन आ मरने के लिये भी कहना नही चूकता।

ऐसे ठाकुर को रूपा अब क्या कहकर समझाती ? दीन-दरिद्रो को देखकर भी जब उसका सूखा हृदय पिघल जाता था तो आज तो उसके द्वार से समाजशिरोमणि और मानव-मात्र के लिये पूज्य साध्वियाँ आकर लौट गयी थी। पति की मानसिक दशा का अनुभव करती हुई, किन्तु उसके ठीक करने का कोई उपाय न पाकर मन ही मन उमडती हुई वह बैठी रह गई और कुछ देर बाद उसे दिन भर के शारीरिक और मानसिक श्रम के कारण झपकी आ गई। □



३९

परिवर्तन



रात्रि अधिक व्यतीत नही हुई थी। मुश्किल से आठ बजे होगे। अचानक ही रसोईघर मे कुछ खडखडाहट की आवाज हुई और रूपा की अलसाई पलके खुल गई। यह समझकर कि बिल्ली चौके मे घुस गई है, वह शीघ्रता से दौडी। सोच रही थी कि ठाकुर ने अभी तक खाना नही खाया है और बिल्ली अगर खाना बिगाड देगी तो वे भूखे रह जाएँगे, किन्तु रसोईघर के दरवाजे पर पहुँचकर वह भौचक्की रह गई। देखा ठाकुर ने एक थाली मे काफी मात्रा मे भोजन परोस रखा है और दूसरी थाली से उसे ढंककर उठाने की तैयारी मे है। रूपा ने अस्फुट शब्दो मे पूछा—

"क्या कर रहे हो यह ?"

"देख तो रही हो खाना लगा रहा हूँ।" ठाकुर ने उदासीनता से जवाब दिया।

"यह तो मैं ही कर देती, मुझे पुकारा क्यो नहीं ? पर इसे ले कहाँ जा रहे हो ? कहाँ जा रहे हो ?" परेशान रूपा की जबान से कई प्रश्न एक साथ निकल पडे।

"जा रहा हूँ जहन्नुम को, और वही इसे भी ले जाऊँगा। जमाना ही वैरी है, मेरा वश चले तो सबको 'शूट' कर दूँ।"

"क्या कह रहे हो यह सब ? भूख लग आई होगी, अब शान्त होकर खाना खालो।" रुपा रुँआसी हो गई।

"हाँ, मैं तो बकवास करता ही रहता हूँ। नशा करता हूँ न ! दुनिया को यही दिखाई देता है और 'हटो रास्ते से' !" कहता हुआ ठाकुर थाली उठाकर चल दिया।

वह कहाँ जा रहा है यह रुपा समझ गई। पर वह कह भी नही पाई कि आर्याएँ रात को खाना तो दूर, जल भी ग्रहण नही कर सकती। बेचारी दिग्मूढ की तरह दरवाजे पर आकर खडी हो गई और अँधेरे मे निगाह फैलाए ताकती रही।

लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ ठाकुर आर्याओ के निवास-स्थान पर पहुँच गया। क्षणिक हिचकिचाहट के बाद उसने गम्भीर स्वर से सडक पर खडे-खडे ही आवाज लगाई।

"महाराज जी !"

सदा सजग और सतर्क रहने वाली अर्चनाकुमारी पुरुप-कठ की आवाज सुनकर चकित हुई और धीरे-धीरे बाहर आकर खण्डहर की किवाड रहित देहरी पर खडी हो गई।

"कौन हो भाई ! क्या बात है।" अधेरा होने के कारण वे ठाकुर को पहचान नही पाई।

"मै हूँ ठाकुर बजरग, सामने ही सडक के उस तरफ रहता हूँ।"

"अर्चनाकुमारी निमिप भर मे पहचान गई और उन्हे ठाकुर के अपने मकान मे स्थान न देने की, तथा आहार के समय दरवाजा बन्द कर लेने की बात स्मरण हो आई। अत्यन्त मधुर स्वर से उन्होंने पूछा—

"क्या बात है ठाकुर ? इस समय कैसे आना हुआ ?"

"जी, मैं खाना लाया हूँ आप लोगों के लिये।"

"खाना ? हमारे लिये खाना लाये हो ?"

"हाँ, नहीं तो क्या करता ? आप लोग मुझसे नाराज हो कर भूखी जो रह गईं।"

"नाराज तो हम जरा भी नहीं हैं ठाकुर !"

"कैसे नहीं हैं, मैं क्या जानता नहीं इस बात को ? नशा करता हूँ तो क्या हुआ, मेरी जानने-समझने की शक्ति थोड़े ही नष्ट हो जाती है। मैंने दरवाजा बन्द कर लिया, तो आर्याएँ बन्दूक की गोली की तरह सीधी यहाँ आ गईं। क्या इस गाँव में मैं ही अकेला बेवकूफ रहता हूँ ? और कोई घर नहीं था क्या यहाँ पर ? यह नाराजी की बात नहीं तो क्या खुश होने की बात है ? अब आप यह भोजन लीजिये। तब मैं चैन से सो सकूँगा।"

"पर हम रात को तो खाती नहीं ठाकुर !"

"रात को नहीं खाती ?" ठाकुर करीब-करीब चीख पड़ा।

"हाँ, और दिन को जो कुछ खाती हैं वह भी अपने-आप लाया हुआ। हमारे स्थान पर कोई कुछ लाकर दे तो वह हम नहीं खा सकते। किन्तु तुम इतने परेशान क्यों हो ठाकुर ? एक वक्त अगर हमने नहीं भी खाया तो क्या हो गया ?"

"आप तो कहती हैं क्या हो गया ? पर जो कुछ हुआ वह सिर्फ मैं ही जानता हूँ। मैं क्या इन्सान नहीं हूँ ? लड़ाई में मनुष्यों को आँखों के सामने मरते देखकर भी दुख नहीं होता था पर आपके इस प्रकार भूखे रह जाने से जी चाहता है फिर जाकर युद्ध के मैदान में सो जाऊँ। पर क्या करूँ भाग्य ही मेरा ऐसा है कि वापिस जा नहीं सकता। और अब ठकुरानी कहती है कि किसी की नौकरी कर लो।

उसकी वात पर ऐसा गुस्सा आता है कि उसे गोली से उडा दूं। भला आप ही वताइये, जीवन-भर देश के लिए लडने वाला सिपाही क्या किसी की नौकरी कर सकता है ?"

अर्चनाकुमारी ठाकुर की निष्कपटता और सरलता से वहुत ही प्रभावित हुई। इस वहादुर व्यक्ति पर उन्हे वडी दया आई। वोली—

"तुम्हारी वात सच है ठाकुर! तुम किसी की गुलामी नही कर सकते, पर ऐसा क्यो न करो कि तुम हमारे साथ रहो। हमे सकटपूर्ण मार्गो से और वियावान जगलो मे से भी गुजरना पडता है। अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। तुम साथ रहकर हमे मार्गदर्शन कराया करना और आपत्तियो से हमारी सहायता करना।"

"ओह! आप क्या सच कह रही है भगवती? मै आपके साथ रह सकता हूँ ?" उसे भगवती की वातो पर विश्वास नही हो रहा था। कुछ करते रहने की भूख से मरा हुआ उसका मन मानो पुन जीवित हो उठा। ऐसी महान् आर्याओ के साथ रहने का, तथा उनकी सहायता करने का कार्य पाकर मारे हर्ष के उसकी आँखो मे आँसू आ गए। वह फिर पूछ वैठा—

"आप सत्य कह रही हैं अम्वे ?"

"मै असत्य भाषण नही करती ठाकुर! तुम चाहो तो सचमुच ही हमारे साथ रह सकते हो।"

"और ठकुरानी का क्या होगा ?" ठाकुर तनिक चिन्ता मे पड गया।

"क्यो, वह भी तो हमारे साथ रहेगी। नही तो उसे अकेली कहाँ छोड जाओगे ?"

"हाँ, यह ठीक रहेगा भगवती! वह यहाँ अकेली कैसे रहेगी? तीसरे व्याह की स्त्री है वह मेरी, औलाद तो एक भी नहीं हुई।"

"औलाद तुम मुझे ही समझ लेना! तुम्हारी उम्र मेरे पिता के बराबर होगी। मैं तुम्हे उनके समान ही समझूँगी।"

सुनकर ठाकुर हर्ष और विस्मय से भर गया। उसे ऐसा लगा मानो अचानक ही वह चिन्तामणि रत्न पा गया हो। कुछ क्षणो तक वह प्रसन्नता के उस सागर मे डूबता-उतरता रहा पर अन्त मे होश आते ही बोला—

"तो भगवती! मैं ठकुरानी को यह शुभ समाचार सुना दूँ जाकर?"

"हाँ, हाँ, पर यह तो बताओ ठाकुर, कि तुमने आज भोजन किया या नहीं?"

"नहीं, नहीं किया भगवती! और आज करूँगा भी नहीं।"

"क्यो? हमारी वजह से तुम भूखे रहोगे तो हमे पाप लगेगा!"

"लगेगा तो लगने दीजिये। मुझे क्या कम पाप लगा है आज? उसका यही प्रायश्चित्त करना चाहिये। मैं तो अब कल आपके भोजन करने के बाद ही करूँगा। जाता हूँ अब, ठकुरानी परेशान हो रही होगी। वह आज मुझसे बहुत नाराज है।"

"सो क्यो?" अर्चनाकुमारी ने मुस्कराते हुए प्रश्न किया।

"तो आप नहीं जानती इस बात को? बचपन के संस्कार, और धन के नशे मे आकर आज मैंने आपका बहुत अपमान किया है भगवती। इसी से वह नाराज हो गई है। कहती तो कुछ नहीं पर मैं जान जाता हूँ।"

"तो ठाकुर तुम नशा भी करते हो?"

"हाँ करता हूँ, पर आप चिन्ता न करे। मैं आज से ही उमे गोली मार दूँगा । और नशा नही करता तो क्या करता आप ही वताइये ? मैं जिन्दगी भर फौज मे रहा। तव दिन-रात व्यस्त रहता था अत कोई लत ही नही पड पाई। मगर सरकार ने मेरी शक्ति न देखकर उम्र के कारण मेरी पेशन करदी। मेरे जैसा काम-काजी आदमी फिर क्या करता ? कैसे समय विताता वस, इसी कारण थोडा समय इस कम्बख्त के सहारे गुजारने लगा। पर अव तो मैं वेकार नही रहूँगा। आपकी सेवा मे मेरा वक्त आनन्द से गुजर जाएगा। फिर इस ससुरी को याद ही क्यो करूँगा ?"

"पर ठाकुर एक वात और है। हमारे साथ तुम्हे भी वहुत कष्ट उठाने पडेंगे। कम से कम मे गुजर करना, वक्त वेवक्त खाना, पैदल चलना ।"

"आप कह क्या रही हैं भगवती ?" अर्चनाकुमारी की वात को वीच मे ही काटकर ठाकुर उत्तेजित होकर वोल पडा—"लडाई के मैदान मे क्या मेरे लिए हर वक्त रथ तैयार रहता था चलने के लिए ? या कि दोनो समय मेरे लिए छत्तीस व्यञ्जनो का थाल परोसा जाता था ? क्या सामान होता था उस समय मेरे पास ? कधे पर एक थैला ही तो। फिर क्या मैं आपकी वात से भयभीत हो जाऊँगा ? कभी नहीं, मैं ठाकुर वजरग हूँ। मुसीवतो से कभी घवराया नही, और न ही घवराऊँगा। अच्छा अव जाता हूँ। प्रात काल आपके दर्शन करूँगा। ठकुरानी मेरी जान को रो रही होगी। उससे कहूँगा, तैयारी करो, अव ठाकुर को उसकी मनपसन्द नौकरी मिल गई।" कहते हुए ठाकुर ने थाली उठाई और भगवती को नमस्कार करके चल दिया।

घर जाकर देखा कि रूपा किवाड की चौखट थामे उसी प्रकार

खडी है, जैसी वह छोड गया था। उत्साह पूर्ण हृदय से ठाकुर ने आते ही उससे कहा—

"अरी, भागवान! अब नाराज क्यो हो? खुशियाँ मनाओ! आज ऐसा समाचार तुम्हे सुनाऊँगा जैसा कभी जिन्दगी मे भी नही सुना होगा।"

रूपा ने कोई जवाब नही दिया। उसका हृदय आतंक से भरा हुआ था। सोच रही थी—'आर्याओ ने भोजन तो ग्रहण किया ही नही होगा, और उसके कारण ठाकुर उन्हे न जाने क्या-क्या कह आया होगा, न जाने कितना अपमान किया होगा।' नाना प्रकार की आशंकाओ के मारे उसका चित्त उद्विग्न हो रहा था, और जब ठाकुर ने आकर इस प्रकार अपनी प्रसन्नता जाहिर की, तब तो उसे अपनी कल्पना पर पूरा विश्वास हो गया। धडकते हुए हृदय मे वह किसी अशुभ बात को सुनने की प्रतीक्षा करने लगी। किन्तु जब उसने ध्यान से ठाकुर के चेहरे को देखा तो उसे, उसके सहज और स्निग्ध चेहरे को देखकर अपनी अशुभ आशंकाए लोप होती दिखाई दी। ठाकुर ने आते ही रूपा के कंधे पर हाथ रख दिया और बोला—

"चलो, ठकुरानी! अब झटपट तैयारी करना शुरू करो।"

"किस बात की?" रूपा समझ न सकी।

"अरे, किस बात की क्या? यहाँ से चलने की।"

रूपा फिर परेशान हो गई। सोचने लगी—'ठाकुर ने आज गहरी छान ली है शायद, उसी के नशे मे बेतुकी बाते कर रहे हैं।' तनिक उदास होकर कहा—

"अब सो जाओ ठाकुर! तुम्हारी तबियत ठीक नही है।"

"मेरी तबियत मालूम आता ठीक है। यह मत समझो कि मैं नशे मे बोल रहा हूँ। हमे सवेरे ही यहाँ से चल देना है।"

"पर कहाँ ?"

"लो, यह मैं क्या जानूं कि कहां चलना है ? मैं तब भी यह नही जानता, फिर तुम्हे कैसे पता सकता है ? कोई देवता हूँ मैं ?"

"तुम्हारे हाथ जोडती हूँ ठाकुर ! मुझे परेशान मत करो। कब चलना है, कहाँ चलना है, किसके साथ चलना है और क्या-क्या सामान लेना है, यह सब जाने बिना मैं क्या तैयारी करूँ ?" रूपा को तनिक भी विश्वास नही हो रहा था ठाकुर का।

"अरे, देवी ! हमे भगवती के साथ चलना है। तुम कहती हो न कि नौकरी करलो, नौकरी करलो। तो अब मैं नौकरी पा गया हूँ उनकी। उन्ही की सेवा मे जिन्दगी बिताऊँगा। सारी दुनिया झख मारेगी।"

"पर वे साधु है, कहाँ से देगी तुम्हे ?"

ठाकुर नाराज हो गया और बीच मे बात काट कर बोल पडा—

"तुमको कब समझ आएगी ठकुरानी ! मैं क्या उनसे तनख्वाह लूंगा ? फिर यह जो पेशन मिलती है उसका क्या होगा ? कौन-सी औलाद पैदा की है तुमने, जिसके लिए जोडूंगा ? निठल्ला बैठा रहता था, अब भगवती के सत्सग मे रहकर शाति, सतोप और उनकी सेवा मे दिन बिताऊँगा।"

"पर तुम रह सकोगे उनके साथ ? न जाने क्या-क्या तकलीफे उठानी पडेगी। कही ऐसा न हो कि चार दिन मे ही भाग आओ।"

ठाकुर ने रूपा की बात सुनकर अपने अट्टहास से घर भर दिया बोला—

भगवान ने सचमुच ही स्त्रियो को मर्दो की परीक्षा लेने के लिए दुनिया मे भेजा है। चालीस बरस सिपाही रहकर जगलो,

पहाडो और घाटियो मे न जाने कितना समय विना सोये और विना खाए मुसीबतो के बीच मे बिता आया हूँ। पर उन सारी परीक्षाओ मे पास होकर भी ठकुरानी! मैं तुम्हारी परीक्षा मे पास नही हो सका। बिचारे सुदामा को तभी तो कहना पडा था—

सिच्छक हो सिगरे जग को तिय,
ताको कहा अब देती है सिच्छा।
जो न हिये हरि के पद पकज,
बार हजार ले देख परिच्छा।

"तो ठकुरानी! फिर ऐसा ही करो। मेरी जैसे चाहो पूरी परीक्षा ले लो। अगर पास हो जाऊँ तो तैयारी कर लेना चलने की, क्योकि कल ही तो चलना है।"

रूपा विचारी, ठाकुर के बात करने के ढग से अत्यन्त शर्मिन्दा हो गई, पर साथ ही उसे विश्वास हो गया कि वह सिर्फ नशे की झोक मे नही, पर सचमुच ही चलने के लिए कह रहा है? सकुचित होते हुए वह बोली—

"चलो हटो! कैसी बाते कर रहे हो? इस तरह बोला जाता है कही? बताओ, क्या-क्या तैयारी करनी है? क्या-क्या साथ मे लेना है?"

"ओ हो, तुम तो ऐसे पूछ रही हो, जैसे हमारा सामान मोटर-गाडी मे जाएगा। अरे दो पोटलियाँ बाँध लो। दो जोडी कपडे, दो चादरें, एक दो मेरी किताबें, और कुछ रुपये-पैसे। बस, और क्या?"

"और मिनवट्टा? उसे भी रख दूँ तुम्हारी पोटली मे?" रूपा ने प्रसन्नता से चुटकी ली।

"अरी बावली! क्या साध्वियो की सगत मे रहकर मैं नशा

करूँगा । गोली मारो उसे आज से ही । समय काटने के लिए मैं नशा करता था । अब उसके लिए समय निकालने की जरूरत नहीं ।"

"अच्छा तो अब तुम खाना खालो, भूखे हो।"

"खाना तो अब मैं अपने उन दुश्मनों के खाने के बाद ही कल खाऊँगा। हाँ, तुम खालो जाकर ।" कहता हुआ ठाकुर सरलता से हँस पड़ा।

रूपा स्निग्ध नेत्रो से पति को देखने लगी। मानो मूक भाषा मे कह रही हो, मैंने कभी तुमसे पहले खाया भी है ? और कुछ क्षणो बाद ही दोनो प्राणी उल्लसित हृदय से अपने-अपने बिछौने पर जा लेटे। प्रात काल होते न होते घर मे ताला लगाकर एक-एक पोटली लिये हुए भगवती के समक्ष जा पहुँचे।

अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी मे ही थी। ठीक उसी समय ठाकुर-दम्पती को देखकर प्रसन्न हुई ।

एक ही रात मे ठाकुर का यह कायाकल्प देखकर उनका मानस विस्मय से ओत-प्रोत हो गया। अत्यन्त स्नेहपूर्वक उन्होने उस युगल की अभ्यर्थना की और पाँच प्राणियो का वह छोटा-सा काफिला आगे बढ गया। □

पहाडो और घाटियो मे न जाने कितना समय विना सोये और विना खाए मुसीबतो के बीच मे बिता आया हूँ। पर उन सारी परीक्षाओ मे पास होकर भी ठकुरानी ! मैं तुम्हारी परीक्षा मे पास नही हो सका। विचारे सुदामा को तभी तो कहना पडा था—

सिच्छक हो सिगरे जग को तिय,
ताको कहा अव देती है सिच्छा।
जो न हिये हरि के पद पकज,
वार हजार ले देख परिच्छा।

"तो ठकुरानी ! फिर ऐसा ही करो। मेरी जैसे चाहो पूरी परीक्षा ले लो। अगर पास हो जाऊँ तो तैयारी कर लेना चलने की, क्योकि कल ही तो चलना है।"

रूपा विचारी, ठाकुर के बात करने के ढग मे अत्यन्त शर्मिन्दा हो गई, पर साथ ही उसे विश्वास हो गया कि वह सिर्फ नशे की झोक मे नही, पर सचमुच ही चलने के लिए कह रहा है ? सकुचित होते हुए वह बोली—

"चलो हटो ! कैसी बाते कर रहे हो ? इस तरह बोला जाता है कही ? बताओ, क्या-क्या तैयारी करनी है ? क्या-क्या साथ मे लेना है ?"

"ओ हो, तुम तो ऐसे पूछ रही हो, जैसे हमारा सामान मोटर-गाडी मे जाएगा। अरे दो पोटलियाँ बाँध लो। दो जोडी कपडे, दो चादरें, एक दो मेरी किताबे, और कुछ रुपये-पैसे। बस, और क्या ?"

"और सिलबट्टा ? उसे भी रख दू तुम्हारी पोटली मे ?" रूपा ने प्रसन्नता से चुटकी ली।

"अरी बावली ! क्या साधियो की सगत मे रहकर मैं नशा

करूँगा । गोली मारो उसे आज से ही । समय काटने के लिए मैं नशा करता था । अब उसके लिए समय निकालने की जरूरत नहीं ।"

"अच्छा तो अब तुम खाना खालो, भूखे हो ।"

"खाना तो अब मैं अपने उन दुश्मनो के खाने के बाद ही कल खाऊँगा । हाँ, तुम खालो जाकर !" कहता हुआ ठाकुर सरलता से हँस पडा ।

रूपा स्निग्ध नेत्रो से पति को देखने लगी । मानो मूक भाषा मे कह रही हो, मैंने कभी तुमसे पहले खाया भी है ? और कुछ क्षणो बाद ही दोनो प्राणी उल्लसित हृदय से अपने-अपने बिछौने पर जा लेटे । प्रात काल होते न होते घर मे ताला लगाकर एक-एक पोटली लिये हुए भगवती के समक्ष जा पहुँचे ।

अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी मे ही थी । ठीक उसी समय ठाकुर-दम्पती को देखकर प्रसन्न हुई ।

एक ही रात मे ठाकुर का यह कायाकल्प देखकर उनका मानस विस्मय से ओत-प्रोत हो गया । अत्यन्त स्नेहपूर्वक उन्होने उस युगल की अभ्यर्थना की और पाँच प्राणियो का वह छोटा-सा काफिला आगे बढ गया । □

४०

चोरी करने आया था



ठाकुर बजरग और ठकुरानी रूपा का साथ होने से मार्ग सुगमतापूर्वक कटने लगा। आत्मा-परमात्मा, जीवन और जगत तथा सार और असार के रहस्य को सहज ही समझा देने वाली परम विदुषी आर्या अर्चनाकुमारी बालोचित सरलता से ठाकुर मे युद्धो की लोमहर्षिणी घटनाओ के विषय मे पूछती रही और ठाकुर अपने फौजी जीवन के अनुभवो को एक-एक करके सुनाता चला गया।

चलते-चलते दोपहर होने को आया और उस दिन जयपुर पहुचना सम्भव नही रहा। अत मार्ग मे स्थित एक छोटे से गाँव मे ही रात्रि को ठहरने का विचार किया गया। ठाकुर ने घर-घर जाकर ग्राम-निवासियो को आर्याओ का परिचय दिया और अपने थोड़े-बहुत ज्ञान से आहार-पानी की शुद्धता के विषय मे बताया। उसने निश्चय कर लिया था कि अपने पिछले दिनो के पाप का वह इसी प्रकार जीवन भर प्रायश्चित्त करेगा।

दिन बीता और रात्रि ने अपनी काली चादर फैलानी शुरू की। जहाँ भगवती ठहरी थी वह स्थान लक्ष्मीनारायण के मन्दिर से लगा हुआ और काफी बडा था। दो कमरे, बरामदा, उसके बाद आँगन और आँगन के अन्त मे बडा सा दरवाजा। सूर्यास्त के पश्चात् आर्याओ के भीतरी भाग की ओर पुरुष को प्रवेश निषिद्ध होने के

कारण ठाकुर ने वडे दरवाजे के पास ही वने हुए एक छोटे से चवूतरे पर अपने सोने का इन्तजाम किया और ठकुरानी अन्दर भगवती के कमरे के पास सो गई।

रात्रि ज्यो-ज्यो अधिक व्यतीत होती गई, निस्तव्धता भी वढती गई। ठाकुर सोया था पर उसकी निद्रा एक सिपाही की निद्रा थी। तनिक सी आहट होते ही वह चौकन्ना हो उठता। करीव एक वजे का समय होगा। अचानक ही ठाकुर को किसी मनुष्य के पद-चाप सुनाई दिये। तुरन्त ही उसके कान खडे हो गये। धीमे-धीमे पद-ध्वनि समीप आई। ठाकुर को लगा कि आगत व्यक्ति के पैर कुछ लडखडा रहे हैं। उस समय तक वह उठकर वैठ चुका था और अंधेरे मे आँखें फाडकर देखने की कोशिश कर रहा था। कुछ क्षण वाद ठाकुर ने देखा कि एक भीमकाय व्यक्ति की आकृति उसके सामने है।

'कौन हो तुम ? क्या चाहिये ?" ठाकुर ने अपनी रोवीली आवाज से पूछा।

"कुछ नही जरा पानी पिलादो।" उस पहाड जैसे व्यक्ति ने धीरे से कहा। लगता था कि उसके मुँह से शव्द वडी कठिनाई से निकल रहे हैं।

क्रोध-पूर्ण हुँकार करते हुए ठाकुर ने समीप रखा पानी का लोटा उठाया और उस व्यक्ति को वनाई हुई अजुलि पर डालना शुरू किया। घवराये हुए व्यक्ति ने दो-चार घूंट पानी पिया और विना कुछ कहे ही मुडकर चल दिया। ठाकुर उसे जाते हुए देखता रहा, पर उसे यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति दस-वीस कदम लडखडाता हुआ चला पर उसके वाद उसके कदमो मे तेजी

आ गई। ठाकुर ने इसे पानी का प्रभाव समझा और उस पर विशेष ध्यान न देकर लेट गया।

पर उसके भाग्य मे उस दिन शायद सोना नही लिखा था। तीन बजते न बजते फिर उसे किसी के कदमो की आहट आई। निस्तब्ध रात्रि मे ठाकुर ने भली-भाँति जाना कि आने वाला व्यक्ति दूर से तो अपनी स्वाभाविक चाल से चलता आया है किन्तु कुछ पास आते ही उसके पैर लडखडाने से लगे है। जैसे उसे कुछ दिखाई ही न देता हो। पद-चाप समीप आती जा रही थी। ठाकुर उत्तेजना के वशीभूत हो, उठकर गरज उठा—

"कौन है ? खबरदार एक कदम भी आगे बढा तो गोली मार दूँगा।" ठाकुर सोच रहा था—'काश! आज उसके पास बन्दूक और उसमे भरी हुई गोली होती।'

आने वाला व्यक्ति रुक गया और दयनीयता से बोला—'थोडा पानी और ।"

"अच्छा तो तुम वही नालायक हो? प्यास मिटी नही तुम्हारी? तो जाकर किसी कुँए-तालाब मे क्यो नही कूद पडे? बार-बार यही क्यो आकर मरते हो?" ठाकुर का क्रोध सीमा लाँघ गया। किसी तरह अपने को जब्त करके बोला—

"चलो! उठाओ वह लोटा और पियो पानी। तुम्हारा नौकर नहीं हूँ मैं, जो रातभर हाथ मे लोटा लिये बैठा रहूँ और तुम्हारे जैसो को पानी पिलाता रहूँ। ढेर कर देता यही, पर राजपूत पानी पीने आये हुए को मारता नहीं। खडे क्यो हो? लोटा उठाकर पानी पीओ और निकलो यहाँ से।" ठाकुर इतनी बातें कह गया पर यह देखकर हैरान हो गया कि उस भीमकाय और बडी-बडी आँखो

वाले व्यक्ति ने लोटा उठाने का प्रयत्न ही नही किया। मारे क्रोध के उसके मुँह से गालियाँ निकल पडी—

"साले, हरामी के वच्चे! तू क्या कही का नवाव है, जो अपने हाथ से पानी भी नही पी सकता ?"

"पर कहाँ है लोटा ?" वह व्यक्ति धीमे स्वर से वोला—

"वह रखा तो है खम्भे के पास। क्या तुझे दिखाई नही देता! रात-रात भर घूमने के लिये आँखे है पर पानी का लोटा उठाते नानी मरती है। चलो मैं ही पिलाता हूँ शहजादे को पानी! नही तो तौहीन हो जाएगी इनकी।" कहते हुए ठाकुर ने पुन लोटा उठाया और उस सहमे हुए व्यक्ति को पानी पिलाना शुरू किया। पूरा लोटा खाली हो जाने के वाद उस व्यक्ति ने एक गहरी साँस ली और धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

ठाकुर का मन अशात हो गया था, और आशका के मारे उसने पिछली रात्रि मे विलकुल न सोने का निश्चय किया। वैठा-वैठा वह अपनी रुद्राक्ष की माला के मनके सरकाता हुआ राम-नाम जपने लगा।

किसी तरह वह रात्रि व्यतीत हुई और प्रात काल की मधुर वयार आकर उसके उत्तेजित मन को शान्त करने लगी। ज्योही नभचर पक्षियो की चहचाहट कानो मे पडी, वह अँगडाई लेकर उठ खडा हुआ। किन्तु उसी क्षण मारे विस्मय के हतवुद्धि हो गया, यह देखकर कि रात को दो वार पानी पीने के वहाने आने वाला वह वृहत्काय व्यक्ति उसके समक्ष खडा है।

ठाकुर उछलकर दो कदम आगे वढ आया और करीव-करीव चीख कर वोला—

"तो ... तुम हो वह महापुरुष ? जो एक ही रात मे तीसरी वार दर्शन देने आये हो।"

"मुझे क्षमा करो।" वह व्यक्ति बोला।

"क्षमा ? ... क्षमा किस वात की ·· ? और वह भी मुझसे ? बडे आश्चर्य की वात है, क्या ठाकुर बजरंग एक रात मे ही ऐसा महापुरुष हो गया कि लोग उससे आकर क्षमा-याचना करे।"

"क्या वात है ठाकुर ? किससे झगड रहे हो सुबह-सुबह ?" सहसा ही यह वीणा-विनन्दित मधुर स्वर दोनो व्यक्तियो के कानो से टकराए, और वे पलटकर उस मृदु स्वर-लहरी की दिशा की ओर देखने लगे।

शीतल जल की बूँदें डालते ही जिस प्रकार उफनता दूध शात हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ठाकुर का क्रोध तेजी से उतरने लगा। चेहरे का तनाव मिटकर अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करने लगा।

किन्तु आगन्तुक व्यक्ति की आँखे विस्मय से फैल गई। वह विस्फारित दृष्टि से दरवाजे के बीच मे खडी उस आकृति की ओर अपलक देखता रहा। उसे लगा, मानो शुभ्र परिधान मे आवेष्टित साक्षात् हंसवाहिनी सरस्वती ही उसको दर्शन देने के लिये मृत्युलोक मे आ गई है। वैसी सौम्यता, सरलता और दिव्यता पूर्ण छवि तो उसके जीवन मे कभी दृष्टिगोचर हुई ही नहीं थी। मारे आश्चर्य और हर्ष के वह जड़वत् हो गया और मन्त्र से बंधे सर्प की भाँति बिना हिले-डुले उस पवित्र सौन्दर्य को आँखो मे अंकित करता रहा। पर शीघ्र ही उसकी वह दिग्मूढ दशा बदली, जबकि उसने पुन उस पवित्रता की प्रतिमा के होंठ हिलते हुए देखे और उनसे फिर कुछ शब्द झंकृत हुए—

"क्या हुआ है ठाकुर ! कौन है यह ?"

"यह आपके मेहमान है भगवती ! रात भर मे तीसरी वार दर्शन देने आये हे।"

"और तुम मेहमान का इस प्रकार स्वागत कर रहे हो ? गुस्सा तो वडा जवर्दस्त है तुम्हारा ! कहती हुई भगवती हँस पडी और नवागन्तुक की ओर उन्मुख होकर वोली—

"आओ भाई ! डरो नही, कौन हो तुम ? किसलिये आये थे रात को ?"

"जी, मैं चोर हूँ। चोरी करने के लिये आया था।"

"चोरी करने आये थे ? फिर कुछ चुराया नही ?"

"चुराता कैसे ? वजरग ठाकुर क्या मर गया ?" ठाकुर का पारा एक डिगरी फिर चढ गया।

"नही भगवती ! ठाकुर से मै नही डरता। आज तक ऐसे कितने ही ठाकुरो को मैं सदा के लिये सुला चुका हूँ। किन्तु आपके प्रभाव से मैं डर गया।"

"वह कैसे ? मैं तो अन्दर थी।"

"हाँ आप अन्दर थी, किन्तु आपका प्रताप वाहर था। उसी के कारण मैं जब-जव भी आया कि अजीव तरह की घवराहट और भय मेरे दिल और दिमाग पर छा गये। चोरी करना चाहकर भी मैं कुछ नही कर सका। और तव मुझे विश्वास हो गया कि निश्चय ही किसी पवित्र आत्मा का यहाँ पर निवास है। उसी के दर्शन करने मैं सुवह-सुवह चला आया और मेरा अनुमान असत्य नही निकला। आप जैसी महान् आत्मा के मुझे दर्शन हो गये।" कहता हुआ वह व्यक्ति आगे वढा, भगवती अर्चनाकुमारी के समक्ष जमीन पर घुटने टेक कर वैठ गया। वोला—

"मुझे क्षमा करे भगवती ! मैं चोरी जैसा हीन काम करता आया हूँ। पर अब आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से जीवन पर्यन्त यह काम नही करूँगा। मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने वचनो का पालन कर सकूँ।"

"ईश्वर तुम्हे शक्ति प्रदान करे।" कहते हुये भगवती ने अपना दाहिना हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया और चेहरे पर वही अनिर्वचनीय सौम्यता लिये हुए मथर गति से चल दी।

उस व्यक्ति ने भगवती के पृष्ठभाग की ओर देखते हुए पुन दोनो हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया और फिर ठाकुर की तरफ मुडकर बोला—

"अच्छा ठाकुर ! अब मैं चला, तुम भी मुझे क्षमा करो !"

ठाकुर एकदम कुछ बोल नही सका पर उसने गद्गद् होकर उस व्यक्ति के दोनो हाथ अपने हाथो मे थाम लिये। कुछ क्षणो बाद उसने कहा—

"अपना नाम बताते जाओ दोस्त !"

"मेरा नाम भीमसिंह है, शरीर के ठीक अनुरूप।"

दोनो हँस पडे और शीघ्र ही भीमसिंह बिना इधर-उधर दृष्टिपात किये, लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वहाँ से चला गया।



४१

आत्म-शक्ति



भगवती अर्चनाकुमारी ने जिस समय जयपुर मे प्रवेश किया, जनमेदिनी उमड पडी। दर्शनार्थियो का ताता लग जाने के कारण उन्हे उपाश्रय तक पहुँचना कठिन हो गया। उनका विचार जयपुर मे सिर्फ दो ही दिन ठहरने का था, किन्तु उनके प्रवचनो से मुग्ध हुई जनता ने किसी भी तरह उन्हे जाने नही दिया। परिणाम यह हुआ कि पूरा एक सप्ताह उन्हे वहाँ ठहरना पडा। इसी बीच उनका स्वास्थ्य कुछ खराव हो गया और डाक्टरो ने उपचार के अलावा कुछ दिन और भी वही विश्राम करने की राय दी। किन्तु अर्चनाकुमारी ने सप्ताह के अन्त मे अपनी वडी शिष्या मूर्यकुमारी को वुलाया और अगले दिन प्रस्थान करने के लिए तैयारी करने का आदेश दिया। सूर्यकुमारी तनिक चिंतित होकर वोली—

"भगवती ! कुछ दिन और यहाँ ठहरे तो क्या हर्ज है ?"

"क्यो ? क्या जयपुर से कुछ मोह हो गया है सूर्या ?" अर्चनाकुमारी मुस्कराई।

"यह वात नही है भगवती ! आपका स्वास्थ्य कुछ नरम है, इसलिए सोचती हूँ, कुछ दिन और ठहर जाते। अन्यथा मार्ग मे आपको तकलीफ होगी।"

"तकलीफ किस वात की सूर्या ? और फिर तकलीफें क्या शरीर

के बल पर झेली जा सकती है ? उसके लिये आत्मा का बल चाहिये। मेरे उस बल मे कमी नही है। समझी ?"

"जी !" कहकर सूर्यकुमारी चुप हो गई। वह जानती थी कि भगवती के आदेश के विरुद्ध कुछ भी कहा नही जा सकता। उनका निश्चय पत्थर की लकीर होता है। स्वयं परमात्मा भी आकर उन्हे अपने निश्चय से नही डिगा सकता।

सूर्यकुमारी को चुप देखकर भगवती ने पुन अपनी बात दोहराई—

"तुम तनिक भी चिन्ता मत करो सूर्या ! जो कुछ होगा शुभ ही होगा। जाओ कनक को भी तैयारी करने के लिए कह दो। और देखो, ठाकुर बजरग और रूपा को भी यह बता देना कि हमे कल यहाँ से प्रस्थान करना है।"

"पर भगवती ! इतनी शीघ्रता ।"

"शीघ्रता तो करनी ही चाहिए सूर्या ! मै जल्दी से जल्दी उन हिमाचल प्रदेशो मे पहुँचना चाहती हूँ, जहाँ कभी साधु-साध्वी जाने का कष्ट नही करते। फलस्वरूप वहाँ के जैन व्यक्ति भी भूल चुके हैं कि हम जैन है। बाल्यकाल से ही अनार्यों की तरह रहने के कारण वे नही जानते कि आर्यत्व क्या है, जैनत्व क्या है, हमारा धर्म क्या है और हमारे गुरु कौन है ? उन्हे यह नही मालूम कि जैनधर्म के सिद्धान्त कितने महान है और उनका पालन करके आत्मा को किस प्रकार ऊँचा उठाया जा सकता है ?

हमारी वहीं तो अधिक आवश्यकता है सूर्या ! जहाँ ज्ञान के अभाव मे और गरीबी के आधिक्य के कारण जैन कहलाने वाले व्यक्ति भी थोड़े से पैसो के लोभ मे अपने धर्म को बेच डालते है। मांस-मदिरा का व्यवसाय करके अपनी आत्मा को सदा के लिए पतन के

गर्त मे धकेल देते है। इसमे दोष उनका नही, दोष हमारा ही है कि हम जैनियो के गुरु कहलाकर भी अपने अनुयायियो को धर्म की महानता नही समझाते। उनके हृदय मे धर्म का बीज-वपन नहीं करते और उन्हे धर्म की पहचान नही कराते। अगर हम भी जयपुर और दिल्ली जैसे शहरो और गांवो मे ही विचरण करते रहे, जहां सैकड़ो अन्य साधु-साध्वियां है तो हमारा साधुत्व निष्क्रिय हो जाएगा, और हमारा गुरु-पद प्राप्त करना वृथा है। हमे वही जाना चाहिए जहां हमारी आवश्यकता है। हमारा कर्तव्य तो यह कहता है कि हम ससार के प्रत्येक प्राणी को धर्म का बोध कराएँ। अगर इतना न कर सके तो कम से कम जैन कहलाने वाले प्राणियो मे तो धर्म-दीप प्रज्व-लित करें ही।"

सूर्यकुमारी भगवती के कथन के प्रत्युत्तर मे एक शब्द भी न कहकर मौन सम्मति जताती हुई वहां से नि शब्द उठ खडी हुई और जाकर प्रस्थान की तैयारी मे लग गई।

प्रात कालीन सूर्यरश्मियो के पृथ्वी पर गिरते ही, अर्चनाकुमारी ने जयपुर से प्रस्थान करने के लिए कदम उठाया। किन्तु उपाश्रय से बाहर आते ही उनकी दृष्टि तांगे से उतरती हुई जानकी पर पडी।

अर्चनाकुमारी उसे देखकर स्तब्ध रह गई। उन्होंने कल्पना भी नही की थी कि दो मास के अल्पकाल मे ही जानकी इतनी कृश हो जायेगी। यद्यपि उसका गौर-वर्ण चेहरा पीला पडकर सुवर्ण के समान सुन्दर लग रहा था, किन्तु शारीरिक दुर्बलता अत्यधिक बढ गई थी। अपने भाई ज्योतिप्रकाश का सहारा लेकर वह तांगे से उतरी और धीरे-धीरे उनके समीप आई। उद्विग्न होकर उन्होने पूछा—

"तुम्हे क्या हुआ जानकी।"

जानकी सिर्फ मुस्कराई, बोली नही। उत्तर ज्योति-प्रकाश ने दिया—दीदी तभी से रुग्ण है भगवती! जब मे आपने प्रस्थान किया। इसका हृदय बहुत कमजोर हो गया है। कभी-कभी तो 'ब्लडप्रेसर' अत्यधिक गिर जाने से हालत बहुत खराब हो जाती है। इलाज बराबर चल रहा है पर स्वास्थ्य है कि सुधरने मे ही नही आता। डॉक्टरो का कहना है कि इन्हे दवाइयो की अपेक्षा पूर्ण विश्राम और प्रसन्न रहने की अधिक आवश्यकता है। इसलिये बाबूजी ने इन्हे कुछ दिन आपके पास रखने का विचार किया है। जलवायु का परिवर्तन भी हो जायेगा। किन्तु आप आज और अभी ही विहार कर रही हैं, तो मैं इन्हे वापिस लिये जाता हूँ।"

"नही, नही वापिस ले जाने की आवश्यकता नही है ज्योति बाबू! तुम जानकी को यही छोड जाओ। मैं अब जयपुर से आज नही, परसो प्रस्थान करूँगी। जानकी मेरे साथ ही चलेगी।"

"आपके साथ दीदी कैसे चलेंगी भगवती?"

"क्यो, पैदल चलेगी और कैसे?" अर्चनाकुमारी ने हँसते हुए कहा।

"पर यह बहुत कमजोर है, अभी तो बिना सहारे के अधिक नही चल पाती।"

"अरे भाई! नही चल पाती तो क्या हुआ? दो दिन मे ठीक होकर चलेगी, और अवश्य चलेगी। मेरी बात पर विश्वास नही होता शायद?"

"धृष्टता के लिए क्षमा करें भगवती!" ज्योतिप्रकाश ने अप्रतिभ होते हुए कहा—"मुझे आपके वचनो पर पूर्ण विश्वास है।"

"तो ठीक है! अब तुम निश्चिंत होकर कुछ विश्राम करो। सफर करके आए हो।"

"जो आज्ञा" कहता हुआ ज्योतिप्रकाश वहाँ से चला गया।

अर्चचनाकुमारी रवाना होने के लिए तैयार खडी हुई अपनी शिष्याओ की ओर उन्मुख होकर बोली—

"सूर्यकुमारी ! अन्दर चलो। हम आज नही, परसो यहाँ से रवाना होगे।"

दोनो शिष्याएँ चुपचाप खडी थी। लगता था कि रवाना होने के लिये तैयार होकर रुक जाना उन्हे अच्छा नही लग रहा था। कनक छोटी थी, कुछ बोली नही, किन्तु सूर्यकुमारी ने अस्फुट स्वर मे तनिक विरोध किया—

"भगवती अब तैयारी कर लेने के वाद ।"

"अरे साधुओ की तैयारी क्या ? कोई ट्रक विस्तर है हमारे पास ? कहते हैं न कि 'विच्छू का डेरा उसकी पीठ पर।" हमारा सामान भी तो हमारी पीठ और कन्धो पर ही है। रख दो उतार कर।"

आगे कुछ भी न कहकर सूर्यकुमारी कनककुमारी के साथ अन्दर चली गई और भगवती ने अपने हाथो मे लिये हुए पात्र तथा कन्धे पर लटके हुए थैले को नीचे रख दिया। पीठ पर बन्धे हुए वस्त्रो को खोल डाला। उसके वाद गुमसुम किन्तु शान्त वैठी हुई जानकी से पूछा—

"क्या वात है जानकी ? तुम्हारा स्वास्थ्य इतना कैसे गिर गया ?"

"यह भी कोई प्रश्न है भगवती ?"

"वाह प्रश्न क्यो नही है ?" अर्चनाकुमारी साश्चर्य वोली।

"इसलिए कि आप मेरे स्वास्थ्य खराब होने के कारण को जानती है।" प्रच्छन्न मुस्कुराहट के साथ जानकी ने उत्तर दिया।

"लो और सुनो, मैं क्या जानूं इस बात को ?"

"अच्छी बात है, आप नही जानती तो न सही। जानने की जरूरत भी नही है आपको।"

"क्यो नही है जरूरत ?"

"जानकर भी जो व्यक्ति अनजान बना रहना चाहे उसे बताने से क्या लाभ ?" जानकी रूठ गई।

"अरे, तुम्हारा स्वभाव तो जैसा का जैसा ही है अभी तक। गुस्सा करने की आदत मिटी नही तुम्हारी ?"

"क्या बीमार पड जाने से स्वभाव बदल जाता है भगवती ?"

"मैं क्या यह कह रही हूँ ? तुम तो मेरी हर बात पकड लेती हो।"

"पर आपको तो पकड कर नही रख पाती। आप तो मुझे छोड-छोडकर चल ही देती है।" कहती हुई जानकी हँस पडी। लगता था कि उसकी आधी बीमारी भगवती के समीप आकर ठीक हो गई है।

जानकी को अस्वस्थ देखकर अर्चनाकुमारी चिंतित हो रही थी पर रुग्णता के बावजूद भी उसे प्रफुल्लतापूर्वक बाते करते देखकर, अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सस्नेह बोली—

"परसो हमारे साथ चलोगी न तुम ?"

"क्या मैं चल सकूँगी भगवती ! कही ऐसा न हो कि मेरी वजह से आपका जाना भी स्थगित हो जाय। इससे तो अच्छा यही

होता कि आप आज ही प्रस्थान कर देती। मेरा क्या ? वापिस लौट जाती।"

"जानकी ! लगता है, तुम्हारा मन बडा कायर है। वीरो के कोप मे कही भी असम्भव शब्द नही होता। क्या तुम्हे अपनी आत्म-शक्ति पर विश्वास नही है ? दुर्बल वह व्यक्ति नही होता जो शरीर से दुर्बल होता है, वरन् वह होता है जो अपने आपको दुर्बल समझता है। आत्म-विश्वास के द्वारा तो दुर्गम से दुर्गम पथ भी सुगम हो जाता है। यह मत भूलो कि समस्त मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ हमारे आत्म-विश्वास पर अवलम्बित हैं। प्रत्येक कार्य मे सफलता प्राप्त करने का मुख्य रहस्य आत्म-विश्वास ही है। जिसे अपनी इस शक्ति पर विश्वास नही है वह व्यक्ति कितना ही हृष्ट-पुष्ट क्यो न हो, मेरी दृष्टि मे सबसे कमजोर है।"

"इसलिये आत्मिक कमजोरी का त्याग कर दो जानकी, और हृदय मे इस विश्वास को जगाओ कि मैं तन और मन से पूर्ण स्वस्थ हूँ। यह सोचो कि मैं प्रतिपल स्वस्थ हो रही हूँ। मैं निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि तुम्हारा यह प्रयत्न कदापि निष्फल नही जाएगा और तुम अवश्यमेव हमारे साथ चल सकोगी।"

जानकी कुछ बोली नहीं। वह अपनी मगलाकाक्षिणी को एकटक देख रही थी। उसे लग रहा था मानो उसके सामने कोई अलौकिक आत्मा सशरीर आकर भविष्यवाणी कर रही हो, भगवती के शब्द जैसे उनकी जबान से न निकलकर उनकी अन्तरात्मा की गहराई से निकल रहे थे जिनके असत्य होने की सम्भावना ही नही थी। जानकी को अपने मन और प्राणो मे एक अद्भुत शक्ति का सचार होता हुआ महसूस हो रहा था। उसे लगा जैसे वह अभी-अभी मीलो

दौड सकती है। कृतज्ञता और श्रद्धा से उसकी आँखो मे आंसू उमड आए।

यह देखकर अर्चनाकुमारी ने परमस्नेह से जानकी के चिबुक को उठाकर आदेश दिया—

"उठो जानकी! भोजनादि मे निवृत्त होओ जाकर। मुझे भी अभी वहुत से कार्य करने है।

एक क्षण का भी विलम्ब न कर जानकी उठ खडी हुई और धीरे-धीरे कमरे से वाहर चली गई।



४२

वनराजाओं के राज्य में

●

दो दिन का समय बात करते बीत गया। तीसरे दिन प्रात-काल भगवान भास्कर ने ठीक समय पर उदित होकर जगत को जागरण का सन्देश दिया। ससार के समस्त प्राणी अपने-अपने कार्य मे सलग्न हो गए। भगवती अर्चनाकुमारी भी अपनी यात्रा के लिये तैयार हो चुकी थी। किन्तु उनकी आँखें जानकी को खोज रही थी। वह जल्दी ही उठकर प्रात कालीन क्रियाओ से निवृत्त होकर उपाश्रय के अन्य भाग मे तैयार होने के लिये चली गई थी। अबेर होती देख-कर उनका मन झुंझला उठा और इतनी देर तक भी उसके न आने के कारण वे नाराज हो गई। किन्तु उनका क्रोध सच्चा है या झूठा; यह वे स्वय ही नही समझ सकी। इष्टदेव का स्मरण कर उन्होने अपने वस्त्र-पात्रादि उठाने शुरू किये और इस कार्य मे कुछ क्षणो के लिये उनकी पीठ कमरे के दरवाजे की ओर हो गई। ठीक उसी समय हर्षातिरेक से सने हुए शब्द उनके कानो से टकराए—

"भगवती! आप फिर मुझे छोडकर चल दी क्या?"

"छोडूंगी नही तो क्या रोज-रोज तैयारी करके रुकती रहूँगी? कहाँ थी तू अब तक ?" कृत्रिम क्रोध के कारण अर्चनाकुमारी को 'तू' और 'तुम' का फर्क याद नही रहा।

"और कहाँ जाती ? यही तो थी उस कमरे मे।"

जानकी ने आँखे फैलाकर कहा।

"यही थी उस कमरे मे अरे, यह तो मै भी जानती हूँ। पर मै पूछती हूँ कि तुझे चलना नही है क्या ?"

"चलना नही तो क्या मै यही रहूँगी भगवती ? पर अभी तो सवेरा हुआ ही है।"

"सवेरा हुआ है तो क्या हुआ ? इस समय नही चलेगे तो क्या फिर भरी-दोपहरी मे चला जाएगा ? तू तो चप्पलें पहनकर रवाना हो जाएगी, पर हमे तो नगे पैर चलना पडेगा ?" अर्चना-कुमारी ने जरा और गुस्से से उसे डाँटा।

जानकी जरा भी हतप्रभ नही हुई वरन् हँसती हुई वोली—"अरे, यह तो मैं भूल ही गई थी भगवती। चलिये मैं तैयार हूँ, पर एक वात कह दूँ जल्दी से ?"

अर्चनाकुमारी देर होती देख फिर गुस्सा हो पडी—

"कह न जो कुछ कहना हो जल्दी से, इतनी वडी भूमिका किसलिये वाँधी है ?"

"मैं यह कह रही हूँ भगवती। कि अव आज से आप मुझे तु
न कहा करें।" जानकी लाड से वोली।

"वड़ी अच्छी वात कही यह तो। तुम नही कहूँ तो क्या अ
मे तुझे आप कहा करूँ ? चल उठ अव। लाड-प्यार करने
वक्त नही है। देर हो जाएगी ?"

जानकी तैयार होकर ही आई थी। आर्याओ की तरह
अपना सामान स्वय तो लेना नही था, वह वजरग ठाकुर ने अ
साइकिल पर रख लिया था। अत. शरीर और मन दोनो प्रका
— का अनभव करती हुई वह हरिणी के समान कुलाचे

हुई सबसे पहले सडक पर आ खडी हुई। अर्चनाकुमारी उसे स्वस्थ देखकर पूर्ण सतोप से आगे वढी।

जयपुर से अलवर का रास्ता वडा कठिन और खतरनाक था। मार्ग मे घने जगल थे, जिनमे शेर, चीते तथा अन्य हिंसक पशु निवास करते थे। किन्तु दिन का समय होने के कारण भय का अनुभव न करते हुए अर्चनाकुमारी का छोटा-सा काफिला प्रसन्नचित्त से आगे वढ रहा था। एक जानकी ही सहमी हुई थी।

छोटे-छोटे गाँवो को पीछे छोडते हुए थाना गाजी से जव वे आगे सिरस्का की ओर चले तो मार्ग और भी वीहड आ गया। चारो ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड, सुनसान जगल और उनमे अत्यन्त घनी झाडियाँ। ऐसे मार्ग पर दिन को भी कोई अकेला व्यक्ति चले तो उसका हृदय दहल जाए। रात्रि मे आवागमन तो सम्भव ही नही था। राहगीरो से ज्ञात हुआ कि जगली जानवरो का भय इस प्रदेश मे वहुत है।

किन्तु कार्यक्रम के अनुसार दिन रहते ही भगवती अपने समुदाय सहित सिरस्का पहुँच गई। सिरस्का मे अलवर नरेश की वडी कोठी थी। उसे खुलवाकर उसी मे रात्रि निरापद विताने का निश्चय किया गया। रात होते ही कोठी के वृहत् द्वार वन्द कर दिये गए। पहरेदार ने वताया कि इधर रहने वाले स्त्री-पुरुष वडे निडर और वीर होते है। समय आने पर पुरुप तो क्या, स्त्रियाँ भी शेरो का मुकावला कर लेती हैं।

ठाकुर वजरग रास्ते भर, सिरे पर पीतल से मढी अपनी मोटी लाठी कधे पर रखे सतर्कता पूर्वक सवसे आगे चलता आया था। रात्रि मे कोठी के अन्दर विशेप भय न होने पर भी उसे नीद नही आई और करीव-करीव पूरी रात वह जागता रहा। कोठी के एक

वडे कमरे मे तीनो आर्याएँ, जानकी और रूपा ठकुरानी सो रही थी। जानकी डरपोक थी। अर्धरात्रि मे जव चारो ओर भयकर सन्नाटा छाया हुआ था, सहसा ही किसी हिंस्र पशु की आवाज सुनकर वह उठ वैठी और पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगी। निद्रा भगवती अर्चनाकुमारी की भी खुल चुकी थी। जानकी को वैठी देखकर पूछा—

"क्या वात है जानकी! वैठी क्यो हो?"

"डर लग रहा है भगवती! कोठी के आस-पास शायद कोई शेर घूम रहा है।"

"वाह, दिन को किसी ने वता दिया कि इधर शेर-चीते रहते है, तो रात को इस कोठी मे भी तुम डर रही हो! डर किस वात का? हम जगल मे खुले मैदान मे तो है नही, कोठी के अन्दर हैं। इसकी दीवारो को फाँद कर शेर नही आ सकता। निर्भय होकर सो जाओ, डरो मत।"

पर जानकी सोई नही, वैसी ही वैठी रही। देखकर अर्चना-कुमारी ने ममता-पूर्ण भर्त्सना करते हुए उसे अपने पास बुलाया। कहा—

"कितनी डरपोक हो तुम? हम साधुओ को तो सैकडो वार ऐसे भयकर स्थानो पर ठहरना पडता है और वहाँ ऐसी कोठियाँ भी नही होती। तुम्हारी तरह डरने लगे तव तो हो चुका कल्याण। और तुम्हारे जैसी और दो-चार साथ मे हो फिर तो रात को घडी भर भी सो न सकें। चलो, आओ मेरे पास! यहाँ आकर सो जाओ।"

विना एक भी शब्द वोले जानकी अपने स्थान से उठी और अर्चनाकुमारी के पास आ उनसे सटकर छोटी वच्ची की तरह सो

गई। उसका शरीर तब भी काँप रहा था। अर्चनाकुमारी ने लेटे-लेटे ही उसे पुन सान्त्वना दी और यात्रा की थकान से चूर तथा काफी समय से रुग्ण रहने के कारण कमजोर जानकी दो मिनट मे ही प्रगाढ निद्रा के वशीभूत हो गई। अर्चनाकुमारी को निद्रा तब भी नही आ रही थी। सोचा—'जानकी की तरह कनक भी शायद डरती हो।' अत धीरे से उसे भी पुकारा—

"कनक। जाग रही हो बेटी।"

"जी, भगवती।"

"तुम्हे भी डर लग रहा है क्या?"

"अधिक तो नही भगवती।" कनक ने भय को साधु जीवन का दोष मानते हुए सकुचित होकर उत्तर दिया।

"तब भी आओ, मेरे पास आकर सो जाओ।"

प्रसन्न होकर कनककुमारी उठी और भगवती के दूसरी ओर आकर सो रही।

कनक और जानकी दोनो के निद्रामग्न हो जाने पर भी अर्चनाकमारी को नीद नही आई। अलवर नरेश की इस कोठी का प्रत्येक हिस्सा उन्होने शाम को देखा था। सुना था कि जब महाराज की शिकार करने की इच्छा होती है, वे इस कोठी मे आकर ठहरते हैं और कुछ जीव-जन्तुओ का शिकार का आनन्द उठाते है। कोठी का बीच वाला सबसे बडा कमरा उनके द्वारा मारे हुए शेर-चीतो तथा हरिण आदि वन्य पशुओ की खालो से सजाया हुआ था।

अर्चनाकुमारी का मन यह सब सोचकर चिंतन की गहराई मे गोते लगा रहा था। वे विचार कर रही थी कि नरराज और वनराज, दोनो ही राजा कहलाते हैं किन्तु दोनो के स्वभाव मे कितना अन्तर होता है। वनराज अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिये प्राणियो को

मारता है, किन्तु नरराज करुणा, दया और प्रेम आदि अनेक गुणो का धनी होकर भी सिर्फ अपने मनोरजन के लिये, और अपनी वीरता का प्रदर्शन करने के लिए ही नाना प्राणियो को मार गिराता है। निहत्थे प्राणियो को धोखे से मार डालना क्या उसके पराक्रम का प्रमाण है ? निरीह वनचरो के प्राणो से खिलवाड करना तो क्रूरता और कायरता का चिह्न है। मानवता के नाम पर घोर कलक है। काश, मानव अपनी महान भूल को समझ ले और अपने से भिन्न समस्त जीवो से प्रेम करना सीख जाए।

भगवती का हृदय कराह उठा। अलवर नरेश की वह कोठी, जिसमे अनेक प्राणियो के अन्तिम चिह्न भरे पडे थे, उन्हे नरक के समान लग रही थी। उनकी कल्पना मे अनेक निष्पाप और निर्द्वन्द्व प्राणी कल्लोल करते हुए और अगले क्षण ही रक्त मे सनकर प्राण त्यागते हुए नजर आते थे। परिणामस्वरूप उनका सदा शान्त रहने वाला मन अशान्त हो उठा और निद्रा नेत्रो से कोसो दूर चली गई।

प्रात काल होने पर गाँव वालो ने भगवती को कुछ समय रुकने तथा आहार ग्रहण करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने उस रक्त-स्नात भवन मे एक बूँद जल भी ग्रहण करना स्वीकार नही किया। वहाँ से खुशालगढ के लिये प्रस्थान कर दिया। खुशालगढ पहुँचकर उन्होंने चैन की साँस ली और लगभग चौवीस घटे पश्चात् आहार ग्रहण किया।

अगले दिन उन्हे अलवर पहुँचना था। उनके आने का समाचार पाकर अलवर के अनेक नर-नारी खुशालगढ आ पहुँचे थे। बडे समारोहपूर्वक अलवर निवासियो ने भगवती का स्वागत अपने नगर मे किया।

अपनी लम्बी यात्रा के दौरान कही भी अधिक रुकने का कार्य-त्रम अर्चनाकुमारी का नही था। अलवर मे भी वे केवल दो दिन का विश्राम चाहती थी, किन्तु वहाँ के स्त्री-पुरुपो ने उन्हे कुछ अधिक रुकने को विवश कर दिया। अलवर की महिलाओ मे धर्म के प्रति अटूट भक्ति थी पर धार्मिक-शिक्षण देने वाली कोई सस्था वहाँ नही थी। उसका अभाव उन्हे सदा अखरता रहता था। अत महिलाओ मे अग्रगण्य, कमलादेवी ने भगवती से इस अभाव की पूर्ति के लिये अत्यधिक व मार्मिक अनुरोध किया। कहा—

"भगवती ! हमारे अलवर नगर मे जव आपकी चरण-धूलि पड गई है तो इमका उद्धार हो जाना चाहिये। आप हमारे धर्म-शिक्षा के अभाव की पूर्ति करके पधारें। तभी हम आपको यहाँ से जाने देगी। कृपया इस विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करे।"

अर्चनाकुमारी वडे पेशोपेश मे पडी। एक सस्था का निर्माण करना, और वह भी अतिशीघ्र सहज नही था। किन्तु महिलाओ के हार्दिक अनुरोध के आगे उन्हे झुकना पडा। अपने अगले दिन के प्रवचन मे ही उन्होंने वृहत् जन-समुदाय को सम्वोधित करते हुए कहा—

"वधुओ ! आपके नगर मे आने का सुअवसर मुझे प्रथम वार ही मिला है। फिर भी आप सवके उल्लास, स्नेह और भक्ति को देखकर मेरा हृदय परम आल्हाद का अनुभव कर रहा है। खेद है तो केवल यह कि यहाँ धर्मपरायण महानुभावो के होते हुए भी वहनो एव वालिकाओ के लिये धार्मिक शिक्षा प्रदान करने वाली कोई सस्था नहीं है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि धर्म की अमर-वेल पुरुपो की अपेक्षा नारियो द्वारा ही सुन्दरता से सिंचित और पालित-पोपित होकर फलती-फूलती है।"

"युगप्रवर्तक आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्रो से भी पहले ब्राह्मी, सुन्दरी नामक पुत्रियो को सभी प्रकार की शिक्षा देकर हमारे सामने उच्च आदर्श उपस्थित किया है। वे जानते थे कि समाज व्यवस्था मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। वे माताएँ, जिनकी गोद मे बालक पलते हैं, अगर सुसस्कारी तथा धर्म-परायण न होगी तो बालको मे सत्-सस्कारो का परिस्राव कहाँ से होगा ? ससार मे जितने भी महापुरुष और धर्म के रक्षक हुए है, उनकी महत्ता का आदि स्रोत माताएँ ही रही है।"

"इसलिये आप लोगो से अनुरोध हे कि आप आज से ही नही, अपितु अभी से अपनी बालिकाओ को आदर्श कन्या, आदर्श पत्नी और आदर्श माता बनाने मे सहायक हो। यह तभी होगा जब उनमे प्रारम्भ से ही धर्म के बीज बोए जायँ, और उनके लिये एक ऐसी सस्था का निर्माण किया जाय जो उन्हे अकुरित कर सके। क्या आप लोग इसके लिये तैयार हं ?" कहकर क्षणभर के लिये अर्चनाकुमारी ने अपनी प्रभावोत्पादक दृष्टि उस विशाल जनसमूह पर फैलाई।

उस दृष्टि का त्वरित गति से प्रभाव पडा और तत्क्षण ही श्रोताओ की अगली पक्ति मे बैठे हुए एक सज्जन ने उठकर मच के समीप बिछे आसन पर अपनी कीमती घडी, हीरे की अँगूठी और जेब मे जितने भी रुपयो के नोट थे निकालकर रख दिये। वे लौट कर अपने स्थान पर बैठ भी नही पाए थे कि दूसरे, तीसरे, चौथे और इसी प्रकार अनेक व्यक्तियो ने उस राशि को बढाना शुरू किया।

अर्चनाकुमारी शान्तभाव से उस अद्भुत दृश्य को देख रही

थी । त्याग की भावना का ऐसा अनुपम रूप बहुत कम ही देखा जाता है । उस विशाल पडाल मे मुश्किल से ही कोई ऐसा बचा होगा जो उस धन-राशि मे विना कुछ भी समर्पण किये लौटा हो । अगूठियाँ, घडियो, गले की चेनो और नोटो का वहाँ ढेर लग गया । पुरुषो के वाद महिलाओ की वारी आई । चाँदी के विछुए से लेकर सोने के कडे, चूडी, लॉकेट, टॉप्स और नाक की कीलें तक उस स्थान पर जगमगाने लगी । इतना ही नही, छोटी-वडी अनेक रकमे वाद मे भिजवा देने वालो की भी एक लम्वी सूची वन गई ।

भगवती अर्चनाकुमारी ने श्रावक सघ के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री सोमचन्द्र को वुलाया और उस धनराशि को सुरक्षित रखने, तथा शीघ्रातिशीघ्र शुभ कार्य को प्रारम्भ करने का आदेश दिया । सवसे अन्त मे जानकी ने अपने हाथ की दो चूडियाँ भेंट की । ठाकुर वजरग भी पीछे नही रहा । उसने चाँदी के वटन और चेन निकालकर रख दिये ।

अर्चनाकुमारी यह देखकर हँस दी । वोली—"ठाकुर, तुम तो सचमुच ही साधु वने जा रहे हो !"

"वन तो जाऊँ भगवती ! पर ।"

"ठकुरानी इजाजत नही देती क्यो ?" भगवती ने परिहास किया । सुन कर सव हँस पडे और इस प्रकार हँसी-खुशी और उत्साह के वीच उस दिन का आयोजन समाप्त हुआ । □

४३

धर्म के प्रभाव से



एक विशाल भवन के मुख्य द्वार पर एक वडा-सा वोर्ड लगा हुआ था। उस पर सुन्दर और आकर्षक शब्दो मे लिखा था—'ब्राह्मी महिला मन्दिर'।

वर्षों से चाहने और प्रयत्न करने पर भी जिस सस्था का निर्माण नही हो सका था, भगवती अर्चनाकुमारी की वाणी के प्रभाव से वह वात की वात मे खडी हो गई। आज उसका उद्घाटन-समारोह था और भगवती के द्वारा ही वालिकाओ को प्रथम पाठ पढाया जाने वाला था।

'ब्राह्मी महिला मन्दिर' का वृहत् प्राँगण नर-नारियो से खचा-खच भर गया था। ऊँचे आसन पर भगवती शिष्याओ सहित आसीन थीं। आने वाले स्त्री-पुरुप कृतज्ञतापूर्ण हृदय मे उन्हे नमस्कार करते हुए अपना-अपना स्थान ग्रहण करते जा रहे थे। महिलाओ की प्रसन्नता का पार नही था। उनका वरसो का स्वप्न सत्य होने जा रहा था।

उद्घाटन समारोह प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम वालिकाओ ने ईश-प्रार्थना की। उसके वाद सोमचन्द्रजी ने सस्था की जन्मदात्री भगवती अर्चनाकुमारी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट किया और समय-समय पर पुन पधार कर उसे सम्हालते रहने की विनम्र प्रार्थना की।

तत्पश्चात् आर्या अर्चनाकुमारी का सारगर्भित प्रवचन हुआ। उसमे उन्होंने कहा—

"सस्था का निर्माण आप करना चाहते थे और आप लोगो ने ही किया है। इस शुभ कार्य को सम्पन्न करने की इच्छा जब वलवती हुई, सयोग से उसी अवसर पर आ पहुँचने से यह श्रेय मुझे मिल गया है। वास्तव मे देखा जाए तो आप लोगो की लगन और श्रम को ही यह श्रेय मिलना चाहिए। हाँ, मैं इतना अवश्य चाहती हूँ कि यह सस्था, जो आज जन्म ले रही है, किसी भी स्थिति मे नष्ट न होने पाए और निरन्तर उन्नति करती चले।"

समस्त स्त्री-पुरुप भगवती के शव्दो को सुनकर गद्गद् हो गए। वे जानते थे कि महान् आत्माएँ कभी भी अपनी प्रशसा को सुनकर प्रसन्न नही होती।

सवसे अन्त मे सस्था की मुख्य सचालिका कमलादेवी ने भगवती से अनुरोध किया कि वे कृपा करके वालिकाओ को धर्म का पहला पाठ पढाएँ। उनके आग्रह को न टालते हुए अर्चनाकुमारी ने वालिकाओ को 'नमोक्कार मन्त्र' का माहात्म्य समझाया। उपस्थित जनता मे प्रसन्नता की लहर दौड गई और जय जयकार की ध्वनि के साथ असीम हर्ष और उल्लासपूर्वक उद्घाटन समारोह समाप्त हुआ।

'ब्राह्मी महिला मन्दिर' के निर्माण का शुभ कार्य समाप्त होते ही अर्चनाकुमारी ने पुन यात्रा का कार्यक्रम वनाया और माघ शुक्ला अप्टमी को अलवर से प्रस्थान कर दिया। सैकडो नर-नारियो ने अश्रुपूर्ण नेत्रो से भगवती को भाव-भरी विदाई दी। उस दिन पन्द्रह मील चलकर वे रामगढ नामक गाँव मे ठहरी। सोमचन्द्रजी तथा कमलादेवी साथ ही आए थे। रामगढ से वे अलवर लौट गए।

जानकी ने कुछ समय तक और भी भगवती के साथ रहने का निश्चय किया।

अगले दिन ही रामगढ से रवाना होना था किन्तु सूर्य-देवता ने ज्योही क्षितिज के छोर से झाँका, ठीक उसी समय बजरंग ठाकुर दौडता हुआ आया और घबराते हुए बोला—

"भगवती आज तो जाना नही हो सकता।"

"जाना नही हो सकता! क्यो ठाकुर?"

"हाँ भगवती आज दिल्ली की ओर रवाना नही हो सकते।"

"पर क्यो? क्या विपत्ति आपडी ऐसी? हमने तो आज ही और अभी रवाना होने का निश्चय किया है।" अर्चनाकुमारी दृढता-पूर्वक बोली।

"जिद न करे भगवती! मुझे अभी-अभी गाँव वालो ने बताया है कि इस असमय मे ही उस ओर बहुत अधिक वर्षा हुई है। इतनी अधिक कि यहाँ से एक-दो फर्लांग आगे ही सडक जगह-जगह से बुरी तरह कट गई है। बडे-बडे गड्ढे हो गए हैं और उन पर सीमेंट डालकर बडी कठिनाई से सकरा रास्ता बनाया गया है।"

"तो क्या हुआ?"

"हुआ क्यो नही? वही तो आपको बताने आया हूँ कि उस सँकरे रास्ते पर इधर से कोई नही जा सकता, सिर्फ उधर दिल्ली की ओर से ही ट्रैफिक चलकर आ रहा है। लाइन लगी हुई है बसो, मोटरो, ट्रको, बैलगाडियो ।"

"और रेलगाडियो की भी। क्यो ठाकुर?" अर्चनाकुमारी ने जोर से हँसते हुए ठाकुर की बात काटी।

"आप तो मजाक कर रही है भगवती!" ठाकुर ने बच्चो जैसा मुँह बनाया।

"नही, मजाक नही करती ठाकुर! पर सोचती हूँ कि काश्मीर तक की पद-यात्रा के लिए तैयार बजरग ठाकुर जरा-सा रास्ता पार करने मे कैसे घबरा गया ?"

ठाकुर आँखे फाडकर बोला—"घबराता क्या मैं अपने लिए हूँ भगवती ! मैं सिपाही आदमी हूँ। जिन्दगी भर बन्दूक लिए ऊबड-खाबड जगलो मे दौडता फिरा हूँ।"

"तब फिर क्या ठाकुरानी के लिए डर रहे हो ?" अर्चना-कुमारी मजाक के मूड मे थी।

"भगवती, ठकुरानी क्या आपसे बढकर है ? मैं तो आपके लिए डर रहा हूँ। उस सकीर्ण रास्ते को, जब ट्रके ही रोके हुए होगी, आप कैसे पार करेंगी ? दोनो ओर तो पानी, कीचड और बडे-बडे गड्ढे हैं।"

अर्चनाकुमारी ने क्षणभर विचार किया और उसके बाद ही, चल रहे विषय के विपरीत एक अजीब-सा प्रश्न कर बैठी—

"क्यो ठाकुर, तुम भगवान को मानते हो ?"

ठाकुर बिचारा भौचक्का होकर भगवती का चेहरा देखने लगा। पलभर इतस्तत देखकर बोला—

"पहले तो नही मानता था भगवती ! पर आपके सम्पर्क मे आने के बाद मानने लगा हूँ।"

"तो बस स्मरण रखो कि सकटकाल मे श्रद्धालु-भक्तो की भगवान निश्चय ही सहायता करता है। अच्छा जाओ ! सूर्यकुमारी वगैरह से कहो कि तैयार हो जाएँ। हम रवाना हो रहे है। अन्यथा देर हो जाएगी।"

"जो आज्ञा !" कहकर ठाकुर कठपुतली की भाँति मुडा और चल दिया। उस बेचारे को अभी भी समझ मे नही आ रहा था कि

कई मील लम्बा और भारी-भरकम ट्रकों तथा बसों आदि से घिरा हुआ रास्ता भगवान कैसे पार करायेंगे। पर अब एक शब्द भी कहने की गुंजाइश नही थी। भगवती की दृढ इच्छा-शक्ति से वह काफी परिचित हो गया था। जान गया था कि उनका निश्चय पत्थर की लकीर के समान होता है जो कि लाख कोशिश करने पर भी बदला नही जा सकता।

सब लोग चल पडे। अर्चनाकुमारी के हृदय मे चिन्ता या दुश्चिता का लेश भी नही था। वही प्रफुल्लता और मधुर मुस्कान उनके सौम्य चेहरे पर थिरक रही थी। किन्तु बाकी सभी के हृदय उद्विग्न थे। ठाकुर मुँह लटकाये चल रहा था। सोच रहा था— 'शायद वापिस लौटना पडेगा।'

दो फर्लांग तक सब चुपचाप चलते रहे। ठाकुर की सूचना सही थी। इधर से एक भी व्यक्ति जाने वाला नही दिखाई दिया, सिवाय उनके ! यह देखकर जानकी से नही रहा गया। सबसे ज्यादा डरपोक भी वही थी। बोली—

"भगवती !"

"कहो क्या बात है ?" चलते-चलते ही अर्चनाकुमारी बोली।

"अगर आज हम वापिस लौट चले तो क्या हर्ज है ?" एक-दो दिन बाद रवाना हो जायेंगे।

"एक-दो दिन की क्या कोई कीमत नही है जानकी ?"

"यह मैं कहाँ कह रही हूँ ? मैं तो सोच रही हूँ कि जानबूझ-कर आपत्ति मोल लेने से क्या फायदा ? चारो ओर बाढ के कारण पानी ही पानी दिखाई दे रहा है। एक चिडिया भी तो इधर से जाती हुई दिखाई नही दे रही सिवाय हमारे।"

"अरे, तो हम तो है इतने सव, घवराओ मत । चलो ! रास्ता अवश्य पार होगा ।"

और सचमुच ही महान आश्चर्य हुआ सवको तव, जवकि खतरे का वोर्ड लगा हुआ स्थान आया। सभी ने अचरजभरी निगाहो से देखा कि दूर-दूर तक वह सँकरा और लम्वा रास्ता खाली पडा था। एक भी कार, वस, मोटर या ट्रक उस रास्ते से नही आ रहा था। तलाश करने पर मालूम हुआ कि दिल्ली से आने वाला एक लोहे के सामान से भरा हुआ ट्रक उस ओर के मुहाने पर खराव हो गया है, और उसके कारण पीछे आने वाली सभी गाडियाँ उधर ही वापिस लौटकर जा रही हैं। कुछ खडी भी है।

सुनकर सवके चेहरे पर रौनक आ गई। अर्चनाकुमारी ने कहा—"क्यो जानकी ! अव तो कोई डर नही है न ? देखो रास्ता विलकुल साफ और निरापद है। हम आसानी से इसे पार कर लेंगे।"

वजरग ठाकुर हैरान था। उससे रहा नही गया। स्पर्श हो जाने के भय से उसने भगवती के चरणो के पास की धूलि को मस्तक पर चढाते हुए कहा—

"भगवती आपने क्या कोई सिद्धि प्राप्त कर ली है ? या कि आपके वचनो मे जादू है ?"

"अरे नही भाई, यह केवल सयोग की वात है कि ठीक हमारे आने के समय ही उधर ट्रक को खराव होना था। पर अव सव लोग शीघ्रतापूर्वक चलो। ट्रक के ठीक होते ही सारा जादू गायव हो जाएगा। चलो, व्यर्थ देर मत करो।"

सवके पैरो मे मानो पर लग गये। करीव पौन घण्टे

चलने के बाद, खतरे का मार्ग खतम हुआ। देखा तो सचमुच ही उसके मुहाने पर एक बडा भारी ट्रक सारा रास्ता रोके हुए खडा था। पर अब वह ठीक होने जा रहा था।

जल्दी-जल्दी चलने के कारण सब बुरी तरह थक गये थे, अत. भगवती ने सबको कुछ देर वहाँ बैठकर विश्राम करने के लिये कहा। पाँच-दस मिनट वे सडक के एक ओर बैठे और ज्योही ट्रक के इजिन ने घर्र-घर्र करके चलना शुरु किया अर्चनाकुमारी ने भी उठकर अपने मार्ग पर बढने का उपक्रम किया।

चारो ओर फैले हुए पानी, और उसके बीच मे दिखाई देते हुए सर्पाकार रास्ते पर पुन एक निगाह डालकर सब अपनी मजिल की ओर बढ चले। 



४४

कायापलट



इसी प्रकार अनेक कठिनाइयो का सामना करते हुए तथा भूख-प्यास के परीषह सहते हुए आर्या अर्चनाकुमारी का छोटा-सा दल गुडगाँव, देहली, पानीपत, करनाल, अम्बाला तथा कालका आदि अनेक छोटे-बडे नगरो को पीछे छोड गया। लोगो के लाख आग्रह करने पर भी आवश्यकता से अधिक विराम भगवती ने कही नही लिया। सबको लौटते समय ठहरने का आश्वासन देकर सन्तुष्ट किया।

जानकी देहली से लौट चुकी थी, और भगवती इस समय शिमले के रास्ते पर कालका और कसौली के बीच मे थी। कसौली पहुँचने के लिए अत्यन्त कठिन चढाई पडती थी। अम्बाला मे ही मालूम हो गया था कि कसौली की जबर्दस्त चढाई अगर पार कर ली तो फिर शिमला पहुँचना कठिन नही होगा।

यद्यपि अर्चननाकुमारी हृदय-रोग की मरीज थी और डॉक्टरो ने उन्हे अधिक चलने-फिरने और परिश्रम करने के लिये मना कर दिया था, किन्तु अपनी दृढ इच्छा-शक्ति के आगे वे शरीर की कमजोरी को नगण्य मानती थी और उसी के बल पर अपनी कठिनतम यात्रा पर बढती चली जा रही थी। मजिल पर पहुँचे बिना उन्हे विराम लेना नही था।

पूर्ण निर्द्वन्द्व होकर साहस के साथ उन्होने कसौली की ओर चढना प्रारभ किया। ठाकुर छाया की तरह साथ रहता था। कही के लिये भी रवाना होने से पहले वह आगे के मार्ग की जानकारी प्राप्त कर लिया करता था। उसका भग का नशा छूट गया था पर उसका स्थान भक्ति के नशे ने ले लिया था।

चढाई पर सबके कदम बढ चले और एक-एक करके घाटियाँ पार होने लगी। अनुपम प्राकृतिक दृश्यो के अवलोकन से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता मार्ग की थकावट को मिटाती जा रही थी। वसत का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। रग-बिरगे और विभिन्न जाति के खिले हुए पुष्प अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से मन और मस्तिष्क को तरो-ताजा बना रहे थे। शीतल और सुगधित बयार अठखेलियाँ करती हुई इधर से उधर वह रही थी। आँखे उस सौन्दर्यसुषमा का सतत पान करते हुए भी अघाती नही थी। ड्यूटी पर तैनात सैनिको की तरह कतारबन्द खडे हुए वृक्षो के बीच से गुजरते हुए भगवती ने बीहड घाटी पार कर कसौली मे प्रवेश किया। वहाँ एक गुरुद्वारे मे पहुँचकर कुछ समय विश्राम के लिये ठहरी।

पर बजरग ठाकुर वहाँ क्षणभर भी नही रुका। वह मालूम करके आया कि यहाँ पर एक जैन रहते है। जिन्हे सब 'जैन साहब' के नाम से जानते है।

ठाकुर के साथ आर्या सूर्यकुमारी और कनककुमारी जैन साहब का घर ढूंढने, तथा हो सके तो कुछ समय ठहरने के लिये स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य मे निकली। घर मिल गया और जैन साहब ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ऊपर की मजिल का एक कमरा आर्याओ के लिये खोल दिया।

सभी अपने थोडे से सामान सहित जैन साहब के घर पर आ

गए। पर वहाँ आकर अत्यन्त विस्मय मे पडे, जवकि तीव्र दुर्गन्ध के कारण सवके दिमाग फटने लगे। समझ मे नही आ रहा था कि इसका कारण क्या है ? कसौली की चढाई चढते समय सुवासित गध से भरे हुए दिमाग अव नफरत से भर गये।

खिन्न मन से भगवती कमरे मे वैठी थी। सूझ नही रहा था कि क्या करे। ठीक उसी समय खिडकी से उन्होंने वहुत सारे मुर्गे-मुर्गियो को आते हुए देखा। सोचा किसी पडौसी के होंगे। किन्तु जव वे सव के सव जैन साहव के घर मे ही आ गए तो उनका माथा ठनका।

उन्होने निश्चय किया कि यहाँ से चल देना चाहिये। उसी समय जैन साहव और उनकी पत्नी ऊपर आए और आदरपूर्वक वोले—

"भगवती ! कृपा करके आहार लाने के लिए आर्याओ को आदेश दीजिए।"

अर्चनाकुमारी ने आहार की वात पर ध्यान न देते हुए सीधा प्रश्न किया—

"ये मुर्गे, मुर्गियाँ किसके हैं जैन साहव ?"

"है तो हमारे ही।"

"आप क्या व्यवसाय करते हैं ?"

"मैंने माँस का ठेका ले रखा है।" जैन साहव ने तनिक कुठित होते हुए कहा।

"पर आप तो जैन हैं। जैन धर्म का पहला सिद्धान्त अहिंसा है। आप जैन होकर इन मूक पशुओ की गरदन पर छुरियाँ चलवाते हैं ?"

"भगवती ! हमारे पूर्वज यही करते आए, अत मैने भी यही करना आरम्भ कर दिया था।" मन ही मन दुखी होते हुए उन्होंने उत्तर दिया।

"क्या यहाँ के सभी जैन आमिषभोजी हैं ?"

"नही, यहाँ तीन घर शाकाहारी हे।"

"ठीक, वापिस गुरुद्वारे जा रहे है।"

"क्यो ? आप क्यो यहाँ से लौट जाना चाहती है भगवती ? आहार का वक्त हो गया है। कृपा करके आहार ग्रहण करिये।"

"यह नही सो सकता जैन साहब! जिस घर मे मासाहार होता है, वहाँ का अन्न ग्रहण करने के लिए हमारी आत्मा गवाही नहीं देती।"

जैन साहब का चेहरा अत्यन्त दयनीय हो गया। उन्हे अपने कु-व्यवसाय और कु-खाद्य के लिये घोर पश्चात्ताप और ग्लानि होने लगी। क्षणमात्र मे ही उनका चेहरा विवर्ण हो गया। पत्नी की ओर देखकर बोले—

"जगवन्ती, चलो हाथ जोडो, और इसी समय मासाहार का त्याग करो। मैं इस जघन्य व्यवसाय का भी आज से त्याग करता हूँ।" उसके बाद वे डबडबाई आँखो से भगवती की ओर मुडकर बोले—

"मुझे मास बेचने का तथा हम दोनो को मास खाने का त्याग करा दीजिए।"

"ईश्वर आपको सुबुद्धि प्रदान करे।" कहते हुए अर्चनाकुमारी ने दम्पती की इच्छानुसार त्याग करवा दिया और सुर्यकुमारी का सबोधन करके कहा—

"सूर्या ! चलो, हमे गुरुद्वारे मे चलना है बहुत देर हो गई।"

"पर अब तो हमने मास मात्र का त्याग कर दिया है भगवती ! और आज वह रसोईघर मे लाया ही नही गया । अब तो आप आहार ग्रहण कर हमे कृतार्थ करें ।"

"नही भाई ! अभी नही, हम आपके घर का भोजन तभी ले सकेंगे जब इस हिंसामय कृत्य का एक भी चिह्न शेष नही रहेगा ।"

"पर अब चलो सूर्या ! कठिन यात्रा की थकावट और इतनी देर तक कुछ न ले पाने से कनक का चेहरा कितना कुम्हला गया है ? छोटी है न यह ! चलो, शीघ्रता करो ।" अर्चनाकुमारी ने पुन आर्या सूर्यकुमारी को आदेश दिया ।

भगवती को शिष्याओ सहित जाने का उपक्रम करते देखकर जैन-दम्पती धैर्य नही रख सके और बच्चो की तरह रो पड़े ।

अर्चनाकुमारी उनका रोना देखकर स्तभित रह गई । मृदु स्वर से बोली—

"यह क्या ! जैन साहब ? आप रो क्यो रहे है ? आपको तो प्रसन्नता होनी चाहिये कि मेरे आने से आपको सत्प्रेरणा मिली और आपने महान् त्याग का मार्ग अपनाया ।"

"पर आप तो हमे त्याग रही है भगवती ! हमारा दिल टूट जायगा, आपके चले जाने से ।" जैन साहब अत्यन्त दीन स्वर से बोले ।

भगवती का कोमल हृदय द्रवित हो उठा और उनके बढते हुए चरण ठिठक गए । आर्द्र स्वर से बोली—"अच्छी बात है जैन साहब ! हम यहीं ठहरेंगे । पर आहार तो उन तीन घरो से ही लायेंगे जो निरामिष भोजी है । अब तो आप सन्तुष्ट हैं न ?"

दम्पती के आंसू थम गये । हृदय तनिक आश्वस्त हुए । भीगे

नेत्रो से गृहस्वामिनी ने भगवती के चरणो का स्पर्श किया। जैन साहब ने विनम्र होकर कहा—

"आपकी दया के लिये कृतज्ञ हूँ भगवती! अब आप आर्याओ को मेरे साथ चलने की अनुमती दीजिये। मैं उन्हे वे घर बता दू जहाँ से आपको आहार और जल लेना है।"

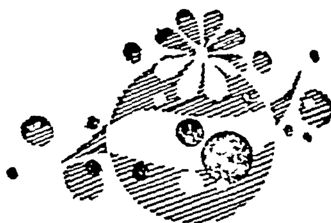
भगवती की आज्ञा लेकर दोनो आर्याएँ भिक्षा की गवेषणा के लिये चल दी।

अर्चनाकुमारी का विचार कसौली मे भी केवल एक दिन ठहरने का ही था, किन्तु उन्होने महसूस किया कि ऐसे स्थान पर उन्हे कुछ अधिक ठहरना चाहिए। फलस्वरूप वे पाँच दिन वहाँ ठहरी। जैनसाहब ने घर-घर घूम कर जैन व अजैन सभी को भगवती के आने की सूचना दी और प्रतिदिन प्रवचन-जनसख्या बढने लगी। उनके पाँच दिन के मार्मिक प्रवचनो का वहाँ के व्यक्तियो पर इतना असर हुआ कि आधे से अधिक गाँव शाकाहारी हो गया। उनके पहुँचने से पूर्व जिस कसौली गाँव मे सिर्फ तेरह घर जैनियो के थे वहाँ अब पचास-साठ घर के व्यक्तियो ने जैनत्व अपना लिया। अनेक ब्राह्मण परिवारो ने भी, जो मास, मदिरा और अडो का निस्सकोच प्रयोग करते थे, इन सबका त्याग कर दिया।

जैन साहब के घर की तो इन चार-छह दिनो मे कायापलट ही हो गई थी। मुर्ग, मुर्गी, अडे या मास वगैरह का कही चिह्न भी न रहा। यहाँ तक कि उन्होने अपने सम्पूर्ण मकान को ही लिपवा-पुतवा कर पूर्णतया शुद्ध करवा लिया। पति-पत्नी की प्रसन्नता का इन दिनो पार नही था। उन्हे लगता था मानो उनका घर मदिर बन

गया है, और भगवती के रूप मे भगवान सशरीर ही आकर ठहरे हुए है।

इसके अलावा जिस दिन उन्होने अपने हाथो से भगवती को भिक्षा प्रदान की, अपने को कृत-कृत्य माना। दोनो की आँखो से आनन्दाश्रु वहकर जन्म-जन्मान्तर के पापो को अपने साथ वहा ले गए। 



४५

पत्नी को गिरवी रखा



"मै नही जाऊँगी ।"

"जाएगी कैसे नही, जाना पडेगा ।"

"नही, नही, अब मै नही जाऊँगी ।"

"क्यो, क्या हो गया है अब ?"

"अब मुझमे श्रम करने की शक्ति नही रही । बीमारी के कारण मेरा शरीर बहुत कमजोर हो गया है ।"

"यह सब कुछ नही चलेगा । चल, तैयारी कर ! रवाना होने को ।"

"मेरे ऊपर दया करो ! तुम मेरे पति हो, मालिक हो ।"

"सतवती सीता जैसे नखरे मत कर, मालिक अब वह है जो तुझे ले जा रहा है ।"

"मेरा बच्चा सालभर का भी नही हुआ, वह मर जाएगा मेरे बिना !" नारी कण्ठ आक्रन्दन कर उठा ।

"मर जाएगा तो मरे, कौन सी आफत आ जाएगी ?"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, ऐसा अन्याय मत करो । मैं दिनभर मजदूरी करूँगी, बोझा ढोऊँगी, आधा पेट खाकर रह जाऊँगी पर अब मुझे मत भेजो ।" कहते हुए उस असहाय नारी ने पति के पैर

पकड लिये । किन्तु अगले क्षण ही पदाघात से दूर जा गिरी और चीखकर रो उठी।

"यह नाटक अब नही चलेगा । निकलती है या नही ?" कहते हुए पति देवता ने पत्नी को घसीट कर दरवाजे की ओर ले जाना शुरू किया।

चीत्कार करती हुई अबला किसी तरह अपने को छुडाकर बिना कुछ सोचे-विचारे पिछले दरवाजे से भाग निकली, और अन्य कोई रास्ता न पाकर बदहवास-सी, अपनी झोंपडी के पास वाले छोटे से मकान मे घुस गई । आँधी के झोंके की तरह तेजी से आकर वह एक कमरे के दरवाजे पर खडी हुई मानव आकृति के समीप गिर पडी और उसके पैरो को मजबूती से पकड कर अनुनय भरे स्वर से प्रार्थना करने लगी—

"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, दया करके मुझे बचालो !"

इस आकस्मिक घटना से क्षणभर के लिये भगवती अर्चनाकुमारी दिग्मूढ हो गई । कसौली से रवाना होकर सोलन आदि गाँवो से होती हुई वे कल शाम को ही इस कुमारहट्टी ग्राम मे पहुँची थी। यात्रा की थकावट के कारण रात को सब जल्दी ही निद्राधीन हो गये थे और अभी तक जागे नही थे । किन्तु अर्चनाकुमारी अपनी आदत के अनुसार ब्राह्ममुहूर्त मे ही उठ बैठी और अपने स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन-मनन आदि मे दत्त-चित्त हो गई ।

किन्तु प्रात काल होते न होते पडौस की झौंपडी मे से किसी स्त्री के भय-विह्वल स्वर से रोने, चीखने और चिल्लाने की आवाजे आने लगीं। साथ ही पुरुष कण्ठ के धमकाने और मारने-पीटने की ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई देने लगी।

इस सब गडबड के कारण भगवती का चित्त उचट गया और

वे खिन्न तथा परेशान-सी होकर इस झमेले का कारण जानने के लिये उठी। उठकर दरवाजे तक आई ही थी कि एक नारी शरीर उनके पैरो के पास आकर गिर पडा और बचाओ-बचाओ, कहते हुए चीत्कार करने लगा।

कुछ क्षणो तक वे विस्मय विमूढ की स्थिति मे वैसे ही खडी रह गई पर बाद मे अत्यन्त कोमलतापूर्वक अपने पैरो को पकडे पडी हुई उस नारी को उन्होने उठाया और सान्त्वना दी—

"क्या बात है बहन ? उठो, घबराओ मत !"

"मुझे बचा लीजिए महादेवी ! बचाइये मुझे।" भयभीत स्त्री के मुंह से इसके अलावा और कोई शब्द नही निकला।

"बचाने वाला तो कोई और ही है, वह अवश्य बचाएगा। पर बात क्या है ? यह तो बताओ ? डरो मत !"

किन्तु वह स्त्री कुछ कह पाती, उससे पहले ही दो व्यक्ति वहां आ पहुँचे। उन्हे देखते ही स्त्री थर-थर कांपने लगी और भगवती की ओर कायरतापूर्वक देखती हुई अपनी रक्षा के लिये मूक प्रार्थना करने लगी।

भगवती अर्चनाकुमारी ने क्षणभर उसकी ओर देखा और फिर आगन्तुकों से प्रश्न किया—

"कौन हैं आप लोग ? यहां किसलिये आए है ?"

"मेरी स्त्री है यह, भागकर आपके पास आ गई है। इसे ले जाने आया हूँ।" दो व्यक्तियों मे से एक ने अधिकारपूर्वक उत्तर दिया दूसरा व्यक्ति कोई पंजाबी सरदार था। उसकी ओर इंगित कर भगवती ने फिर पूछा—

"और यह सरदार जी ? ये किसलिये तशरीफ लाए है ?"

"यह भी इसी के लिये आए है।"

"इसी के लिये आए है ? क्या मतलब ?" अर्चनाकुमारी मारे आश्चर्य के अभिभूत होकर बोली—

"ये ले जायेगे इसको।"

"पर क्यो ? तुम पति हो और पत्नी को ले जाने के लिए आए हो, यह बात तो समझ मे आ गई, पर इन सरदार जी को क्या काम है इसमे ?"

"इन्होंने खरीद लिया है इसको !" अपने को पति बताने वाले उस दुर्दर्शन व्यक्ति ने उत्तर दिया।

अर्चनाकुमारी मानो आकाश से गिर पडी। उन्हे विश्वास नही हुआ, फिर पूछा—

"क्या बकते हो ? इन्होने खरीद लिया है, और तुमने बेच दिया है, अपनी स्त्री को ?"

"हमेशा के लिये नही बेचा, गिरवी रख दिया है। जब पैसे हो जाएँगे, छुडाकर ले आऊँगा।"

"बहुत खूब, बडा अच्छा काम किया है तुमने ! और क्यो सरदार जी ! आप क्या करेंगे इसे ले जाकर ?"

"जो इच्छा होगी करूँगा। गिरवी रखा है तो मेरा पूरा अधिकार है। कुछ भी काम लूं इससे।"

"हूँ , कितने रुपयो मे इस स्त्री को बधक रखा है आपने ?"

"पन्द्रह रुपये मे।" सरदार जी जरा मिटपिटा कर बोले।

भगवती का दिल दहल गया। गाँव के मूर्ख और गरीब आदमियो की गरीबी का गैरकानूनी लाभ उठाने वाले ऐसे नीच व्यक्तियो के प्रति उनका हृदय नफरत से भर गया। अपनी प्रभावोत्पादक सतेज दृष्टि उस नृशस मनुष्य के चेहरे पर जमाकर उन्होने पूछा—

"आप कहाँ रहते हैं सरदार जी ?"

"शिमले मे ।"

"कब जाती है आपकी गाडी ?"

"आठ बजे । आधा घण्टा और है । मुझे जल्दी जाना है ।" सरदार जी जरा प्रसन्न होकर बोले ।

"हाँ, आप जल्दी जाइये ! नही तो गाडी नही मिलेगी आपको !"

"पर मैं इस स्त्री को अपने साथ ले जाऊँगा महाराज जी ! इसके लिये मैंने पैसे दिये है ।" भगवती की दृष्टि मे और उनके शब्दो मे क्या है इसे न समझते हुए सरदार जी जल्दी मे बोल पडे ।

"यह नही होगा सरदार जी ! आपने मानवता का गला घोट-कर अत्यन्त अमानुषीय कार्य किया है । चद पैसो का लालच देकर एक परिवार की शाति नष्ट करने की कोशिश की है । इस कुकृत्य का फल कभी आपको भोगना होगा । किन्तु अभी आपका भला इसी मे है कि आप फौरन यहाँ से चले जाएँ ।"

दृढ सयम की अग्नि से तप्त भगवती की दृष्टि ने दो लौह-शलाकाओ के समान सरदार जी की आँखो मे प्रवेश करते हुए उनके हृदय को बेध दिया । उस लम्बे-चौडे पहाड से डील-डौल मे स्थित उनका हृत्पिंड काँप उठा और जबान तालू से चिपक गई । उस महिमामयी मूर्ति की आँखो से निकलती हुई चिनगारियो को वे सहन नही कर सके, और उनका मस्तक झुक गया । इसी बीच भगवती का आदेशपूर्ण स्वर फिर सुनाई दिया—

'ठाकुर ! जाओ, सरदार जी को कुशलपूर्वक इनकी गाडी मे बिठा आओ ।'

ठाकुर भरा बैठा था । उसका वीर-हृदय एक अबला नारी की

इस अपमानपूर्ण स्थिति से उबल रहा था वार्तालाप के बीच मे बोलने की आवश्यकता नही थी, अत बडी देर से वह सब कुछ सुनता हुआ चुपचाप बैठा रहा। अन्यथा उसके हाथ सरदार जी का गला घोट देने के लिये आतुर हो रहे थे। अब ज्योही उसे भगवती का आदेश मिला, उसी क्षण खडा होकर बोला—

"चलिये सरदार जी!"

"लेकिन !" सरदार जी हकलाते हुए कुछ कहने का प्रयत्न करने लगे।

"लेकिन-वेकिन कुछ नही।" ठाकुर गरम हो गया—"सीधी तरह चलो नही तो गोली मार दूंगा। याद रखना, मेरा नाम बजरग है।"

ज्योही ठाकुर सरदार जी को लेकर गया, अर्चनाकुमारी ने अपने को पति कहने वाले उस जघन्य प्राणी को सम्बोधित किया—

"अब तुम क्या चाहते हो? मेरी समझ मे नही आता कि तुमने अपनी स्त्री को गिरवी रख देने जैसा घृणित कार्य कैसे किया? क्या यह मेहनत-मजदूरी नहीं करती? तुम्हारी सेवा नही करती? बच्चो का पालन-पोपण नही करती?"

वह व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ और स्पदनहीन मूर्ति के समान खडा था। भगवती के प्रश्नो को सुनकर कुछ कहने के लिये ज्योही उसने सिर ऊँचा किया, उसकी रोती हुई स्त्री बीच मे ही बोल पडी—

"भगवती! मैं दिन भर मजदूरी करके इसका और इसके बच्चो का पेट भरती हूँ। इसके अलावा जो कुछ बचता है उसे यह शराब और जुए मे उडा देता है। इसने मुझे अब तक एक बार नही, सोलह बार गिरवी रखा है।"

"क्या कहा ? सोलह बार गिरवी रखा है ?" आकाश फट पड़ता तो भी शायद भगवती को इतना आश्चर्य नहीं होता ! नारी जाति की ऐसी हीन दशा का खयाल करके उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। कुछ क्षणों तक वे मुंह से कुछ बोल ही नहीं पाईं। पर ज्योंही कुछ कहना चाहा, देखा कि उस व्यक्ति ने दौड़कर अपनी स्त्री के पैर पकड़ लिये है। वह कह रहा है—

"मुझे माफ करदे ! मैंने जिन्दगी भर तुझे दुख दिया है। भगवान मुझे इसकी सजा देगा। पर अब मैं भगवती की साक्षी से कहता हूँ कि ऐसा कुकर्म कभी नहीं करूँगा। मैंने घोर पाप किये हैं पर आज मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं आज से कभी शराब नहीं पीऊँगा, जुआ नहीं खेलूंगा और क्या कहूँ—जीवन भर तेरी जैसी देवी की पूजा करूँगा। पर अब मुझे माफ कर !"

बेचारी स्त्री पति को पश्चात्ताप के आँसू बहाते देखकर पानी-पानी हो गई। शीघ्रतापूर्वक अपने पैरों को छुड़ाकर वह स्वयं भी आनन्दाश्रु बहाने लगी।

कुछ क्षणों बाद उस पुरुष ने भगवती के समीप आकर कहा—

"आपकी कृपा से आज मैंने नया जीवन पाया है भगवती ! जनम-जनम तक भी मैं आपकी दया का ऋण नहीं चुका सकूंगा। अब मुझे आज्ञा दीजिये कि अपनी स्त्री को अपने घर ले जाऊँ।"

अर्चनाकुमारी गदगद् होकर दम्पती के उस पुनर्मिलन को देख रही थीं। उमड़ते हुए हृदय से उन्होंने अपना हाथ उठाकर दोनों को आशीर्वाद दिया और उनकी कल्याण कामना की। ☐

४६

दुर्गम पथ पर



कुमारहट्टी से रवाना होकर ठीक महावीर जयन्ती के दिन भगवती अर्चनाकुमारी ने शिमला मे प्रवेश किया। उपाश्रय वहाँ की प्रसिद्ध सडक माल-रोड पर ही था। चहल पहल से भरी हुई साफ-सुथरी सडक। शाम को तो उसकी रौनक मे चार चाँद लग जाया करते थे। अनेको फैशनेबिल जोडे उस पर चहलकदमी करते रहते। जगह-जगह शानदार होटल बने हुए थे। अग्रेजो का जमाना जा चुका था पर अग्रेजियत नही गई थी। होटलो मे बहुत रात गए तक इगलिश धुनो पर जोडे नाचा करते। किराये पर गर्ल फ्रेंड भी वही मिलती थी। पानी के समान शराब के दौर चलते।

आर्य सस्कृति का इस प्रकार दिवाला निकलता देखकर अर्चना-कुमारी का हृदय कचोट उठा। एक तरफ तो अमीरी के नशे मे चूर व्यक्ति होशहवाश खोकर अपनी बहन-बेटियो की इज्जत पर डाका डालते और दूसरी ओर पैसे के अभाव मे सैकडो व्यक्ति अपनी सती-साध्वी पत्नियो अथवा बहन-बेटियो को गिरवी रखने पर मजबूर होते।

भारत के सुप्रसिद्ध शहर शिमला मे भी, जहाँ कि प्राकृतिक सुषमा बिखरी पडी थी, अर्चनाकुमारी का मन अधिक नही लगा। शीघ्र ही उन्होंने वहाँ से बिलासपुर के लिए प्रस्थान कर दिया।

विलासपुर शिमला से करीव छप्पन मील था। सारा रास्ता पहाडी होने के कारण पत्थरो पर चलते-चलते सबके पैरो के तलवे घिस गए और उनसे खून टपकने लगा। रास्ते मे सिर्फ दो गाँव आए पर पूरा आहार वहाँ भी नही मिला। जो कुछ मिला थोडा-थोडा उसी को उदरस्थ कर सब उसी उत्साह और खुशी से रहे। आहार का अभाव मार्ग का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य पूरा करता रहा। यात्रा मे उम अभिनव सौन्दर्य के पान से सबका मन भरा रहा, थकान महसूस नही हुई।

यत्र-तत्र ग्रामीण व्यक्ति मिलते थे। उनसे होने वाली बात-चीत से मालूम होता था कि यद्यपि उधर के लोग धर्म-कर्म से कोसो दूर थे, पूजा-पाठ, सध्या, वदन कुछ नही जानते थे किन्तु उनमे ईमानदारी और प्रामाणिकता सोलह आना थी। प्राय सभी मनुष्य दरिद्रता मे ही जीवन व्यतीत करते थे, पर अन्याय का एक पैसा लेना भी कबूल नही करते थे। कभी वहाँ चोरी नही होती थी, डाके नही पडते थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी अर्चनाकुमारी को मिला।

पहाडो मे से रास्ता होने के कारण एक बार उन्हे लगा कि वे रास्ता भूल रही है। अत सामने की ओर से आने वाले एक व्यक्ति से उन्होंने विलासपुर की ओर जाने वाले मार्ग के विषय मे पूछा।

वह व्यक्ति अर्चनाकुमारी व अन्य आर्याओ को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बोला—

"चलिये मैं स्वय ही आपको एक-दो मील चलकर पहुँचा आता हूँ। यह मार्ग वास्तव मे वडा दुरूह है। आप रास्ता भूल गई तो वडी

तकलीफ होगी।" कहते हुए उसने अपने सिर पर रखी हुई गठरी और हाथ मे लिये हुए थैले को वही सडक पर एक ओर रख दिया और भगवती के साथ चलने को तत्पर हो गया।

अर्चनाकुमारी यह देखकर विस्मित हुई और बोली—

"भाई! तुम हमारे साथ दो मील चलोगे और वापिस लौटोगे, तब तक तो काफी समय व्यतीत हो जाएगा।"

"जी हाँ, समय तो कुछ लगेगा ही पर इससे क्या?" राहगीर अत्यन्त सरलता से बोला।

"मेरा मतलब यह है, कि तुम्हारा यह सामान क्या इसी तरह सडक पर पडा रहेगा? कोई इसे उठाकर ले जाएगा नही?"

"इस बात की चिन्ता मत कीजिये महादेवी! इसे कोई नही छूएगा, भले तीन दिन तक यह यही पडा रहे। पर अब आप चलिये अन्यथा आपको अगले गांव तक पहुँचने से पहले रात हो जाएगी।"

"ओह, कितने अच्छे है यहाँ के लोग।" कहती हुई अर्चना-कुमारी चल पडी। उनका हृदय अत्यन्त सन्तोष से भर गया—यह सोचकर कि 'बडे-बडे तूफान आने पर भी अभी तक भारत से प्रामाणिकता का जनाजा नही निकला है।' वे उस सरल ग्रामीण से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछती हुई वहाँ के लोगो के जीवन के विषय मे जानकारी कर रही थी और मार्गदर्शक व्यक्ति अपने सडक पर पडे हुए सामान की किंचित् मात्र भी चिन्ता न करते हुए निश्चितता पूर्वक भगवती के प्रश्नो का उत्तर देता जा रहा था।

दो मील चल चुकने पर भी उसने लौटने की इच्छा प्रगट नही की। अर्चनाकुमारी के बार-बार मना करने पर भी करीब चार मील तक वह साथ-साथ चला और अन्त मे अनमने भाव से वापिस लौटा।

पथ-प्रदर्शक मिल जाने के कारण सूर्य छिपने से पूर्व ही वह विलासपुर पहुँच गई। वहाँ पाँच-छ दिन ठहरी। भगवती का प्रवचन प्रतिदिन रात मे होता। अत्यन्त आतुरता पूर्वक वहाँ के स्त्री-पुरुष उसे सुनते और सराहते। सातवे दिन वहाँ से भाखडा के लिये प्रस्थान कर दिया गया। यद्यपि विलासपुर से भाखडा का एक सीधा और छोटा रास्ता भी था, किन्तु उस रास्ते मे सतलज नदी आती थी और उसे नाव से पार करना पडता था। अत भगवती ने कीर्तिपुर होकर जाने का निश्चय किया। इस रास्ते मे भाखडा करीब सौ मील है, पर चलना तो उसी राह था। अत बिना विलम्ब किये यात्रा प्रारम्भ कर दी गई।

मार्ग वडा भयकर और निर्जन था। आठ-दस मील चलने पर भी यह समझ मे नही आया कि वे लोग किस रास्ते पर चल रहे है और वह रास्ता सही हे या नही।

आकाश को चूमते हुए ऊँचे पहाडो और उन पर ऊगे वृक्षो के अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नजर नही आता था। पहाडो के किनारे-किनारे एकदम सँकरी पगडण्डी थी, उस पर होकर चलना वडी टेढी खीर थी। ऊपर की ओर आकाश को छूती हुई पहाडो की चोटियाँ और नीचे उफनती हुई सतलज नदी। लगता था जैसे साक्षात् मृत्यु ही मुँह खोले प्रतिपल प्रतीक्षा कर रही है कि किस क्षण कोई प्राणी आए और वह उसे उदरस्थ कर ले। चलते समय किंचित् मात्र भी असावधानी हुई नही कि मानव शरीर सैकडो फीट नीचे लुढक कर सतलज की आशुवेग जलराशि मे विलीन हुआ नही। फिर पृथ्वी पर उसका चिह्न मात्र भी कभी दिखाई न देता। ऊपर की ओर देखा नही जाता था और नीचे देखकर दिल दहल जाता था। आँखे चकराने लगती।

ठाकुर छाया की तरह साथ था। उसका जीवन ऐसे ही नदी-नालो और पहाडो मे बीता था। उसने भगवती को सलाह दी कि सब लोग बैठ जाएं और धीरे-धीरे सरकते हुए रास्ता पार करे।

अर्चनाकुमारी ने भी अन्य कोई उपाय न देखकर उस घोर भयानक रास्ते को रेंगकर पार करने का निश्चय किया। अपनी शिष्याओ को उन्होने अपने से आगे किया और धीरे-धीरे सरकते हुए आगे बढने का आदेश दिया। ठाकुर, ठकुरानी सबसे पीछे थे।

मन की दृढता और लगन के कारण वह मीलो लम्बा और भयावना रास्ता भी पार हो गया। प्रसन्नता से उछलते हुए हृदयो को लेकर सबने शिमला-पहाडपुर नामक छोटे से गाँव मे प्रवेश किया और शान्ति की सास ली।

पहाडो के हृदय मे स्थित उस गाँव के निवासियो ने जीवन मे प्रथम बार ही आर्याओ को देखा था। अतएव मारे आश्चर्य और खुशी के वे कोलाहल कर उठे। जब उन्होने जाना कि ये सब उस भयानक रास्ते को पार करके आई है जिस पर इने-गिने जगलियो के अलावा कोई साधारण यात्री तो चल ही नही सकता, तब तो उनकी आँखे कपाल पर चढ गई। वे सब आँखे फाड-फाडकर उन्हे मानवी के रूप मे किन्ही देवियो का अवतार समझकर देखने लगे। उन्हे विश्वास ही नही होता था कि कदम-कदम पर जहाँ मृत्यु का भय है, ऐसी मौत की घाटी को वे कैसे पार कर आई है। असीम श्रद्धा के साथ स्त्री-पुरुष उन्हे बार-बार प्रणाम करने लगे।

समीप ही एक प्राइमरी स्कूल था। वहाँ के हैडमास्टर ने भगवती अर्चनाकुमारी से अपने स्कूल मे ठहरने की प्रार्थना की। भगवती ने इसे स्वीकार किया और कठिन यात्रा से क्लान्त होने के कारण दो दिन वहाँ ठहरकर विश्राम लेने का निश्चय किया।

स्कूल के एक बडे कमरे मे अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित ठहर गई, शेप कमरो मे उस दिन गाँव वालो मे से किमी की वरात ठहरी हुई थी। आर्या सूर्यकुमारी तथा कनककुमारी गाँव मे जाकर निर्दोप आहार लाई पर तब तक दोपहर हो गई थी अत उस दिन सबने एक बार ही आहार करने का निश्चय किया।

शाम होते-होते विवाह की धूम-धाम बढ गई। ढोल, ढपली और अन्य कई तरह के अजीव-अजीव से वाद्य वजने लगे। वरात लडकी वाले के घर की ओर जाने को तैयार हो गई। दूल्हा सिर्फ वारह वर्प का था। देखकर अर्चनाकुमारी को आश्चर्य नही हुआ क्योकि राजस्थान मे भी वाल विवाह होते थे। किन्तु जब वरात वधू को विदा कराके लौटी तब तो उनके आश्चर्य का पारावार न रहा। वारह वर्प के लडके की वधू चालीस वर्प की अधेड औरत थी। उन्होने जीवन मे कभी ऐसा विवाह होते नही देखा था।

स्कूल के हैडमास्टर अर्जुनलाल से उन्होने इस विचित्र विवाह के विपय में पूछा। मास्टर साहव ने वताया कि यहाँ अनमेल विवाह होना कोई आश्चर्य की वात नही है, अधिकतर विवाह यहाँ ऐमे ही होते है। पचास वर्प का वूढा अपनी पोती सी लडकी से विवाह कर लेता है और उमी प्रकार दस वर्प के वालक का अपनी भाभी या चाची मे भी विवाह कर दिया जा सकता है।

अर्चनाकुमारी सुनकर हैरान रह गई। उन्होने कौतूहल वश नई व्याही वधू को वुलाया। वधू सहज ही आ खडी हुई। चालीम वर्प की वहू के लिए लज्जा-शर्म की तो कोई वात ही नही थी। भगवती ने उससे पूछा—

"वहन! इतने छोटे से वालक से विवाह करने पर तुम्हे क्या लाभ होगा?"

वधू चटपट बोल उठी—"लाभ क्या लेना है माताजी, घर का घर मे ही व्याह हो गया बस। मैं उसकी चाची लगती हूँ। उसका चाचा दो महीना पहले मर गया था, सो मैने इसके साथ विवाह कर लिया।"

"पर यह तुम्हे कमाकर कैसे खिलाएगा? तुम्हारी सार-सभाल कैसे करेगा?"

"इसे कमाकर क्या करना है?" वधू साश्चर्य बोली—"मैं ही तो कमाकर इसका पेट भरूँगी। हमारे यहाँ आदमी नही कमाते। वे सिर्फ शराब पीते हैं, जुआ खेलते है, नाचते और गाते है। कमाई सिर्फ औरते करती हैं। यहाँ औरते ही बाजार मे दुकान लगाती है या मजदूरी करती हैं। हम तीन-तीन मन वजन उठाकर पहाडो पर चढ जाती है। आदमियो को कोई तकलीफ नही होने देती।"

"वाह, यह तो बडी अच्छी बात है।" कहती हुई अर्चनाकुमारी हँस पडी और हँसते-हँसते ही फिर पूछ बैठी—

"तो तुम इस व्याह से खुश हो?"

"हाँ खुश नही होती तो करती क्यो? मै इसलिए बहुत खुश हूँ कि मेरा यह पति छोटा है। कम से कम मुझे मारेगा तो नही। इसका चाचा तो शराब पीकर मारते-मारते मेरी हड्डियाँ तोड देता था। कभी-कभी मुझे गिरवी रख देता था और हमेशा बेच देने की धमकी देता रहता था।"

भगवती उस स्त्री की खुशी के कारणो को जानकर स्तब्ध रह गई। उन अशिक्षित तथा सस्कारहीन ग्रामीण स्त्रियो की जिन्दगी के विषय मे यह सब जानकर उनका हृदय करुणा से भर गया। सोचने लगी, कितना अन्तर है शहरी और ग्रामीण जीवन मे। कैसी दयनीय

स्थिति है इनकी। काश ! इन्हे अपने महत्त्व को समझने का अवसर मिलता ।

सहसा उनकी विचारधारा भग हुई और उस वधू के शब्द उनके कानो मे पडे—

"माताजी ! अब मैं जाऊँ ?"

"जाओगी ? अच्छा, प्रसन्न रहना। ईश्वर तुम्हे सुखी रखे।"

"आपके आशीर्वाद से ऐसा ही हो। मेरा सुहाग अमर रहे" कहती हुई उस नव वधू ने भगवती के पैरो पर सिर रखकर प्रणाम किया और हंसती हुई चली गई।



४७

आचार्य सम्राट के चरणों में



"विनोद मुनि ?"

"आज्ञा कीजिए आचार्य !"

सम्पूर्ण श्रमणसघ के सिरमौर और आगम-ज्ञानवारिधि महापूज्य आचार्य श्री आत्मानदजी महाराज की पुकार सुनते ही, उसी क्षण उनके शिष्य आर्य विनोद मुनि करवद्ध होकर आज्ञा की प्रतीक्षा मे आ खडे हुए।

"मुनि प्रवोधकुमार और हेमन्तमुनि क्या किसी आवश्यक कार्य मे सलग्न है आयुष्मन् !"

"पठन-पाठन मे व्यस्त है गुरुवर्य ! आपकी सेवा मे उपस्थित होने के लिए निवेदन करूँ !"

"हाँ, कहना मैं स्मरण कर रहा हूँ।"

आज्ञा पाकर मुनि विनोदकुमार द्रुतगति से गए और अपने वडे गुरु वधुओ के साथ लौट आए।

"गुरुदेव की आकस्मिक वुलाहट के कारण सभी के हृदय मे कारण जानने की परम उत्कण्ठा जागृत हुई। वडे शिष्य हेमन्त मुनि ने ही आचार्य को सवोधन किया—

"हम उपस्थित है गुरुदेव ! आज्ञा देकर अनुगृहीत कीजिये।"

अत्यधिक वयोवृद्धता तथा शारीरिक शक्ति की अत्यन्त क्षीणता,

साथ ही नेत्रो के ज्योतिविहीन होने के कारण पूज्यपाद आचार्य शिष्यो का आना-जाना नही देख सके थे। किन्तु शिष्य का संबोधन सुनकर उन्होने आतरिक हर्षपूर्वक कहा—

"आर्य, ज्ञात हुआ है कि आज सती शिरोमणि और परमविदुषी साध्वी अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित हमारे यहाँ लुधियाने मे प्रवेश कर रही है। तुम उन्हे आदरपूर्वक निवा लाना। देखो ! हमारे यहाँ उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए। आहा, राजस्थान से यहाँ तक आने मे उन्हे कितना कष्ट हुआ होगा ? कितनी परेशानिया उठानी पडी होगी।"

अत्यन्त जर्जर तन मे सूर्य के सदृश तेजस्वी और विराट् आत्मा के इस ममतामय पहलू को देखकर उनका शिष्यवृन्द गद्‌गद् हो उठा। मन-ही-मन उनके मस्तक अपने महामना आचार्य के चरणो पर नत हो गए।

अत्यन्त प्रसन्न होकर आर्य प्रबोध मुनि ने उत्तर दिया—

"आप चिन्ता न करे गुरुदेव ! आपकी आज्ञानुसार हम स्वय महासतीजी की अभ्यर्थना करने जाएगे। उन्हे किसी प्रकार की असुविधा न होने पाएगी। उनका पदार्पण लुधियाने के लिए परम सौभाग्य की बात है।"

"चिरजीव हो आर्य ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी।" कहते हुए आचार्य सम्राट् ने परम सन्तुष्टि का अनुभव किया।

आर्या अर्चनाकुमारी भारत के विशालतम भाखडा बाँध को देखकर कीरतपुर तथा रोपड होती हुई लुधियाना पहुँच रही थी। जिन आचार्य सम्राट् की छत्र-छाया मे सम्पूर्ण श्रमण संघ पनप रहा था, उनके प्रथम बार दर्शन करने की उत्कट आकांक्षा उनके हृदय मे हिलोरें ले रही थी। लगता था कि आज उनके दर्शन करने की उत्कट

अभिलाषा ने अर्चनाकुमारी के उस सुदूर प्रवास की थकावट को विलुप्त कर दिया था। आज का दिन उन्हे अपने जीवन का सबसे अधिक शुभ दिन मालूम हो रहा था।

असीम उल्लास भरे हृदय से ज्योही उन्होने नगर मे प्रवेश किया, देखकर चकित हुई कि आचार्य श्री के तेजस्वी शिष्य उनकी अभ्यर्थना के लिए स्वय ही आ रहे हैं।

वन्दना-नमस्कार के उपरान्त भगवती ने अत्यन्त सकुचित होकर कहा—

"आपने क्यो कष्ट किया भन्ते! हम तो स्वय ही आप सबके दर्शनार्थ पहुँच रही थी।"

उत्तर प्रबोध मुनि ने दिया—"इसमे कष्ट की क्या बात है महादेवी! आप इतना लम्बा प्रवास करके आ रही है। हमारा क्या इतना भी कर्तव्य नही था? इसके अलावा आचार्य प्रवर का आदेश था कि हम आपको ससम्मान लिवा लाएँ और किसी प्रकार का कष्ट न होने दे।"

"ओह, इतना अनुग्रह! आचार्य चरण की उदारता उनके व्यक्तित्व और पद के अनुरूप ही है।" कहती हुई भगवती ने परम श्रद्धापूर्वक परोक्ष मे ही आचार्य को हाथ जोडकर प्रणाम किया। ठीक उसी समय विद्वद्वर्य मुनि हेमन्तकुमार ने कहा—

"अब विलम्ब न करे भगवती! दोपहर हो चुकी है। आप उपाश्रय मे पधार कर आहारादि ग्रहण करे और तत्पश्चात् गुरुदेव के दर्शन।"

"पर हम तो उनके दर्शन करने के पश्चात् ही जलग्रहण करेगी आर्य! आप कृपया मार्गदर्शन करे।" अर्चनाकुमारी के दृढ कण्ठ

स्वर का मुनि एक बार भी विरोध नही कर सके और मार्ग पर आगे बढ गए ।

बाह्य ज्योति के बिना ही आन्तरिक ज्योति से जगमगाते हुए आचार्य को जब भगवती के आगमन का समाचार मिला, वे अत्यन्त व्यस्त हो उठे । आर्याओ ने असीम भक्ति पूर्वक आचार्य को वन्दन किया और पूछा—

"भगवन् ! सुख-शान्ति का अनुभव कर रहे हैं न ?"

"ओह, आर्या अर्चनाकुमारी ! तुम आ गई ? कुशल क्षेम है ?" वृद्ध आचार्य ने हर्षातिरेक से होते हुए कण्ठावरोध सहित पूछा—

"आनन्द है गुरुदेव !"

"मार्ग मे बहुत कष्ट उठाए होगे ? कैसे इतना लम्बा प्रवास किया तुम सबने ?"

"कष्ट कुछ हो सकते है भगवन् ! किन्तु उन सबका कितना उत्कृष्ट और मधुर फल मिला है कि आपके दर्शन हो गए ।"

"काश, आज मैं भी देख सकता कि मरुधर देश ने कैसे नारी-रत्न को पैदा किया है । पर न सही ऐसा, फिर भी मेरा आशीर्वाद है कि तुम साध्वी-शिरोमणि होओ !" कहते हुए आचार्य का मुख-मण्डल विकसित हो उठा ।

"केवल आपका वरद् अनुग्रह चाहिए गुरुदेव ! मेरे लिए यही पाना सबसे बडा पाना है । यश-लाभ की आकाक्षा नही है ।"

"फिर भी वह तुम्हे अवश्य मिलेगा महादेवी ! मेरा मन यही कहता है । पर इतना समय हो गया, तुम लोगो ने अभी आहार-जल तक भी ग्रहण नही किया है । अब जाओ ! साधु की अपने लिये न

सही, जगत् के कल्याण के लिए तो शरीर का ध्यान रखना आवश्यक है। जाओ अब।"

अर्चनाकुमारी आचार्य श्री के प्रशसापूर्ण उद्गारो से अत्यन्त सकुचित हो रही थी। यह आदेश पाकर मानो मुक्त हुई।

"जो आज्ञा" कहकर उन्हे पुन वन्दना की तथा अपने लिए नियत स्थान की ओर अग्रसर हुई।

अगले दिन प्रात काल ही जब वे आचार्य के दर्शनार्थ उपस्थित हुई, आचार्य ने समीप ही बैठे हुए प्रबोध मुनि को आदेश दिया—

"आयुष्मन्! तुम घोषणा करवा दो कि आज से आर्या अर्चनाकुमारी का प्रवचन प्रारम्भ होगा जिससे अधिक से अधिक सख्या मे जनता उसका लाभ उठा सके।

"यह आप क्या फरमा रहे है भगवन्! मैं तो अकिंचन हूँ, मुनिजनो के सम्मुख भला क्या बोल सकूँगी?"

मन्द-स्मित के साथ आचार्य धीरे-धीरे बोले—"आर्या अर्चनाकुमारी! तुम अवश्य ही कल यहाँ आई हो, पर तुम्हारी कीर्ति बहुत पहले ही मेरे पास आ चुकी है। इन्कार नही कर सकोगी, प्रवचन तुम्हे करना ही होगा। मैं वृद्ध हो चुका हूँ, कौन जाने फिर कभी तुम्हारी वाणी सुनने का अवसर मिले या नही। हाथ मे आए हुए समय को मैं खोना नही चाहता।"

अर्चनाकुमारी प्रत्युत्तर नही दे सकी। अपने देश से इतनी दूरी पर भी, श्रमण समाज के गौरव आचार्य का ऐसा अकृत्रिम स्नेह पाकर उन्हे लगा मानो पिता जगतनारायण ही आचार्य के चोले मे आज उपस्थित हुए है।

प्रवचन प्रारम्भ हुआ, बाहर अधीर जनता थी और अन्दर की

ओर के एक वातायन मे महामना आचार्य उत्कठित हृदय से आसीन थे ।

प्रवचन के प्रारम्भ मे कुछ क्षणो तक तो अर्चनाकुमारी का सकोच बना रहा । किन्तु उसके बाद वे भूल गई कि जनता के अतिरिक्त अन्दर आचार्य सम्राट् और समीप ही अनेक मुनिजन भी उनके प्रवचन को अत्यन्त मनोयोग से श्रवण कर रहे है । 'साधक और साधना' पर उनका ओजस्वी और मर्मस्पर्शी प्रवचन धारा-प्रवाह चलता रहा । करीब एक घण्टे पश्चात् उन्होने विराम लिया । जनता मन्त्र-मुग्ध की तरह कुछ क्षण निस्तब्ध बैठी रही, पर अन्त मे हर्ष-ध्वनि करती हुई तितर-बितर हुई ।

ज्योही अर्चनाकुमारी मच पर से उतर कर आचार्य के समीप पहुँची, उन्होने गद्‌गद् कण्ठ से कहा—

"तुम तो सचमुच ही राजस्थान का एक अमूल्य रत्न हो बेटी ! धन्य है वह प्रदेश, जिसने तुम्हे पैदा किया । मुझे श्रमण-सघ पर गर्व है जिसमे तुम जैसी विदुषी साध्वियाँ हैं । इस उम्र मे ही ऐसी मजी हुई भाषा मे इस प्रकार धारा-प्रवाह बोलना और गहन विषय को भी इतने सरल ढग से समझाना तुम्हारी अद्‌भुत प्रतिभा का लक्षण है । अपनी विद्वत्ता के अनमोल खजाने के बल पर ही तो तुम इतना लम्बा प्रवास कर सकी हो, अन्यथा यह सम्भव नही था ।"

आचार्य के 'बेटी' सम्बोधन से भाव-विभोर हुई अर्चनाकुमारी ने अत्यन्त शर्मिन्दा होकर उन्हे टोका—

"बस करे गुरुदेव ! आपके द्वारा प्रशसा पाने योग्य मैं कहाँ हूँ, अभी तो मुझे आपके आगम-ज्ञान-रत्नाकर मे से कुछ रत्न प्राप्त करने है । अगर वे [illegible] तो समझूँगी कि मैने कुछ पाया है । [illegible]

"अवश्य वेटी! अवश्य, अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करूँगा, जो भी मुझसे वन सकेगा। तुम-सी छात्रा पाकर मुझे अपार प्रसन्नता होगी।"

भगवती अत्यन्त प्रसन्न हुई। अगले दिन से ही उन्होंने आचार्य का छात्रत्व ग्रहण कर लिया। वे नियमित रूप से जैनदर्शन और आगमादि पर आचार्य द्वारा की गई व्याख्या तथा गम्भीर विवेचना हृदयगम करने लगी।

वे दग रह जाती थी यह देखकर कि जर्जर और कृश-काय आचार्य के हृदय मे एक ओर जहाँ असीम सरलता और मृदुता है, दूसरी ओर अद्‌भुत ज्ञान का कोप छिपा हुआ है। एक-एक आगम के भावो का स्पष्टीकरण करते हुए वे अन्य अनेक आगमो के उद्धरण दिया करते थे। फलस्वरूप एक शास्त्र का अध्ययन करते हुए भी सहज ही अन्य अनेक वाक्यो का अध्ययन हो जाता था। नेत्रों मे ज्योति न होने पर भी लगता था कि उनकी दिव्य दृष्टि के सामने समग्र शास्त्र खुले हुए हैं। हृदय मे तनिक भी असमजस होने पर वे सिर्फ यही कहते—

"वेटी, अमुक शास्त्र मे अमुक पृष्ठ देखो!" और निश्चय ही पुस्तक के उसी पृष्ठ पर उल्लिखित विपय होता ही। उसमे कभी अन्तर न पटता, लगता था कि सरस्वती उनके जिह्वाग्र पर ही आसीन है। ज्ञान-साधना के वीच मे न तो ज्ञान-दाता को इस वात का पता चला और न ज्ञानार्थी को ही कि समय अनवरत वीतता चला जा रहा है। वर्पाकाल की समाप्ति ने अन्त मे इस ओर ध्यान वॅटाया। अर्चनाकुमारी की मन्जिल अभी दूर थी, अत उन्होने आचार्य से पुन प्रवास की आज्ञा माँगी। सकोचपूर्वक कहा—

"गुरुदेव! अत्यन्त अशक्त होते हुए भी आपने इन पाँच महीनो मे मुझे इतना कुछ दिया है कि उसे मैं सम्हाल सकी तो वह जन्म-

जन्म तक मेरा मार्गदर्शन करेगा। आपकी इस महती कृपा का ऋण चुकाने का मुझ मे सामर्थ्य नही है। किन्तु अब आपकी छत्रछाया से दूर जाने का समय आ गया है। आज्ञा प्रदान कीजिए।"

वृद्ध आचार्य सुयोग्य शिष्या पाकर पूर्ण मनोयोग से अपनी ज्ञान-धारा उसके अन्तर मे उडेल रहे थे। अकस्मात् व्याघात पाकर उनका चित्त खिन्न हुआ।

"तो तुम अब मुझ बूढे को छोडकर चली जाना चाहती हो बेटी!"

"चाहती नही भगवन्! किन्तु जाना तो होगा ही। चातुर्मास के पश्चात् साधुओ के लिए यही तो विधान है।"

"क्या पुन राजस्थान की ओर प्रयाण करोगी?"

"नही, आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो जम्मू होकर काश्मीर की ओर जाने का विचार रखती हूँ।"

"पर उस दुरूह प्रदेश मे पद-यात्रा करने का तो आज तक किसी साध्वी ने प्रयत्न नहीं किया। तुम कैसे जाओगी?" मारे उत्कण्ठा के आचार्य कह उठे।

"आपका आशीर्वाद साथ रहने पर भी कोई कार्य असम्भव हो सकता है, मेरा मन इसे नही मानता भगवन्।"

"किन्तु कदम-कदम पर जहाँ मृत्यु मुँह बाये खड़ी हो, ऐसे भयानक स्थानों पर जाने की मैं आज्ञा दे दूँगा, ऐसा तुम मानती हो?" अपार ममता के कारण उद्विग्न होकर आचार्य ने पूछा।

"जब तक आप मुझे स्नेह के दृष्टिकोण से देखेंगे तब तक तो नहीं देंगे, किन्तु साधु के कर्तव्य को ध्यान मे रखकर जब मेरी ओर

दृष्टिपात करेंगे तो अवश्य ही आज्ञा देगे ऐसा मन कहता है।" अर्चनाकुमारी ने मुस्करा कर कहा।

"तुमसे जीत पाना कठिन है बेटी! पर मुझे यह समझाओ कि तुम उन दुष्कर प्रदेशो मे आखिर क्यो जाना चाहती हो?"

"मेरी चिर-पोषित अभिलाषा है गुरुदेव! कि मैं ऐसे प्रदेशो मे जाऊँ जहाँ के व्यक्ति आर्यत्व को भूल गए हैं। आर्यकुल मे और आर्यक्षेत्र मे जन्म लेकर भी अपने आचरणो से जो अनार्य बने हुए है, मैं उनके बीच जाकर उन्हे आर्यत्व का भान कराना चाहती हूँ। ऐसे शुभ सकल्प को पूरा करने मे तो कदाचित् प्राण-हानि भी हो जाए तो क्या? प्राण-भय से साधु को अपना कर्तव्य छोड देना चाहिए, आप ऐसा आदेश तो देगे नही गुरुदेव?"

आचार्य की वाक्शक्ति पर मानो तुषारापात हो गया। वे अर्चनाकुमारी को देख नही सकते थे, किन्तु ऐसा लगा कि वे अपने काल्पनिक नेत्रो से उनकी प्रतिमा बनाकर उस पर छाई हुई दृढता को देखने लगे।

परिणामस्वरूप उनके बन्द नेत्रो से कुछ अश्रुकण ढुलक पडे।

यह देखकर भगवती का हृदय द्रवित हो उठा, और उन्होने अविलम्ब मौन भग किया। कहा—

"आप किंचित्मात्र भी चिन्ता न करें देव! मुझे और अन्य आर्याओ को कुछ नही होगा। मैं विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि आपका वरद-हस्त मस्तक पर रहा तो हम सभी सकुशल लौटकर पुन आपके दर्शन करेगी।"

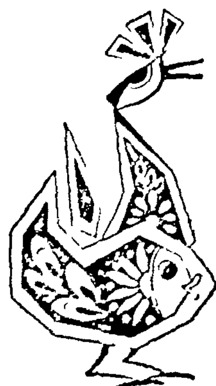
"यह तो सम्भव नही प्रतीत होता · पर हाँ, तुम्हे अब रोकूँगा नही। ईश्वर की कृपा और मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अपने उद्देश्य मे सफल होती हुई तुम निश्चय ही सकुशल लौटोगी।

आज्ञा पाकर प्रसन्नता का अनुभव करती हुई किन्तु आचार्य श्री के कथन के प्रथमांश पर उद्विग्न होती हुई अर्चनाकुमारी दुविधा में पड गई कि वे हर्ष मनाएँ या दुख। सोचने लगी—'क्या मैं इस पुनीत आत्मा के पुन दर्शन नही कर सकूँगी?' पर फिर उनके कथन को ममता का अतिरेक मानकर बल-पूर्वक मुस्कराती हुई बोली—

"आज्ञा पाकर कृतज्ञ हूँ देव! मेरा मार्ग सुगम हो गया।"

"अवश्य महादेवी!"

"तो अब आज्ञा दीजिए! आज मैंने आपका बहुत समय ले लिया। कहती हुई अर्चनाकुमारी उन्हे वन्दन कर अपने निवासस्थान की ओर रवाना हो गई। □



४८

काश्मीर की ओर

●

अगहन मास के कृष्ण पक्ष मे प्रतिपदा को ही अर्चनाकुमारी ने जम्मू की ओर प्रस्थान किया और रास्ते मे होश्यारपुर, मुकेरियां, पठानकोट, माधोपुर तथा सतवारी आदि स्थानो पर थोडे-थोड़े समय ठहरते हुए पौप कृष्णा द्वितीया को एक बजे जम्मू मे प्रवेश किया। पुन वर्षावास आने मे छ मास से भी अधिक समय था। इस बीच इनका काश्मीर की ओर हो आने का निश्चय था। किन्तु ज्योही अपने इस विचार को अर्चनाकुमारी ने वहाँ के जैनसघ के सम्मुख-रखा, मानो वहाँ विस्फोट हो गया हो, ऐसा प्रतीत होने लगा। सघ-के अध्यक्ष ने अपनी आँखें कपाल पर चढाकर वडे भयभीत स्वर मे रास्ते की भयकर कठिनाइयो की लम्बी-चौडी सूची उनके सामने उपस्थित करदी और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—

"आप यह कैसा विचार कर रही है भगवती ? उस ओर जाने की तो साधुओ की भी हिम्मत नही होती। अगर किसी ने साहस किया भी है, तो वे मार्ग मे ही रुग्ण हो गए हैं। उधर का जल-वायु स्वास्थ्य के अनुकूल नही है। रास्ते मे जगह-जगह हिमपात और उनके कारण भयकर वर्फानी हवा के थपेडे क्या आप सबको वर्दाश्त हो सकते हैं ? आप न तो गरम कपडे ही पहन सकती है, न गद्दा-

रजाई ओढने-बिछाने के काम मे ले सकती है। फिर किस प्रकार भाकर शीत से बचाव कर सकोगी ?"

अर्चनाकुमारी यह सुनकर मृदुता पूर्वक हस पडी। कहा—

"भाई साहब ! पहाडी स्थानो के अतिरिक्त भी तो शीतकाल मे सभी जगह सर्दी पडती है। तब भी साधु इन सब चीजो की अपेक्षा नही रखते सर्दी-गर्मी का साधुओ को क्या भय ?"

"पर इसके अलावा और भी तो अनेक कारण है भगवती !" नाकि सकोचपूर्वक अभ्यर्था नोरे।

"और कारण क्या ?" अर्चनाकुमारी की वाणी मे आश्चर्य मिश्रित कौतूहल था।

"रास्ते मे ऊचे-ऊचे पहाड, उन पर सीधी चढाइयाँ और जगह-जगह सैनिको के पडाव भी मिलते है। उनमे से अधिकाश दुश्चरित्र और बदमाश होते है। महिलाओ की हिम्मत उस ओर जाने की नही हो सकती।"

"बदमाश और गुण्डे कहाँ पर नही होते है बन्धु !" अर्चनाकुमारी ने सहज-भाव से उत्तर दिया—"वर्ष मे हम लोग आठ महीने भ्रमण करती है और इस बीच सभी तरह के व्यक्तियो का सामना होता है पर कोई भी हमारा कुछ बिगाड नही सकता। साध्वियो की शक्ति से आपका परिचय नही है शायद ! इस सबध मे आपका भय निर्मूल है। साध्वी-जीवन भय की नही, वरन् निर्भयता की नीव पर खडा होता है। जरा-जरा-सी बातो से घबरा जाना हमारे स्वभाव के विपरीत है, और इसीलिए मै समझती हूँ कि आपके बताए हुए ये सभी कारण निराधार है।"

"यह सही है कि मार्ग मे कठिनाइयाँ अवश्य है और उन्हे पार करने मे कुछ कष्ट हो सकता है। पर इससे क्या ? साधी मार्ग तो

रुकावटो से अपना मार्ग नही छोडता। आप चिन्ता न करे। त्याग, तपस्या और साधना मे अपूर्व बल होता है और उस पर मुझे पूर्ण विश्वाम है।"

अर्चनाकुमारी की दृढता से सब नत-मस्तक हो गए। एक शब्द भी कहने का साहस अध्यक्ष महोदय को फिर नही हुआ। भगवती के आत्म-विश्वास पर सबका विश्वास हो चला और मूक समर्थन देकर उन्होंने शुभ कामना की।

चैत्र कृष्णा पचमी का दिन काश्मीर यात्रा के लिये नियत किया गया। भगवती की दृढता और उत्साह देखकर जम्मू की महि-लाएँ पहले ही विस्मय से अभिभूत हो गई थी और अब उन्हे प्रस्थान करने की तैयारी करते देखकर उनमे से कइयो की इच्छा भगवती के साथ यात्रा करने की हुई। फलस्वरुप चौदह-पन्द्रह स्त्रियो ने उनके साथ यात्रा करने का कार्यक्रम बना लिया। यह देखकर अर्चनाकुमारी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और बहनो के इस इरादे का उन्होने हृदय से स्वागत किया।

किन्तु रवाना होने के ठीक एक दिन पहले देखते-देखते ही आकाश काली घटाओ से व्याप्त हो गया और घनघोर वर्षा आरभ हो गई। साथ ही ओले गिरते रहे। यह देखकर अर्चनाकुमारी के साथ चलने वाली बहनें घबरा गई और उनका सारा उत्साह शिथिल होने लगा। यह देखकर अर्चनाकुमारी ने उन्हे मीठी झिडकी दी —

'यह क्या? इस साहस पर ही क्या तुम काश्मीर की यात्रा करोगी? तनिक-सी वर्षा होते तुम लोगो का उत्साह ठडा हो गया? घबराओ मत, हम कल ही रवाना होगे। कोई शक्ति ऐसी नही जो हमे रोक सके।"

वृद्ध होने पर भी उसमे नवयुवक के समान स्फूर्ति थी। वातावरण भगवती के परिहास से मधुर हो उठा था।

ठाकुर ने अन्दर जाते ही पुकारा—

"ठकुरानी कहाँ हो तुम ?"

"मैं इधर हूँ।" एक कमरे मे से आवाज आई।

"अभी तक क्या कर रही हो तुम ?" रवाना होने का तो समय हो गया।" ठाकुर ने कमरे के द्वार तक पहुँचते हुए कहा।

ठकुरानी वाल गूँथ रही थी। बोली—"बस अभी आई।"

"ओहो, कौन निखरेगा अभी तुम्हारे वालो को ?"

"क्यो ? क्या तुम साथ नही चल रहे हो ?" ठकुरानी ने मौका पाकर दवी हुई हँसी से पति की ओर देखा।

"ओपफोह, जव मैं साथ हूँ तो फिर कही भी कघी कर लेना।" ठाकुर झुंझलाया।

"वह तो करूँगी ही।" रूपा ने ठाकुर को फिर छेडा और साथ ही अपनी गठरी लेकर कमरे से वाहर आ गई।

' ठाकुर रूपा की वातो पर भन्ना रहा था किन्तु उसे तैयार होकर रवाना होते देख सब कुछ भूल गया और वाहर चल दिया। भगवती रवाना हो चुकी थी। वृहत्-जन-समूह उसके पीछे चल रहा था। ठाकुर दपती ने शीघ्रतापूर्वक कदम वढाए और वे शीघ्र ही सवके साथ हो लिये। □

यह सुनकर स्त्रियो का गया हुआ साहस पुन लौट आया। वे यात्रा की तैयारी मे जुट गई और, वास्तव मे ही अगले दिन आसमान साफ हो गया तथा दिवाकर अपनी सहस्र रश्मियो के साथ भगवती के काफिले को प्रस्थान का सदेश देने लगा। आर्याओ की तरह ही साथ चलने वाली स्त्रियों ने एक-एक थैला हाथ मे लिया जिनमे पहनने की सिर्फ दो-दो पोशाके थी, और ओढने की शालें अपनी कमर से बाँध ली। अधिक सामान ले चलना सभव ही नही था।

विदाई का दृश्य अपूर्व था। जाने वालो के हृदय उत्साह से परिपूर्ण थे और विदा देने वालो के शुभ कामना से। ठाकुर अपनी भारी-भरकम लाठी लिये सबसे आगे खडा था। उसका हृदय मारे खुशी और जोश से फटा पड रहा था। वह सोच रहा था, मेरा असली सेवा-कार्य तो अब शुरू हो रहा है। सहसा उसे ठकुरानी का ध्यान आया। देखा, वह अब तक नही आ पाई थी। यह देखकर वह उसे शीघ्र बुला लाने के लिए लपक कर भवन के अदर की ओर जाने लगा।

भगवती अर्चनाकुमारी ने यह देखा तो हँसते हुए टोक दिया—

"कहाँ भागे जा रहे हो ठाकुर? काश्मीर चलने का इरादा छोड दिया क्या?"

ठाकुर शर्मा गया। बोला—"यह कैसी बात कह रही है भगवती! अभी तो ठाकुर जिन्दा है। अगर मर भी जाए तब भी आपके साथ काश्मीर तो चलेगा ही।"

"वाह, मरकर कैसे चलोगे? क्या भूत बनकर? तब तो हमें मार्ग मे और भी तकलीफ दोगे।"

'आप तो हँसी कर रही है भगवती! मैं अभी आया, जरा ठकुरानी को बुला लाऊँ।" कहकर वह अन्दर की ओर भाग गया।

यह सुनकर स्त्रियो का गया हुआ साहस पुन लौट आया। वे यात्रा की तैयारी मे जुट गई और, वास्तव मे ही अगले दिन आसमान साफ हो गया तथा दिवाकर अपनी सहस्र रश्मियो के साथ भगवती के काफिले को प्रस्थान का सदेश देने लगा। आर्याओ की तरह ही साथ चलने वाली स्त्रियो ने एक-एक थैला हाथ मे लिया जिनमे पहनने की सिर्फ दो-दो पोशाकें थी, और ओढने की शाले अपनी कमर से बाँध ली। अधिक सामान ले चलना सभव ही नही था।

विदाई का दृश्य अपूर्व था। जाने वालो के हृदय उत्साह से परिपूर्ण थे और विदा देने वालो के शुभ कामना से। ठाकुर अपनी भारी-भरकम लाठी लिये सबसे आगे खडा था। उसका हृदय मारे खुशी और जोश से फटा पड रहा था। वह सोच रहा था, मेरा असली सेवा-कार्य तो अब शुरु हो रहा है। सहसा उसे ठकुरानी का ध्यान आया। देखा, वह अब तक नही आ पाई थी। यह देखकर वह उसे शीघ्र बुला लाने के लिए लपक कर भवन के अदर की ओर जाने लगा।

भगवती अर्चनाकुमारी ने यह देखा तो हँसते हुए टोक दिया—

"कहाँ भागे जा रहे हो ठाकुर? काश्मीर चलने का इरादा छोड दिया क्या?"

ठाकुर शर्मा गया। बोला—"यह कैसी बात कह रही है भगवती! अभी तो ठाकुर जिन्दा है। अगर मर भी जाए तब भी आपके साथ काश्मीर तो चलेगा ही।"

"वाह, मरकर कैसे चलोगे? क्या भूत बनकर? तब तो हमे मार्ग मे और भी तकलीफ दोगे।"

"आप तो हँसी कर रही हैं भगवती! मैं अभी आया, जरा ठकुरानी को बुला लाऊँ।" कहकर वह अन्दर की ओर भाग गया।

वृद्ध होने पर भी उसमे नवयुवक के समान स्फूर्ति थी। वातावरण भगवती के परिहास से मधुर हो उठा था।

ठाकुर ने अन्दर जाते ही पुकारा—

"ठकुरानी कहाँ हो तुम ?"

"मैं इधर हूँ।" एक कमरे मे से आवाज आई।

"अभी तक क्या कर रही हो तुम ?" रवाना होने का तो समय हो गया।" ठाकुर ने कमरे के द्वार तक पहुँचते हुए कहा।

ठकुरानी बाल गूंथ रही थी। बोली—"बस अभी आई।"

"ओहो, कौन निखरेगा अभी तुम्हारे बालो को ?"

"क्यो ? क्या तुम साथ नही चल रहे हो ?" ठकुरानी ने मौका पाकर दबी हुई हँसी से पति की ओर देखा।

"ओपफोह, जब मैं साथ हूँ तो फिर कही भी कघी कर लेना।" ठाकुर झुंझलाया।

"वह तो करूंगी ही।" रूपा ने ठाकुर को फिर छेडा और साथ ही अपनी गठरी लेकर कमरे से बाहर आ गई।

'ठाकुर रूपा की बातो पर भन्ना रहा था किन्तु उसे तैयार होकर रवाना होते देख सब कुछ भूल गया और बाहर चल दिया। भगवती रवाना हो चुकी थी। वृहत्-जन-समूह उसके पीछे चल रहा था। ठाकुर दपती ने शीघ्रतापूर्वक कदम बढाए और वे शीघ्र ही सबके साथ हो लिये। □

४९

देश के सजग प्रहरी



पहला पहाड जम्मू से नौ मील दूर नगरोटा मे पडा। करीब दो सौ नर-नारी वहाँ तक साथ आए। नौ मील का रास्ता सहज ही पार हो गया। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, प्राकृतिक सुषमा का एकछत्र राज्य दिखाई देता था। किसी को थकावट महसूस नही हुई। नगरोटा निवासी आर्याओ के आगमन का समाचार सुनकर दर्शनार्थ उलट पडे। अब तक के समय मे उन्होंने एक-दो बार साधुओ के दर्शन अवश्य किये थे, किन्तु नारी जाति भी वैसा त्यागमय जीवन अपना सकती है, वे यह नही जानते थे। अत भगवती अर्चनाकुमारी और उनकी शिष्याओ के प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा का पार न रहा। असीम-भक्ति पूर्वक उन्होने आर्याओ का स्वागत किया और उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था की।

सूर्यकुमारी और कनक, आहार की गवेषणा के लिये निकली तथा समस्त सहयात्रियो ने अपने साथ लाया हुआ भोजन किया। घंटे दो घंटे विश्राम करने के बाद जम्मू निवासी अपनी शुभ कामनाएँ वही छोडकर सुविधानुसार लौट चले। ठीक उसी समय जम्मू से आए एक व्यक्ति ने डाक लाकर भगवती को दी। जगह-जगह से आए हुए सभी पत्र उनकी यात्रा के लिए शुभ कामना से भरे थे। उन्ही मे एक पत्र आचार्य सम्राट का लुधियाने से आया हुआ था, दूसरा आचार्य

यशोभूषण का मारवाड से तीसरा जानकी का। कई दिनो से जानकी का पत्र न पाकर अर्चनाकुमारी का मन चिंतित था, पर आज उसके आ जाने से चिन्ता राहत मे बदल गई। उसने कुशल समाचारो के अलावा लिखा था कि—"मैं भी काश्मीर प्रवास मे आपके साथ चलना चाहती हूँ।"

जानकी ने अर्चनाकुमारी के हृदय मे अपने सहज और मधुर व्यक्तित्व के कारण एक अमिट स्थान बना लिया था तथा उनके सयम-निष्ठ मन मे कुछ सरसता भर दी थी। उसका सम्पर्क उन्हे अति-प्रिय लगता था किन्तु इस प्रवास मे वह साथ रह सकेगी, इसकी उन्हे आशा नही थी। वे सोचती थी कि उसका शरीर उसके मन के समान ही कोमल है और वह यात्रा मे आने वाली कठिनाइयो को सहन नही कर सकती। अत उन्होने लिख दिया—

"जानकी, अगर तुम अभी आ गई तब तो फिर हो चुकी हमारी यात्रा। न तुम चलोगी और न ही मुझे आगे बढने दोगी। तुम्हारा सुकुमार शरीर भयकर शीत, और पर्वतीय प्रदेशो के कष्ट बर्दास्त नही कर पायेगा।"

पत्र उसी समय रवाना कर दिया गया और अगले दिन प्रात - काल ही अर्चनाकुमारी ने ऊधमपुर के लिए प्रस्थान किया। नगरोटा निवासियो ने उन्हे कुछ समय और रुकने का आग्रह किया, किन्तु भगवती ने उन्हे वापसी मे लौटने का आश्वासन देकर सन्तुष्ट किया। जम्मू के स्त्री-पुरुष सब जा चुके थे। साथ मे चलने वाली दस-पन्द्रह महिलाएँ और ठाकुर-ठकुरानी ही अब उनके साथ थे। स्त्रियाँ सभी आनन्दीस्वभाव की थी अत मार्ग मनोविनोद पूर्वक और प्रकृति के अनुपम दृश्यो को देखते हुए कटने लगा।

पाकिस्तान की सीमा वहाँ से निकट थी, और उसके आक्रमण का खतरा होने के कारण जगह-जगह सेना के कैम्प थे। साधारण लोगो का खयाल है कि मिलिटरी मे सिर्फ हैवान होते हे, इन्सान नही जम्मू के व्यक्तियो ने भी यही आशका व्यक्त की थी। किन्तु जब अर्चनाकुमारी इन लोगो के बीच से गुजरी तो यह देखकर दग रह गई कि देश की रक्षा के लिए जान हथेली पर लिये रहने वाले इन व्यक्तियो के हृदय मे अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक स्नेह और श्रद्धा का स्रोत बहता हे। उनके दिलो मे इन्सान के लिये आदर और प्रेम की जगमगाती हुई रोशनी है। भारतीय सेना के नौजवान सिर्फ युद्ध करने के लिए ही वहाँ नही पडे थे, अपितु देश के निर्माण कार्य मे भी सहायता देते थे। पर्वतीय प्रदेशो मे न तो पानी बरसते देर लगती है और न बाढ आते। बाढ आते ही सडके टूट जाती, पुल गिर जाते, और इसके कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाते। लेकिन बहादुर सैनिक बात की बात से पुलो का नव-निर्माण और सडको की मरम्मत कर देते।

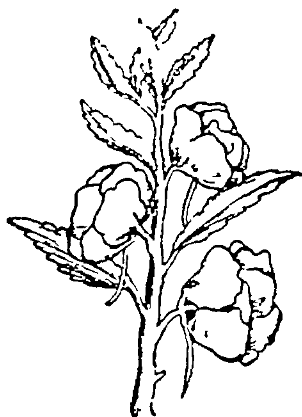
अर्चनाकुमारी ने देखा—मीलो दूर तक सैनिको की छावनियाँ थी। जब वे उधर से गुजरती, सैनिको के जत्थे के जत्थे उनके पास आते, प्रणाम करते और अपने पास का रूखा-सूखा खाद्य पदार्थ, डबलरोटी, बिस्कुट, चने या मूंगफली जो कुछ भी होता उसे लेने के लिए बच्चो के समान जिद करते। ले लेने पर अत्यन्त खुश होते, मानो उन्हे स्वर्ग ही मिल गया हो। कभी कभी तो वे भगवती को बिना थोडा-बहुत उपदेश सुनाये नही जाने देते, आग्रह करते ही रहते। भगवती को उन पर बडी करुणा आती और आगे बढते समय उन्हे बहुत दुःख होता। सुविधानुसार वे कही-कही प्रवचन देती और उनसे

प्रभावित होकर अनेक सैनिक छोटी-मोटी [illegible] लेते। जिस स्थान से वे आगे बढ़ती कई व्यक्ति [illegible] साथ चलते। कभी-कभी तो साथ चलने के लिये वे प्रति[illegible]।

यह सब देखकर अर्चनाकुमारी सोचती—'[illegible] कहलाए जाने वाले क्या ये ही सरल और निष्पाप युवक [illegible] पिता, स्वजन-परिजनो से दूर, सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास [illegible] करते हुए उन स्नेह-शील युवको को देखकर अर्चनाकुमारी [illegible] करुणा मे ओत-प्रोत हो उठता। यद्यपि साधुओ को [illegible] अतिरिक्त सदैव ही विचरण करना पडता है। अर्चनाकुमारी भी विचरण करती चली आ रही थी। स्थान-स्थान पर नगरो और गाँवो के व्यक्ति उन्हे विदाई देते थे, किन्तु उनका वीतराग मन कभी ऐसे दुख का अनुभव नही करता था, जैसा उन्हे इन घर-बार छोडकर इतनी दूर रहते हुए सैनिक युवको से विदा होते हुए होता था। माँ की ममता और पिता के वात्सल्य से वंचित उन पुत्रो के लिए साध्वी होने पर भी कभी-कभी उनके नेत्रो मे अश्रु छलक आते। वे सोचने लगती—'इनमे से कौन जाने कितने भाग्यवान लौटकर अपने माता, पिता, पत्नी और पुत्र से मिल पायेंगे।'

ठाकुर बजरंग इन दिनो अत्यन्त प्रसन्न था। पूरा जीवन जिन लोगो की तरह गुजार चुका था, उन्ही लोगो के बीच अपने को पाकर उसके हर्ष का पारावार न था। ज्योही वह सैनिको को अपना परिचय देता वे सभी ठाकुर को सम्मान की दृष्टि से देखते। ठाकुर भी मौका पाकर उन्हे लडाई के अनेक 'गुर' बताता। अपने सधे हुए हाथो से पेड-पौधो को लक्ष्यकर निशाना कैसे लगाया जाता है, यह सिखाता। साथ ही अपने जीवन को नया मोड देने वाली भगवती अर्चनाकुमारी की महिमा का बडे गर्व से बखान करता। उनके त्याग

और तपस्यामय जीवन का परिचय देता। उनके निष्कपट और गहरी श्रद्धा से कहे गये सत्य का विद्युत के समान असर पड़ता और भगवती के प्रति सैनिक युवकों का सम्मान सौ गुना बढ़ जाता। परिणामस्वरूप उनके दर्शन, उपदेश, आशीर्वाद अथवा उनके मुंह से बोले हुए दो बोल भी जिस किसी को सुनने के लिये मिल जाते वही अपने को धन्य मानता। तीन दिन इसी प्रकार व्यतीत हुए और चौथे दिन सब लोग ऊधमपुर आ पहुँचे। □



५०

विन वुलाये

●

ऊधमपुर पहुँचने के वाद से ही जो वारिश शुरू हुई तो पाँच दिन तक रुकी ही नही । वीच वीच मे ओले भी गिरते रहे । मालूम हुआ कि घोर वर्षा आँधी के कारण काश्मीर के रास्ते मे रामवन की पहाडी गिर पडी है और उसके कारण काश्मीर जाने का रास्ता छ-सात दिन के लिये वन्द कर दिया गया है ।

प्रवास मे वाधा आ जाने के कारण सभी के मन खिन्न हो उठे । ठाकुर तो वरावर वरामदे मे वैठा-वैठा वरसात को गोली मार देने की धमकी देता रहता था । वीच-वीच मे रूपा पति को चिढा आती । कहती—

"मार क्यो नही देते एकाध गोली ? गोली के नाम पर गाली ही तो दिये जा रहे हो !"

पत्नी के उपहास भरे शव्द और उनके पीछे दवी हुई मुस्कुराहट ठाकुर के क्रोध को और भी भडका देती । कहता—

"तुम भगवती के पास जाओ ठकुरानी, वोलो मत, नही तो ·।"

"मुझे भी गोली मार दोगे ? वाप रे ! मैं तो चली, तुम देते रहो जी भर कर गालियाँ ।" कहती हुई ठकुरानी हँस कर भाग जाती और ठाकुर हँडिया-सा मुंह वनाए वही वैठा रहता ।

पर ठाकुर की गालियाँ शायद व्यर्थ नही गई और पाँचवे दिन वर्षा वन्द हो गई। भगवती के काफिले मे भी नव-जीवन का सचार हुआ और पुन यात्रा का कार्यक्रम बनने लगा। भगवती इस विषय मे आर्या सूर्यकुमारी को आवश्यक निर्देश दे ही रही थी कि एकाएक ठाकुर के साथ आती हुई जानकी पर उनकी दृष्टि पडी।

सामने भूत देखकर भी शायद अर्चनाकुमारी को उतना आश्चर्य न होता, जितना उस समय जानकी को देखकर हुआ। चकित होकर बोली—

"जानकी तुम ?"

"जी, मैं ही हूँ, जानकी।"

"कैसे आ गई तुम ?"

"पहले ट्रेन मे बैठी और उसके वाद वस मे।"

उत्तर सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पडी। बोली—

"यह तो मैं भी जानती हूँ। पर पूछती हूँ कि अचानक कैसे आ गई तुम !"

"और क्या ढोल वजाकर आती मैं ?" हर्ष-विह्वल जानकी ने फिर टेढा जवाब दिया। भगवती मुस्कराने लगी। जानकी की खुशी का अनुमान उन्हे सहज ही लग रहा था। विषय वदलकर बोली—

"लम्बा सफर करके आई हो जानकी ! थक गई होओगी। कुछ विश्राम करो और जाकर खाना खाओ।"

भोजनादि से निवृत्त होकर जब जानकी अर्चनाकुमारी के पास आकर बैठी तो उन्होने पूछा—

"मेरा पत्र मिल गया था तुम्हे ?"

"जी !"

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

"अरे, मेरा पत्र तुम्हे मिल गया था, तब फिर अभी क्यो आ तुम ?"

"इच्छा हो गई आपके दर्शन करने की।"

"अच्छा तो दर्शन हो गये, अब कब लौटोगी ?"

"जब इच्छा होगी लौट जाऊँगी, आप मेरी चिन्ता न करें। इसके अलावा मुझे मालूम नही था कि साधु-संत आने वाले का स्वागत इस प्रकार करते हैं, अन्यथा नही आती।"

"मेरा मतलब यह नही था", भगवती को लगा कि उनके बात करने का तरीका गलत हो गया है। वे मृदुतापूर्वक बोलीं—

"मेरे कहने का मतलब यह था कि तुम्हारा आगे का क्या कार्य-क्रम है ?"

"कुछ नही।" जानकी नाराज हो रही थी।

"कुछ नही कैसे ? हम तो कल यहाँ से प्रस्थान कर [रहे हैं। तुम चलोगी न हमारे साथ ?"

"नही।"

"नही ? तो फिर क्या करोगी ?"

"मालूम नही ।"

अर्चनाकुमारी ने हँसते हुए कहा—

"तुम्हे क्रोध कम तो नही आता जानकी ?"

"क्यो नही आएगा क्रोध ? सैकडो मील दूर से भागी आ रही हूँ क्या आपका 'चली जाओ' सुनने के लिये ?"

"हमे तो खतरनाक जगल, पहाड और घाटियाँ पैरो से चलकर पार करनी हैं।"

"हाँ, मेरे तो जैसे पैर ही नही हैं।" जानकी ने रूठ कर उत्तर दिया।

अर्चनाकुमारी को हँसी आ गई—

"अरी पगली! पैर तो दूध-मुँहे बच्चे के भी होते हैं। पर उनसे क्या, वह पहाड पर चढ सकता है?"

"मैं दुधमुंही बच्ची नही हूँ भगवती! और ईश्वर के दिये हुए मेरे दोनो पैर भी सही-सलामत है।"

"तो अब तुम लौटोगी नही अभी, यही बात है न?"

"जी हाँ, आपका अनुमान सत्य है। मैं लौट जाने के लिये नही आई।"

"तब तो लगता है कि हमारी यात्रा समाप्त हो चुकी।"

"समाप्त हो चुकी! कैसे?" जानकी की आँखे फैल गई।

"और नही तो क्या? तुम साथ रहकर न स्वय चलोगी और न मुझे ही चलने दोगी। भूख, प्यास नीद या थकान इन सब बहानो के मारे परेशान करती रहोगी।"

"मैं जरा भी परेशान नही करूँगी, आप मुझे ले तो चलिये!" कहते हुए जानकी ने बच्चो की सी सरलता मे अपनी दोनो बाँहे भगवती के गले मे डालदी।

"अरे, यह क्या बचपना करती हो?" कहते हुए अर्चनाकुमारी ने उसके हाथो को अपने गले मे से हटाने का प्रयत्न किया। पर जानकी जिद करती हुई बोली—

"नही, पहले आप कहिये कि मुझे अपने साथ ले चलेंगी। क्या मेरा मन पहाडो मे घूमने को नही करता?"

"अच्छा बाबा, ले चलूंगी बस? परास्त होती हुई अर्चना-कुमारी ने कहा, और बलपूर्वक उसके हाथो को हटाती हुई बोली—

"पर याद रखना ! रास्ते मे जरा भी गडबड की तो उसी दिन रवाना कर दूँगी।"

"मँजूर, मँजूर है भगवती ! आप कितनी अच्छी है ?"

"हाँ, अच्छी हूँ । तुम्हारा कहना मानती रहूँ तो अच्छी हूँ ?" अर्चनाकुमारी ने कृत्रिम क्रोध मे कहा।

जानकी हँस पडी । बोली कुछ नही ।

अगले दिन ज्योही सूर्य की किरणे धरती पर गिरी सबने उत्साह के साथ रामवन की ओर प्रयाण किया। अर्चनाकुमारी का हृदय अत्यन्त प्रफुल्ल था। प्रथम तो यात्रा पर आगे बढने की खुशी, दूसरे जानकी का आगमन, दोनो ही कारणो ने उनके मन को प्रसन्नता से भर दिया था। ऊपरी मन से वे जानकी से नाराज अवश्य हुई थी किन्तु उसके साहचर्य से उनकी आतरिक प्रसन्नता कई गुनी बढ गई थी। जानकी छाया की तरह साथ थी। उसका हृदय पहाडी सौन्दर्य देखने की खुशी मे बल्लियो उछल रहा था।

कुछ दूर चलकर ही उसका मन मुग्ध हो गया। भीड के बडे-बडे पेडो की कतारो के बीच चलते समय सुपारी, नारियल और मौलसिरी की सोना लुटाती हुई बयार उसे बडी भली लग रही थी। चारो ओर पर्वतमालाओ से घिरी हुई घाटी, जिसके ओर-छोर पारिजात, मदार और कुद के फूलो की सुरभि के ऐसे सुवासित हो रहे थे जैसे कही पर चन्दन और अगरू की अगणित धूपवत्तियाँ जल रही हो। सीढ़ीनुमा छोटे-छोटे खेतो पर नई फसल का तारुण्य लहरा रहा था। कही-कही स्तूपाकार सूखी हुई सुनहरी घास के ढेरो पर सूर्य की मन्दरश्मियाँ उन्हे तपे हुए स्वर्ण के समान दमका रही थी। और कही-कही अलावो से उठती हुई गोबर के धुँए से मिली भीगी मिट्टी की सोंधी सुगन्ध यात्रियो का स्वागत कर रही थी।

पहाड की ऐसी सीधी चढाई से जानकी अनभिज्ञ थी। वह राजस्थान मे बडी हुई थी जहाँ चारो ओर जहाँ तक दृष्टि जाती है अधिकतर समतल मैदान ही दिखाई देते है। पर आज यह विकट चढाई मानो उसे चुनौती दे रही थी। पहाडियो के बीच से पतली पगडडी किसी सूखी सरिता के क्षीण कलेवर की भाँति टेढी-मेढी होकर चली जा रही थी, और उन पर सूखी और फिसलती हुई बाँज की पत्तियो की तहे जम गई थी। तीखी-तीखी पिरुल की सुइयाँ जानकी की साडी पर कीमती चप्पलो के इर्द-गिर्द लिपटकर उसकी एडियो को छेड रही थी। उन्हे निकालने पर कही-कही खून की कई बूंद जमकर उसकी गोरी एडियो को और भी सुन्दरता प्रदान कर रही थी।

काँटे निकालने के प्रयत्न मे उसे बार-बार पिछडते देखकर अर्चनाकुमारी ने कहा—

"जानकी ! जल्दी-जल्दी चलो, मार्ग मे ही अन्यथा रात्रि हो जाएगी। फिर हम ठहरेगे कहाँ !"

"चल तो रही हूँ भगवती ! क्या करूं ये काँटे जो नही चलने देते।" जानकी ने मुँह बनाया और धप से एक जगह बैठ गई।

"वाह ! चप्पले पहने हो, फिर भी काँटो को कोस रही हो ? हमे देखो ! हम तो नगे पैर ही चल रहे है।" कहते हुए उन्होने जानकी का हाथ थामा और सावधानी से आगे बढ चली।

शाम होने से पहले सब लोग 'कुद' पहुँच गए। 'कुद' एक छोटा-सा पहाडी कस्बा था। सब थके हुए यात्रियो ने वही रात्रि विश्राम करने की योजना बनाई। □

५१
बाल-बाल बचे

रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रात काल सब लोग नूतन स्फूर्ति का अनुभव करने लगे और उसी दिन 'पल्लीटाय' के लिये रवाना हो गए। सडक की राह जाने से कई मील का चक्कर पडता था अत अर्चनाकुमारी ने पगडण्डी के रास्ते से चलने का विचार किया। मार्ग की जानकारी करके सब लोग चल पडे। मुश्किल से एक मील चले होगे कि आगे महाकाय पिशाच के समान रास्ता रोके हुए पहाड दिखाई दिया। पगडण्डी का कही पता न था। पहाड बिलकुल सीधा और भयानक था। सब उसे देखकर घबरा गए, किन्तु भगवती के हृदय मे भय का लेश भी न था। उन्होंने ठाकुर को आदेश दिया कि आसपास मे कोई जानकर व्यक्ति हो तो उसे ले आए ताकि मार्ग की सही जानकारी की जा सके।

पर ठीक उसी समय उनकी निगाह पर्वत से उतरते हुए एक व्यक्ति पर पडी और उन्होने ठाकुर को जाने से रोककर उस ग्रामीण से मार्ग के विषय मे पूछा। वह व्यक्ति पर्वत की उस तलहटी मे भगवती तथा अन्य महिलाओ को देखकर चौक पडा और घबराकर बोला—

"आप रास्ता भूल गयी है अम्बे! यद्यपि पहाड के उस ओर ही आपका गन्तव्य स्थान है, पर इसे पार करना ही बडी

है। अगर आप कहे तो मैं आपको पुन लौटा ले चलूँ और सडक तक पहुँचा आऊँ।"

किन्तु जीवन भर अगारो के पथ पर साहसपूर्वक चलने वाला यात्री वापिस कैसे लौटता ? भगवती ने कहा—

"नही भाई ! अब वापिस लोटना और लम्बा मार्ग तय करना हमारे लिये सम्भव नही है। तुम हमे इस पहाडी पर से जाने वाला ही कोई मार्ग बताओ।"

यह सुनकर कुछ क्षणो तक वह पहाडी चिन्तापूर्वक सोचता रह गया। अन्त मे बोला—

"अच्छी बात है। मैं चलता हूँ। चढना कठिन अवश्य है पर असम्भव नही। आप घबराएँ नही और मेरे पीछे-पीछे आने का प्रयत्न करें। पर सबको अपने दोनो हाथ खाली रखने होगे। कृपया अपनी सब चीजे आप किसी तरह अपनी पीठ पर बाँध ले।" यही किया गया। सबने अपने वस्त्र और थैले पीठ पर बाँध लिये।

जानकी के पास कुछ नहीं था। उसका सामान ठाकुर लिये चल रहा था। वह खाली हाथ थी। किन्तु मारे घबराहट के उस ठण्डे वातावरण मे भी उसके चेहरे पर पसीने की बूँदे झलक रही थी। यह देखकर अर्चनाकुमारी ने स्नेहसिक्त स्वर से पूछा—

"क्यो डर लग रहा है क्या ?"

"डर तो नही लग रहा भगवती ! पर सोचती हूँ, चढेंगे कैसे इस पहाड पर ?" जानकी ने धीमे स्वर मे उत्तर दिया।

"डरो नही ! मै तो हूँ तुम्हारे साथ। इस तरह घबराओगी तो पहाड कैसे उलाघा जाएगा ? आओ चले !"

भगवती के शब्दो ने जानकी के हृदय मे साहस का सचार किया और वह उनके साथ आगे वढी। दोनो हाथो और पैरो के सहारे सब सावधानीपूर्वक ऊपर की ओर चढने लगे। कही-कही तो पेट के वल सर्प की तरह रेंगकर चढाई चढनी पडती थी। कोई भी एक-दूसरे की ओर ध्यान नही दे सकता था। कही पर चिकनी चट्टाने थी और कही गीली मिट्टी जिसके कारण शरीर और वस्त्र चितकवरे हुए जा रहे थे। वीच-वीच मे अत्यन्त कँटीली झाडियाँ उगी हुई थीं, और वे हथेलियो, पेट और पैरो को जख्मी कर रही थी। किन्तु भगवती के अद्भुत साहस और उनके द्वारा दिलाये जाने वाले ढाढस के कारण सबने करीव साढे सात हजार फीट की उस चढाई को आखिर पार कर ही लिया। 'एक के वाद एक सभी पहाड के शिखर पर पहुँचकर चैन की सास लेने लगे। कमजोर मन और कमजोर शरीर वाली जानकी को अर्चनाकुमारी ने अपने आगे कर लिया था। वे कदम-कदम पर उसे धैर्य वंधाती जा रही थी।

आखिर सब चढ चुके। तव भी विश्राम करने का समय नही था। जितना चढे थे उतना ही पुन उतरना था। और उतरना भी कैसा ? जैसे मौत के अथाह गर्त की ओर जाना हो। उम एकदम सीधे उतार पर कोई जरा-सा चूक जाए तो फिर उसकी हड्डी-पसली का लाख खोजने पर भी पता न चले। नीचे की ओर दृष्टि जाने मात्र से ही आंखे चक्कर खा जाती थी। पर उतरना तो था ही। अर्चनाकुमारी ने सवको साहस वँधाया—

"घवराने की वात नही है। इष्टदेव का स्मरण करते हुए सव सावधानी से उतरो ! कुछ भी नही होगा।"

सुनकर सव तुरन्त ही उतरने के प्रयास मे लग गये। पर

जानकी खडी रही। उसकी हिम्मत उतरने की नही हो रही थी। नीचे की ओर देख-देखकर उसका दिल बैठा जा रहा था।

अर्चनाकुमारी ने यह देखा तो मुस्कुराती हुई उसके पास आकर बोली—

"क्या सोच रही हो जानकी ? उतरना नही है अब ?"

"कैसे उतरूँ ? मुझसे तो नही बनता।"

"तो फिर यही बैठो। मैं नीचे जाकर गाँव के कुछ आदमियो को भेज देती हूँ। वे तुम्हे उठाकर ले जाएँगे।"

"नही, नही, आप मुझे छोडकर मत जाइये !" कहती हुई जानकी ने मारे डर और घबराहट के भगवती को दोनो हाथो मे कसकर पकड लिया। काँपती हुई बोली—

"मैं अकेली नही रह सकूँगी।"

"अकेली नही रह सकोगी और चल भी नही सकोगी ? तब क्या करोगी ? मै तो तुम्हे उठाकर ले चल नही सकूँगी !" अर्चना-कुमारी ने परिहास का चिह्न अपने चेहरे तक नही आने दिया।

जानकी दुविधा मे पड गई। वह क्या करे, समझ नही पा रही थी। एम० ए० तक की सारी पढाई इस समय काम नही आ रही थी। उसका भोला मन भगवती के परिहास को भी नही समझ सका और भय तथा दुख के कारण उसकी आँखो मे आँसू आ गये।

यह देखकर अर्चनाकुमारी ने परिहास तुरन्त समाप्त किया और वात्सल्य से उसकी ठोडी ऊँची करते हुए कहा—

"तुम तो सचमुच ही बहुत भोली हो जानकी ! क्या मैं तुम्हे छोडकर जा सकती हूँ ? पर देखो, इन्ही कठिनाइयो की आशका से

कारण मैंने तुम्हे ऊधमपुर से वापिस लौट जाने के लिये कहा था। तुम नाराज हो गई थी। कहती थी—"मैं बच्ची नही हूँ। मेरे दोनो पैर भी सही-सलामत है।" फिर अब चलती क्यो नही हो इन पैरो से?"

"मैं क्या जानती थी कि आप मुझे ऐसे पहाड पर चढाएँगी।"

पर भगवती ने मानो इन शब्दो को सुना ही नही। अचानक ही जानकी का हाथ पकडकर उसे घसीटते हुए कहा—

"जानकी! जल्दी चलो, नही तो लगता है, हम किसी विपत्ति मे पड जाएँगे। मेरा हाथ पकड लो और जल्दी उतरना शुरू करो। चलो जल्दी . . . ।" ऐसा लगा मानो कोई अदृश्य भगवती के कानो मे कुछ कह गया।

सुनकर जानकी बिना एक भी शब्द बोले, अर्चनाकुमारी के हाथ का सहारा लेकर धीरे-धीरे उतरने लगी। पर तलहटी तक पहुँचने मे कुछ ही कदम शेष रहे होगे कि बर्फीला तूफान चलना शुरू हो गया। सब जल्दी-जल्दी उतर कर आगे बढे पर मुश्किल से एक फर्लांग ही चल पाये होगे कि तूफान ने भयकर रूप धारण कर लिया। हाथ को हाथ नही सूझ रहा था। आगे बढना असम्भव देख-कर सब एक स्थान पर बैठ गये और इष्टदेव का स्मरण करने लगे। जानकी का मन घबराहट के कारण भगवान को स्मरण करने मे भी नही लगा। पहले तो वह भगवती की ओर टुकर-टुकर देखती रही और फिर तूफान के और भी तेज हो जाने पर उन्ही के निकट सरक कर दुबक गई।

दस-पन्द्रह मिनिट इसी अवस्था मे बीते, और फिर तूफान कम हुआ देखकर अर्चनाकुमारी ने सबको उठकर चलने का आदेश दिया।

किन्तु ज्योंही वे रवाना हुए कि एक तीव्र धमाके की आवाज से चौंक पड़े। हरहराकर लुढ़कते हुए पत्थरों की आवाज से दिशाएँ गूंज उठी थीं। सबकी विस्मित दृष्टि एक साथ पीछे की ओर घूमी और देखा, जिस पहाड़ी को वे अभी-अभी उलाँघ कर आये हैं उसका एक बड़ा भारी हिस्सा गिर गया है और उस पर से पत्थर लुढ़क-लुढ़क कर तलहटी में गिर रहे हैं।

जानकी का हृदय काँप उठा। पलक झपकते ही उसे पहाड़ी पर कहा हुआ भगवती का कथन याद आ गया—'जानकी जल्दी चलो अन्यथा हम किसी विपत्ति में पड़ जाएँगे।' अत्यन्त चकित होकर अर्चनाकुमारी के दोनों हाथ झकझोरते हुए वह पूछ बैठी—

"आपको कैसे मालूम हो रहा था कि हम पर कोई विपत्ति आ सकती है ?"

"यह तो मुझे भी मालूम नहीं जानकी, बस मन को ऐसा लगा था और वही मैंने तुमसे कह दिया। पर अब वक्त बर्बाद मत करो, चलो ! हमें वनिहाल पहुँचकर ही दम लेना है।"

भगवती की आज्ञा का तुरन्त पालन हुआ और मृत्यु-मार्ग से बाल-बाल बचे हुए सब यात्री हँसते-गाते चल दिये। अब मार्ग में कोई कठिनाई नहीं थी और वनिहाल पास ही था। सब समय रहते ही गाँव में पहुँच गये।

झुण्ड के झुण्ड ग्रामीण आर्याओं के समीप आ इकट्ठे हुए। वे असीम श्रद्धा सहित प्रणाम करने लगे। सबके हृदयों में विस्मय और हर्ष का अद्भुत मिश्रण था। रात्रि को सत्संग हुआ, भगवती ने [illegible] उपदेश दिया। सहज तरीके से बताई गई

वातो को उन व्यक्तियो ने समझा, और कई ने उसी समय खडे होकर जीव हिंसा, तथा मदिरा पान करने का त्याग कर दिया।

अर्चनाकुमारी को यह देखकर वडा आश्चर्य हुआ। उन्होने अनुभव किया कि एक तरफ तो शहरो के शिक्षित व्यक्ति है, जो वार-वार समझाने पर भी मांस, मदिरा, जूआ और अन्य दुर्गुण किसी मूल्य पर भी नही छोड पाते, और दूसरी तरफ ये ग्रामीण है जो असस्कृत और अशिक्षित है, महज ही इन दोषो को वुरा मानकर त्याग देते है। अल्पकालिक सत्सग से भी जव इन पर इतना प्रभाव पडता है तो साधु-सन्तो का अधिक समागम मिलने पर इनकी आत्मा कचन क्यो नही वन सकती !

उपदेश सुनते हुए बीच मे ही एक व्यक्ति खडा होकर पूछने लगा—

"महादेवी ! हमारे इन छोटे से गांव मे कोई मन्दिर नही है। साधु-सन्त भी यहाँ कभी नही आते। फिर हम धर्म कैसे कर सकते है ?

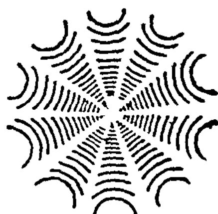
विचारो की इस सहज अभिव्यक्ति पर भगवती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा—

"भाई ! धर्म करने के लिये मन्दिर जाना या साधु-सन्तो के पास पहुँचना अनिवार्य नही है। धर्म का स्थान हृदय मे है। हृदय मे सद्गुणो की स्थापना करना तथा मन, वाणी या शरीर के किसी भी व्यवहार से किसी अन्य प्राणी के मन को दुख न पहुँचाना ही सच्चा धर्म है। इन प्रकार तुम जहाँ भी रहो, घर मे, वाजार मे, खेत मे या अन्य किसी भी स्थान मे, सहज ही धर्म का पालन कर सकते हो।"

"सचमुच भगवती ? क्या हम इस तरह धर्म कर सकते हैं ?" उस व्यक्ति के नेत्र खुशी से चमक उठे।

"हाँ, धर्म का यही स्वरूप है। मन की पवित्रता और निर्मलता ही सबसे बड़ा धर्म है। वही व्यक्ति धर्मात्मा है जो किसी दूसरे के मन को चोट नहीं पहुँचाता।"

"आप धन्य हैं भगवती !" कहता हुआ वह व्यक्ति अपने स्थान पर बैठ गया और उसके कुछ देर बाद ही सत्संग समाप्त हुआ। 



५२

पीर पंचाल के पहाड़ों में

समय की कमी के कारण अगले दिन ही बनिहाल छोड देना पडा। 'मगर कोट' तथा बनिहाल के खूनी नालो को पार करते हुए भगवती का काफिला तीसरे दिन 'पीर-पचाल' के पथ पर पहुँचा। जम्मू से जब भगवती रवाना हुई थी, लोगो ने सबसे ज्यादा भय 'पीर-पचाल' की चढाई का बताया था। लोग इसे 'माउन्ट-एवरेस्ट' की चढाई कहते थे।

चारो ओर गगनचुम्बी हिमाच्छादित शिखर थे। प्रकृति मानो श्वेत परिधान मे लिपटी हुई अपना अनन्त सौन्दर्य सँजोए खडी थी। प्रकृति मुस्करा रही थी किन्तु उसकी गोद मे अनेक प्राणी कराह रहे थे। अगणित ट्रक बिलबिलाते हुए भेड-बकरियो को लिये चले जा रहे थे, जिन्हे कुछ घटो या कुछ दिनो बाद ही मनुष्यो के उदर मे चला जाना था। भारत के स्वर्ग काश्मीर मे मास स्वर्गीय भोज्य-पदार्थ माना जाता था। शायद इसीलिये बहुत कम व्यक्ति उससे अछूते रहते है। पर उस स्वर्ग मे बेजबान पशु ही नही, रोने-कराहने वाले मनुष्यो की भी कमी नही थी। अनेक अभागे व्यक्तियो की करुण कहानियाँ भगवती ने सुनी, जिससे मालूम हुआ कि इस प्रदेश मे प्रतिवर्ष उनके अनेक प्रियजन, असह्य शीत के कारण या असीम सौन्दर्य बिखेरने वाले इस बर्फ मे दब जाने के कारण मर जाते हैं।

और इनमे वच गए तो खूनी नालो की भेंट चढते हैं। इस प्रकार उनका जीवन हमेशा दुःख और उदासी के सागर मे डूबा रहता है।

इसके अलावा काश्मीर के मुसलमानो की एक 'हापो' जाति के करुण-हृदय भी सामने आ रहे थे। प्रकृति ने उनके शरीरो को तो अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया था किन्तु उन्हे ढकने के लिए वस्त्र और उदर-पूर्ति के लिए भोजन प्रदान करने की चिन्ता नही की थी। न पेट भर रोटी, और न तन ढकने को पूरे वस्त्र। ऐसा अनोखा स्वर्ग अर्चनाकुमारी के मन को व्यथित कर रहा था।

ऐसी ही अन्यमनस्कता मे डूबी हुई भगवती 'पीर पचाल' की उस घुमावदार चढाई पर चल रही थी। मन की उद्विग्नता के कारण मार्ग की ओर उनका विशेष ध्यान नही था। सहसा ही एक मोड के उस ओर से हॉर्न की आवाज आई और चलने वाले शीघ्रता से सडक के दूसरी ओर हो गए। पर विचारमग्न भगवती ने शायद हॉर्न की आवाज नही सुनी। वे चलती रही। चक्करदार रास्ते मे एक मोड से दूसरी ओर का फासला चद गजो का ही मुश्किल से होता है। वे दो-तीन कदम भी नही चल पाई होगी कि एक विशाल वस उनकी ओर ही आती हुई दिखाई दी। क्षणमात्र मे ही क्या हो सकता है, इसकी कल्पना करके सब चीख पडे। पर कुछ पलो मे ही यह स्थिति इस प्रकार सामने आई थी कि चीखने-चिल्लाने के अलावा कोई कुछ नही कर सका। सबके प्राण आँखो मे आगए और मारे भय के आँखें मुँद सी गई।

पर अगले ही क्षण सबने देखा, भगवती शांति से खडी हैं और उनसे करीब बालिश्त भर की दूरी पर ही वस खडी है। सिक्ख ड्राइवर कूदकर नीचे आ गया है और घबराकर कह रहा है—

"[illegible] जाता महाराज जी! क्या आपने हॉर्न की

आवाज नही सुनी थी ? वह तो कहिये, न जाने कैसे मुझसे बस रुक गई ! नही तो ऐसे ढाल पर रुकना असभव हो जाता है। आपको चोट तो नही आई ? मुझे क्षमा करे।'

"नही, मुझे जरा भी चोट नही आई, और फिर तुम्हारी क्या गलती थी भाई ! मैने ही तो हॉर्न की आवाज पर ध्यान नही दिया।"

आश्वस्त होकर ड्राइवर ने भगवती के पैरो के पास की रज को मस्तक पर चढाया और वस पर चढा। घर्र-घर्र करती हुई वस आँखो से ओझल हो गई।

अव अर्चनाकुमारी ने अपने चारो ओर दृष्टि फैलाई। देखा, सब सहमे हुए खडे है। सूर्यकुमारी और कनककुमारी के नेत्र भरे हुए है। जानकी तो उनकी श्वेत चद्दर के कोने को अँगुली से लपेटे हुए थर-थर काँप रही है। यह देखकर उन्होने हँसते हुए कहा—

"अरे, सब घवरा क्यो रही हो ?"

"घवराहट कैसे न हो भगवती ! कैसा सकट टल गया आज, नही तो ।" सूर्यकुमारी ने अस्फुट स्वर से कहा।

"तो अब तो टल चुका न सकट ? इसी खुशी मे जल्दी-जल्दी कदम बढाओ ! बडी कठिन चढाई पार करनी है अभी। और जानकी ! तुम क्या यह मेरी चादर का छोर पकडे बच्चो की तरह रो रही हो ! चलो जल्दी-जल्दी !"

जानकी के दिमाग मे से अभी तक भय का भूत निकला नही था ! बिना उचित-अनुचित का ध्यान किये रोती हुई बोल पडी—

"आपको क्या दिखाई नही देता था भगवती ?"

उसके शब्द-चयन और बोलने के ढग पर भगवती खिलखिला कर हँस पडी।

"नाराज मत होओ जानकी ! अब ध्यान रखूंगी ?" कहकर उसे साथ लिये वे आगे बढ चली ।

बिना जरा भी विराम लिये लगातार चलकर आखिर सब लोगो ने 'एवरेस्ट' कही जाने वाली उस चढाई को पार कर ही लिया। पर उसके बाद जब दो मील लम्बी बनिहाल की सुरग (नेहरूटण्डल) आई तो फिर कठिनाई पैदा हो गई। सुरग घोर अन्धकार मे व्याप्त थी। किन्तु उसमे थोडी-थोडी दूर पर बिजली के बल्ब लगे हुए थे। बिना विशेष आज्ञा के कोई उसमे जा नहीं सकता था। बहुत-सा चक्कर और चढाई से बचने के लिये भगवती ने उसे ही पार करने का निश्चय किया, और वहाँ के अधिकारी से इस विषय मे बात की। उसने कहा—"आजकल सुरग मे कुछ काम चल रहा है, इस कारण अन्दर खतरा है। इसके अतिरिक्त आधा घण्टे मे यहाँ से ट्रेफिक चालू होने वाला है। अगर कोई अप्रिय घटना हो जाए तो इसके लिये मैं जिम्मेदार नही हूँ।"

अर्चनाकुमारी का हृदय वज्र की सी दृढता और आत्मविश्वास से कूट-कूटकर भरा हुआ था। वे कब किसी खतरे की परवाह करने वाली थी ? उन्होने सुरग अधिकारी को सब जिम्मेदारियो से मुक्त करके भीतर की ओर पैर बढाए। पर चार कदम चलते ही जानकी घबरा गई और भगवती का हाथ पकडकर बोली—

"सडक के रास्ते से ही चलिये न भगवती !"

"क्यो ?"

"इस अन्धेरे मे कैसे चला जाएगा ? कोई पत्थर-वत्थर गिर पडा तो ?"

"अरे, पहाड गिरा था तब भी हमारा कुछ नही बिगडा तो फिर पत्थर से क्या होगा ? इसके अलावा अगर तुम इस प्रकार

कदम-कदम पर डरोगी तो मैं तुम्हे 'वेरी नाग' चलकर वापिस भेज दूंगी।" देर होती देखकर अर्चनाकुमारी ने उसे झूठी धमकी दी।

"हाँ, भेज क्यो नही देगी! मेरा साथ रहना तो आपको बुरा ही लगता है।" जानकी रुँआसी हो गई।

"साथ रहना बुरा नही लगता, पर तुम्हारा हर समय घबराना बुरा लगता है। तुम्ही बताओ अगर हम इस प्रकार जरा-जरा-सी परेशानियो से डरते रहे तो यह लम्बी यात्रा कैसे पूरी कर पाएँगे?"

"दो मील लम्बी, ऊबड-खाबड और अन्धेरी सुरग पार करना कम परेशानी है?"

"जानकी! बातो मे समय बरबाद मत करो। फुर्ती से चलो। हमे सिर्फ आधा घण्टे मे इसे पार कर लेना है।" कहते हुए भगवती भयभीत जानकी को हाथ पकडकर घसीट ले चली। ठाकुर आगे चल रहा था। सुरग मे जगह-जगह ऊपर से पानी झर रहा था अत कीचड ही कीचड हो गया था। नुकीले पत्थर पैरो को क्षत-विक्षत कर रहे थे। इस सबके अलावा बडी भारी कठिनाई तब आई, जबकि बीच-बीच मे बिजली फेल हुई। किन्तु तब भी चलने वालो के कदम कही नही रुके और दो मील लम्बी वह सुरग सिर्फ चौबीस मिनिट मे ही पार हो गई।

सुरग से बाहर आते ही सबने चैन की सास ली और कुछ देर बैठकर विश्राम किया। कीचड, पानी और मिट्टी से लथपथ वस्त्रो और शरीरो की दशा उस समय देखते ही बनती थी। फिर भी सबके चेहरे खुशी के मारे चमक रहे थे। चढाई खतम हो गई थी और अब भयकर उतार सामने था। पर चढाई के समय जो घुटने नही टिके वे उतार पर कब टिकने वाले थे।

'पीर पचाल' के उत्तुंग शिखरो से मूक विदाई लेकर काफिला चल दिया। थके हुए सभी थे, पर जानकी की हालत सबसे ज्यादा खराब थी। अर्चनाकुमारी उसका हाथ पकडे अत्यन्त स्नेह से उसे अपने साथ लिए चल रही थी। प्रकृति का अनन्त और अनुपम सौन्दर्य मार्ग की बहुत कुछ थकावट मिटाता जा रहा था। रास्ते मे वेरीनाग का चश्मा आया। कहा जाता है कि उसे सम्राट जहाँगीर ने बनवाया था। चश्मे पर आकर कुछ देर ठहरने का लोभ किसी से नही छोडा गया। अपने-अपने आसन बिछाकर कुछ देर सब वहाँ बैठे, और जब अपने को कुछ तरोताजा समझने लगे तो फिर उठकर जो चले तो वेरीनाग पहुँचकर ही दम लिया।

रात को यद्यपि शरीर पूर्ण विश्राम चाहता था, किन्तु भगवती के आगमन का समाचार पाकर वहाँ के व्यक्ति तथा बहुत से सैनिक जवानो के जत्थे आ पहुँचे और भगवती से उपदेश देने का आग्रह करने लगे। अत अत्यन्त थकी हुई होने के बावजूद भी भगवती ने उन्हे धर्म का स्वरूप तथा जैनत्व का सक्षिप्त परिचय दिया।

अगले दिन की यात्रा 'अनन्त नाग' की ओर थी। मार्ग मे लार्कपुर गांव आया। यह गाँव मुसलमानो का था। सडक के किनारे पर ही छोटा-सा स्कूल था। उसके हैडमास्टर अजीनखा ने भगवती को अपनी शिष्याओ सहित सडक पर जाते देखा तो वह दौडा हुआ आया और भगवती से कुछ समय वहाँ ठहरने का आग्रह करने लगा। यद्यपि लार्कपुर मे ठहरने का विचार अर्चनाकुमारी का नही था किन्तु अजीनखाँ का आगह देखकर उन्होने उस दिन वहाँ ठहरने का निश्चय किया।

भगवती के पहुँचते ही अजीनखाँ ने स्कूल की छुट्टी कर दी और गाँव मे मुनादी करवा दी कि रात को आर्या अर्चनाकुमारी का

प्रवचन होगा। शाम होते ही सारे गाँव के स्त्री-पुरुष आकर स्कूल के वाहर मैदान मे बैठ गए और वडी आतुरता से प्रवचन शुरू होने की प्रतीक्षा करने लगे। उपस्थित व्यक्तियो मे दस-वारह हिन्दू स्त्री-पुरुषो के अतिरिक्त शेष सब मुसलमान थे।

मुसलमान होने पर भी उन लोगो की साधु-सन्तो के दर्शनो की उत्कण्ठा तथा उपदेश सुनने की व्यग्रता देखकर अर्चनाकुमारी विस्मित हो गई। एक हिन्दू से उन्होने पूछा—

"क्यो भाई! मुसमलानो के इस गाँव मे तुम दस-पाँच हिन्दुओ को रहने मे भय नही लगता? कभी दगा-फसाद हो जाए तो?"

"नही भगवती! इस गाँव मे रहने मे भय नही लगता। भय इस गाँव को छोड देने की कल्पना से लगता है। हम लार्कपुर मे पीढी-दर-पीढियो से रहते चले आ रहे है। डर तो दूर की वात है हमे तो यह भी महसूस नही होता कि हम लोगो मे जातिभेद है। खान-पान के अलावा चौवीस घण्टो मे हमारा कोई कार्य-कलाप ऐसा नही होता जिसमे हमे अलगाव मालूम पडे। किसी भी प्रकार की मुसीवत मे ये मुसलमान सगे भाई की तरह हमारी सहायता करते है। कभी कोई विदेशी या अजनवी आकर अगर हमारी वहू-वेटी की ओर निगाह टेढी करे तो हमसे पहले ये उसकी आँख निकाल लेने को तैयार हो जाते है। एक घर की वेटी या वहू सारे गाँव की वेटी और वहू मानी जाती है।"

"गाँव के मुखिया यही स्कूल के हैडमास्टर अजीनखाँ है। इनके लिए जैसा मुसलमान है वैसा ही हिन्दू। कोई फर्क नही है। ये वालको को जिस तरह हजरत मोहम्मद की कथा सुनाते है उसी

प्रकार राम और कृष्ण की भी सुनाया करते हैं।" कहते-कहते उस व्यक्ति की आंखों में कृतज्ञता और प्रेम के आंसू छलक आए।

अर्चनाकुमारी यह सब सुनकर दग रह गई और सोचने लगी—'काश्मीर में अगर स्वर्ग है तो वह यहीं, सिर्फ इसी स्थान पर।' यही सोचते-सोचते वे उठीं और प्रवचन का समय हुआ देखकर स्कूल के बरामदे मे आकर तख्त पर बैठी। उनके बाहर आते ही उन मुसलमानो ने 'भगवती की जय' के नारों से उस स्थान को गुंजा दिया जिन्हें जम्मू के व्यक्ति खतरनाक कहा करते थे। वातावरण शान्त होने पर अर्चनाकुमारी ने अपने प्रवचन मे उस दिन मानवता के विषय मे बताना शुरू किया। उन्होंने कहा—

"मानवता का सबसे बडा तकाजा या इन्सान का सबसे पहला धर्म यही है कि वह प्रत्येक प्राणी पर रहम करे। सकट मे पडे हुए प्राणी को उससे मुक्त करने का प्रयत्न करे। किसी भी जीव को न सताए और सबको समान-दृष्टि से देखे। अहिंसा के महत्त्व को समझाते हुए उन्होंने इस्लाम धर्म के महान उपासक मौलाना रूमी के विचार बताए—

हजार कुंजे इबादत, हजार गजे करम,
हजार ताइद शब्ह, हजार बेदारी।
हजार सिजदाबहर, सिजदा हजार नमाज,
कबूल नेस्त मर ताइद ब्याजारी।

अर्थात् "मानव! यदि तू हजारो लोगो के साथ बैठकर प्रार्थना करता है, हजारो रुपया देकर अपना खजाना खाली करता है, भक्ति के साथ खुदा का गुण-गान करने मे हजारो रातें पूरी कर देता है, हजार सिजदे और प्रत्येक सिजदे के साथ नमाज पढता है, किन्तु

इस कठिन साधना के बावजूद भी अगर तू किसी प्राणी के प्राण हरण करता है तो खुदा के दरबार मे तेरी एक भी इबादत मन्जूर नही की जाएगी।" भगवती कहती गई—

"वास्तव मे खुदा की सच्ची इबादत यही है कि मानव प्रत्येक अन्य प्राणी की रक्षा करे। किसी को कष्ट न पहुँचाए। मानव-मानव मे प्यार-मुहब्बत और विश्वास का व्यवहार हो। यही मानवता है और मानव का पहला धर्म है। सच्चा इन्सान वही है जो इन्सानियत सीख ले। 'प्रेम और अहिंसा' को अपना ले। महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद और गुरुनानक आदि सभी धर्म-प्रवर्तको ने इसी को सच्चा धर्म बताया है।"

प्रवचन ज्योही समाप्त हुआ, वाह, वाह, की ध्वनियाँ गूँज उठी। अनेक मुसलमानो ने मास खाने का, परस्त्रीगमन का, या जैसा जिससे हो सका त्याग किया। स्त्रियो मे तो अधिकाश ने अण्डे, मांस व मदिरा का त्याग कर दिया।

लार्कपुर मे ठहरने का कार्य-क्रम तो भगवती का था ही नही, सिर्फ अजीनखाँ के आग्रह से एक दिन ठहरना तय किया था। किन्तु उनके प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पडा कि सारे गाँव के लोग उन्हे और रुकने का आग्रह करने लगे। परिणामस्वरूप भगवती दो दिन और वहा ठहरी। अजीनखाँ ने उनके प्रत्येक दिन के प्रवचन का उर्दू, अग्रेजी और काश्मीरी भाषा मे अनुवाद किया।

लार्कपुर से चलते समय स्त्री-पुरुषो की भाव-भरी विदाई ग्रहण करते हुए अर्चनाकुमारी का हृदय भर आया। उन्हे लगा-काश, सारे भारत के हिन्दू और मुसलमान लार्कपुर के हिन्दू और मुसलमानो जैसे होते।



५ ३

स्वर्ग या नरक ?



लार्कपुर छोडने के वाद भगवती अर्चनाकुमारी अनन्तनाग और अवन्तीपुर होती हुई पम्पापुर आई। श्रीनगर वहाँ से आठ मील रह गया था।

जिस दिन उन्हे श्रीनगर पहुँचना था, उसके प्रात काल ही श्रीनगर के अनेक प्रमुख व्यक्ति तथा विद्वान् पडित भगवती के स्वागतार्थ पम्पापुर आ पहुँचे। सवने अपार खुशी और श्रद्धा से आर्याओ के दर्शन किये तथा गद्गद् होते हुए कहा—

"आपका स्वागत है भगवती! आज का दिन काश्मीर और श्रीनगर के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अकित करने योग्य है। इस भूमि ने आज प्रथम वार जैन साध्वियो के पावन चरणो का स्पर्श किया है। मुसीवत और कठिनाइयो से भरे हुए इस प्रदेश मे पद-यात्रा करने का साहस विरले ही कर सकते है। कभी कोई साध्वी इन कठिनाइयो को पार करके इधर रुख कर सकेगी, यह हमने स्वप्न मे भी नही सोचा था। आज आप-सी महामहिम और परमविदुषी आर्या को अपने वीच पाकर हम कृतार्थ हुए हैं।"

"इस प्रकार मुझे शर्मिन्दा मत कीजिये वन्धुवर! दृढ इच्छा-शक्ति के साथ किया जाने पर ससार मे कोई भी कार्य असम्भव नही रहता। हमने भी इधर आने का अडिग निश्चय कर लिया था। फिर

सफलता क्यो नही मिलती ?" अर्चनाकुमारी ने अपनी प्रशसा से अत्यन्त सकुचित होते हुए कहा। तत्पश्चात् उन्होने पम्पापुर से प्रस्थान कर दिया।

श्रीनगर ज्यो-ज्यो पास आता जा रहा था, प्रकृति अपने सौन्दर्य को उत्तरोत्तर बढाकर भगवती का अभिनन्दन कर रही थी। एक ओर हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ थी और दूसरी ओर सजग प्रहरियो के समान कतारवन्द चिनार के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। जगह जगह केसर की क्यारियाँ मलयगिरि के समान अपने समीप से बहने वाली हवा को सुगधित वनाती जा रही थी। कही-कही गिरती हुई वफ ऐसी दिखाई देती थी जैसे सुकोमल रुई के गुच्छे आकाश से धीरे धीरे उतरते आ रहे हो। सैकडो प्रकार के पुष्प अपनी प्रदर्शिनी लगाए झूम रहे थे।

आन्तरिक प्रसन्नता लिये भगवती सव लोगो के साथ वढ रही थी। मार्ग मे सैनिको की छावनियाँ आई और उसके वाद आया शकराचार्य का पहाड। कहा जाता है कि इसी पर्वत पर आचार्य शकर ने तप किया था। पहाड के नीचे दुर्गानाग का मन्दिर था। कुछ देर वहाँ रुककर प्रकृति का अवलोकन किया और पुन सव चल पडे। श्रीनगर वहाँ से दो-तीन मील दूर था पर वहाँ के नर-नारी कतार पर कतार वनाकर आर्याओ के दर्शनार्थ चले आ रहे थे। उनकी तृपातुर भावना का अनुभव कर भगवती का हृदय गद्गद हो उठा। काश्मीर के सुरम्य पहाड साध्वियो के स्पर्श से अछूते न रहे। उनका यह स्वप्न भी साकार हो गया। यात्रा का अन्तिम पडाव आ पहुँचा था।

आने वाले स्त्री-पुरुष वावलो के समान अपनी प्रसन्न

प्रकट कर रहे थे। स्त्रियाँ तो आर्याओ के उन नगे पैरो को पकड कर छोडना ही नही चाहती थी, जिन्होंने उघाडे रहकर मीलो लम्बी पर्वतमालाओ को, खतरनाक घाटियो को और स्थान-स्थान पर नुकीले पत्थरो और शूलो से भरे हुए ऊबड-खाबड रास्तो को पार किया था। हर्ष के मारे बहते हुए उनके आँसुओ मे भगवती के चरण भीग गए। उनके पदार्पण से आज काश्मीर के धार्मिक इतिहास मे एक नया अध्याय जुड गया था।

श्रीनगर मे दीवान विष्णुदास जी की कोठी भगवती के ठहरने के लिए नियत की गई थी। वृहत् जनसमुदाय सहित उन्होने उसमे प्रवेश किया। सयोग वश उनके पहुँचने के बाद ही वर्षा शुरू हो गई, अत प्रवचन नित्यकोठी मे ही होता रहा। प्रवचन के समय वहाँ स्त्री-पुरुष समाते नही थे। बरसते हुए पानी और पत्थरो की तरह गिरते हुए ओलो की भी परवाह न कर जनता बरसाती नदी की तरह उमडकर चली आती और अपने भाग्य को सराहती हुई लौटती। पूरे श्रीनगर मे अर्चनाकुमारी के सारगर्भित प्रवचनो की धूम मच गई।

आठ-दस दिन बाद जब वर्षा थमी तो लोगो के अत्यधिक आग्रह पर भगवती को 'रामबन', 'रयणावारी', 'आर्य समाज मन्दिर', 'सनातनधर्म कॉलेज' आदि अन्य अनेक स्थानो पर प्रवचन करने जाना पडा। श्रीनगर के प्रसिद्ध विद्वानो और विचारको से भी समय-समय पर धर्म-चर्चा होती रहती थी। वहाँ के सुप्रसिद्ध निरजनी सन्त नित्यानन्द जी तो भगवती के विचारो से इतने प्रभावित हुए कि प्राय नित्य ही आकर विचारो का आदान-प्रदान करते रहे। परिणाम यह हुआ कि उनकी विद्वत्ता और व्यक्तित्व की महत्ता से प्रभावित होकर जैन और जैनेतर भगवती से श्रीनगर मे वर्षावास करने का आग्रह

करने लगे। किन्तु प्रकृति साथ नही दे सकती थी। कार्तिक से ही वहाँ बर्फ गिरनी शुरू हो जाती और आवागमन बन्द हो जाने के कारण पुन लौटना सम्भव नही होता। अत. अर्चनाकुमारी ने वर्षा-वास करना स्वीकार नही किया।

किन्तु निराश लोगो ने भगवती का वहाँ अधिक रुकना सम्भव न समझकर उनके आगमन की स्मृति को स्थायी रखने के लिए अन्य मार्ग अपनाया। एक वृहत् पुस्तकालय स्थापित करने की योजना बनाई। शीघ्र ही यह योजना कार्यान्वित हो गई और पुस्तकालय के उद्घाटन समारोह का शुभ दिन भी आ गया।

जिस समय भगवती ने 'अर्चना पुस्तकालय' का उद्घाटन किया, समस्त जनसमुदाय मे खुशी की लहर दौड गई। विद्वानो ने भगवती के श्रीनगर-आगमन पर आभार प्रदर्शित किया तथा भविष्य मे पुन दर्शन देने की और 'अर्चना पुस्तकालय' को सम्हालते रहने की प्रार्थना की। अन्त मे भगवती ने कुछ शब्द कहे—

"मेरे श्रीनगर आगमन पर आप लोगो ने जो प्रमोद व्यक्त किया इसके लिये मुझे हार्दिक सन्तोष और प्रसन्नता है। यद्यपि मेरा अधिक रुकना अभी सम्भव नही है, किन्तु आपके इस नवनिर्मित पुस्तकालय के रूप मे मै सदा आप लोगों के बीच मे रहूँगी। पुस्तकालय के अर्चना शब्द को आप सिर्फ मुझे स्मरण करने के लिये ही न समझे वरन् इसके सही अर्थ को भी ग्रहण करे। अर्चना और साधना मे विशेष अन्तर नहीं है। एक ही सिक्के के ये दो पहलू है। अगर आप इसके द्वारा अपनी आत्मा को उत्तरोत्तर उन्नत बना सकेंगे तो आपका यह पुस्तकालय, और इसका 'अर्चना' नाम सार्थक होगा।

हर्षपूर्ण ध्वनि के साथ भगवती ने अपना संक्षिप्त कथन समाप्त किया। शर्मीली जानकी मच के समीप ही चुपचाप बैठी थी। पर

अब तक लोगो ने एक कवयित्री के रूप मे उसका परिचय पा लिया था। अत उसे कविता-पाठ करने के लिये विवश कर दिया।

बचने का मार्ग न होने पर वह उठी और मद्य रचित एक कविता सुनाने लगी—

श्रीनगर के ये सुहाने क्षण, कभी विस्मृत न होगे।
हृदय पट पर हुए अकित, अब कभी ये मृत न होगे।

कविता लम्बी थी और इतने मधुर स्वर तथा लय मे पढी गई थी कि उसके समाप्त हो जाने पर भी कुछ क्षणो तक जनता मुग्ध और नीरव बैठी रही।

आयोजन समाप्त हुआ और समस्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने स्थान के लिये रवाना हुए।

श्रीनगर मे अर्चनाकुमारी ने अनेक विरोधी बातें पाई। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से काश्मीर भारत का स्वर्ग कहलाता है। उसके सौन्दर्य का वर्णन करने मे पुस्तको और अखबारो के अगणित पृष्ठ भी कम पड जाते है। मुगल बादशाहो के बनवाए हुए 'शाली-मार' और 'निशातबाग', शहर के मध्य से बहने वाली झेलम नदी पर बने हुए आठ पुल तथा 'डलझील' जिसमे रग-बिरगी रोशनियो सहित सैकडो 'हाउस बोट' पडी रहती है, आदि सभी स्थान और वस्तुएँ सिर्फ भारत के ही नही, वरन् अन्य देशो के पर्यटको को भी वहाँ खींच लाती है।

दूसरी ओर शहर की गलियाँ अत्यन्त सँकरी और दुर्गन्धयुक्त है। प्रत्येक बाजार मे बिकते हुए अडे, मास और मछलियाँ मन को ग्लानि मे भर देते है। काश्मीरी स्त्री-पुरुष अत्यन्त सुन्दर होते हैं किन्तु तन के सौन्दर्य को उनके गदे वस्त्रो और शरीर की गदगी

दूदर्शन बना देती है। उस काश्मीर मे, जहाँ दुकानदार एक काष्ठ के डिब्बे को, जो मुश्किल से पाँच-सात रुपये का होता है, किसी विदेशी को डेढ हजार रुपये तक मे बेच देता है। उसी काश्मीर और उसकी राजधानी श्रीनगर मे लोग अपनी सुन्दर लडकियो को सिर्फ पाँच रुपये मे हाउस बोटो के लिए बेच देते है जहाँ उन्हे वेश्यावृत्ति करने के लिए विवश होना पडता है। बडे-बडे होटलो मे, जिन्हे व्यभिचार के अड्डे कहा जा सकता है, सैकडो लडकियाँ काम करती है और उन्हे ग्राहक के पेट की ज्वाला बुझाने के साथ-साथ उनकी काम-पिपासा को भी शात करना पड़ता है। भारत के स्वर्ग, काश्मीर के निवासियो को पेट भरने के लिये अन्न और तन ढकने के लिए पूरे वस्त्र भी नसीब नही होते।

गरीबी का यह नग्न रूप देखकर अर्चनाकुमारी का कोमल दिल कराह उठा। अपने प्रवचनो मे उन्होने इसी बात पर अधिक जोर दिया कि मनुष्य भूख बर्दाश्त करले, किन्तु बहन-बेटियो की पवित्रता को बेचकर लाए हुए अन्न से एक वक्त भी पेट न भरे। जहाँ भी और जिस तरह भी अवसर मिला, उन्होने काश्मीरियो के दिलो मे इस प्रकार की रोजी व रोटी पैदा करने के प्रति नफरत पैदा की। जीवन मे जिन्हे कभी भी, पवित्रता क्या है, यह समझने का अवसर नही मिला था, उनके हृदयो मे भी भगवती के शब्दो ने जादू का-सा असर किया और अनेक व्यक्तियो ने भविष्य मे ऐसे घृणित व्यापार न करने का निश्चय किया।



५४

साहब बेचारा ··!

●

श्रीनगर मे कुछ दिन ठहरने के पश्चात् जब मौसम साफ हुआ, अर्चनाकुमारी ने 'हरीपर्वत' तथा 'विचारनाग' होते हुए वैष्णवो के पवित्र तीर्थ खीर-भवानी की यात्रा की। वैसे काश्मीर के प्रत्येक मन्दिर मे मास-मदिरा चढाई जाती है और बलिदान होता है, किन्तु खीर-भवानी का मन्दिर ही एक ऐसा मन्दिर है जहाँ मास-मदिरा का चढना तो दूर, इन्हे सेवन करके आने वाला व्यक्ति भी प्रवेश नही कर सकता। जिस दिन अर्चनाकुमारी वहाँ पहुँची, देखकर दग रह गई कि एक बस यात्रियो से भरी हुई वहाँ आई, पर उनमे से एक वृद्धा ही, जो निरामिष भोजी थी, अन्दर प्रवेश कर सकी। शेष सब यात्री मन्दिर के चारो ओर चक्कर लगाते रहे।

'खीर-भवानी' से लौटते समय 'सरिका देवी' का मन्दिर मिला। जहाँ माँस और मछलियो के अबार चढावे के रूप मे लगे थे और बडे-बडे मटको मे शराब भरी हुई थी। ऐसा लगा जैसे एक देवी है और दूसरी दानवी। खिन्न मन से सब वापिस लौटे और अगले दिन गुलमर्ग की ओर रवाना हुए।

आठ हजार, सात सौ फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ गुलमर्ग अपने असीम सौन्दर्य के कारण रईसो का क्रीडा-स्थल कहलाता है। यह अत्यन्त साफ-सुथरा स्थान है। कही भी गन्दगी नजर नही

आती। भगवती अर्चनाकुमारी को अन्य कोई सुविधाजनक स्थान न मिलने से वहाँ के डाक बँगले मे ठहरना पडा।

डाक बगले से काश्मीर की पूरी घाटी के सौन्दर्य का अवलोकन किया जा सकता था। रजतपट मे ढका हुआ-सा हिमाच्छादित हर-मुखपर्वत, लहराती हुई वुलाझील और उसमे नाचती हुई सूर्य रश्मियाँ अनोखा ही सौन्दर्य प्रदर्शित कर रही थी। किन्तु डाक बँगले मे पहुँचते-पहुँचते दोपहर के बारह बज गए थे और प्रकृति के सौन्दर्य का पान करने से भूख मिट नही सकती थी। अत साथ मे रही हुई बहनें, ठाकुर और ठकुरानी की सहायता से अपने खाने-पीने का आयोजन करने लगी और आर्या सूर्यकुमारी कनक के साथ भिक्षा लाने चली गई।

भगवती बाहर आई और डाक बगले के पास एक शान्त-स्थान पर आसन बिछाकर बैठ गई। जानकी उनके साथ ही थी। उनसे उन्होने अपनी एक पुस्तक लाने के लिये कहा। सुनकर वह उठी और अन्दर की ओर चली, किन्तु कुछ कदम जाते ही वह लौट आई। देखकर भगवती विस्मित हुई और प्रश्नसूचक दृष्टि से उन्होने जानकी की ओर देखा।

"भगवती ! कई अग्रेज बैठे है उधर, मुझे उनके पास से जाना अच्छा नहीं लगता।"

अर्चनाकुमारी उसके भीरु-स्वभाव को जानती थी अत हँस पडी और बोली—

"अच्छी बात है मत जाओ, बैठ जाओ मेरे पास आकर। थोडी देर बाद मेरे साथ चलना।" कहते हुए उन्होने अपने पास के थैले मे से एक डायरी निकाली और उसमे कुछ लिखने लगी। कुछ मिनिटो के बाद ही उनके कानो मे आवाज आई—

"ब्यूटीफुल लेडी ! क्या मैं आने सकटा हूँ ?"

"आइये !" कहते हुए भगवती ने अपनी गौरवपूर्ण निगाहे ऊपर उठाई और आने वाले अंग्रेज की ओर देखा ।

"कहिये क्या बात है ?"

"हम इसी डाक बँगले मे ठहरा है। अबी टुमको देखा, बौत लवली लगा। ऐसा ब्यूटी हमको कही नही पाया। काश्मीर मे बी नई। टुम हमारे साथ इगलैंड चलेगा ?"

अर्चनाकुमारी उसकी मूर्खतापूर्ण बातें सुनकर खिलखिला पडी। बोली—

"क्या कीजियेगा मुझे इगलैंड ले जाकर ?"

"हम बौत अच्छी तरह रखेगा। वहाँ कोई डिफिकल्टी टुमको नही होने सकटा। हमारा बौत बडा कम्पनी है मोटर बनाने का। चलना माँगटा टुम ? बहुट आराम से ले चलेगा एरोप्लेन मे।"

"पर मैं तो साध्वी हूँ, एरोप्लेन मे बैठ नही सकती।"

"साध्वी ? वॉट साध्वी ?"

"साध्वी यानी 'सेन्ट' समझ गए आप ?"

सतेज दृष्टि उसके चेहरे पर जमाते हुए अर्चनाकुमारी ने उत्तर दिया।

"ओह, यू 'सेन्ट' ? टो और कोई बी लेडी चल सकटा।"

"अच्छा ? यह चल सकती है ?" कहते हुए अर्चनाकुमारी ने जानकी की ओर सकेत किया तथा पुन जोर से हँस पडी। जानकी वैसे ही घबरा रही थी, यह सुनकर क्रुद्ध नेत्रो से भगवती की ओर देखने लगी।

"वेरी गुड, शी इज ऑल्सो वडरफुल !" बहुट सुन्दर ! हम इसको गुमाने ले जाना मागटा।"

"घुमाने ? कहाँ ?"

"झील मे वोटिंग का वास्टे ।"

"पर इसने अभी खाना नही खाया, भूखी है ।"

"खाना भी उदर खिलायेगा हम । आमलेट, चिंकन, फिश और वी अच्चा-अच्चा चीज ड्रिंक वी करायेगा ।"

मारे क्रोध के जानकी की घबराहट हवा हो गई । उसने चीख कर कहा—

"कमीने, कुत्ते ! चले जाओ यहाँ से ।"

कमीने और कुत्ते का अर्थ साहब समझा नही, खुश होकर बोला—

"गुस्सा मे और वी खुबसूरट लगटा । हम जरूर ले जाएगा गुमाने । गुस्सा वी शान्त कर डेगा । ऐसा लेडी हम कही नई देखा ।"

उबलती हुई जानकी उठकर खडी हो गई और मार्ग की ओर इंगित करती हुई गरजी—

"जाते हो या नही ?"

"जाटा, जाटा । मगर फिर आना मागटा आफ्टर सम टाइम । नाउ यू आर इन एगर । अवी टुमको गुस्सा आया । फिर ये नई रएगा विद मी ।"

"विद मी के बच्चे !" इस वार जानकी ने आवेश मे आकर हाथ मे बडा-सा नुकीला पत्थर उठा लिया और फेंकने के करीब ही थी कि अर्चनाकुमारी ने हँसते हुए उसका हाथ पकड लिया और साहब से कहा—

"मिस्टर, बहुत हो गया । अब जाओ यहाँ से ।"

"अच्छा, अच्छा फिर आएगा।" कहता हुआ शरीफों की खाल मे लिपटा हुआ शैतान चल दिया। पर उसके पीठ फेरते ही जानकी अर्चनाकुमारी के सिर हो गई—

"यह क्या मजाक है भगवती! आपने क्यों किया ऐसा? क्यों किया बताइये?"

"पर तुम बैठो तो सही।" हँसमुख चेहरे से अर्चनाकुमारी ने उसे हाथ पकड़कर बैठाना चाहा, पर वह बैठी नही और नाराज होकर बोली—

"नही, नही बैठूंगी। पहले आप बताइये! क्यों ऐसा मजाक किया आपने?"

"अरे, मै तो तुम्हारी कायरता भगाना चाहती थी। बिल्ली के बच्चे की तरह हर समय मेरे पीछे-पीछे घूमती रहती हो। आज मौका मिला तो जरा तुम्हारी परीक्षा ले ली।"

"वाह रे, आपकी परीक्षा! मेरी जान निकल गई जो कुछ नहीं?"

"नही, तुम्हारी बहादुरी का परिचय मिल गया कि कभी ऐसा अवसर आ जाए तो तुम किसी भी दुष्ट व्यक्ति को अच्छी-अच्छी गालियाँ दे सकती हो और पत्थर से उसका सिर भी फोड़ सकती हो।" अर्चनाकुमारी ने जानकी को हँसाना चाहा, पर वह गुम होकर बैठी रही। यह देखकर उन्होंने बात का रुख मोड़ा—

"अच्छा अब खाना खाओ चलकर, भूख लगी होगी।"

"नही, मैं आज कुछ नही खाऊँगी।"

"तो क्या साहब के साथ घूमने जाओगी वहाँ बढ़िया-बढ़िया

खाना खाओगी ? आमलेट, चिकन, फिश ।" और फिर उस बंदर की शकल जैसे साहब का ध्यान आते ही अर्चनाकुमारी जोर से हँस पड़ी।

"भगवती आज हो क्या गया है आपको ? जो जी मे आता है वही कहे जा रही है, बस करिये।" कहती हुई जानकी ने उनके मुंह पर अपना हाथ रख दिया।

"हुआ तो कुछ नही जानकी ! आज बचपन याद आ गया। उस समय मैं बहुत शैतान थी। हर समय किसी न किसी को चिढ़ाने या परेशान करने की उधेड़-बुन मे रहती थी। हर सुबह मुहल्ले वाले ही नही, गांव वाले भी मेरी किसी न किसी नई करामात को देखने की प्रतीक्षा करने लगते थे। बहुत बड़ी होने तक भी मेरी वह आदत मिटी नही थी। लगता है, बरसो बाद आज थोड़ा-सा बचपन लौट आया।"

"अपने बचपन की बाते बताइये न भगवती ?" जानकी ने अर्चनाकुमारी की गोद मे अपनी दोनो कोहनियाँ टिकाते हुए आग्रह किया। उसका क्रोध गायब हो चुका था।

"फिर कभी कहूँगी। आज काफी देर हो चुकी है। अब चलो ! अन्दर चले।"

आज्ञाकारी शिशु की भांति जानकी उठ खड़ी हुई, पर कुछ याद आते ही पूछ बैठी—"भगवती ! कही वह वापिस आ गया तो ?"

"कौन ?" भूतकाल मे विचरण करती हुई अर्चनाकुमारी ने अन्यमनस्कतापूर्वक बिना विशेष ध्यान दिये पूछा।

"वही नजर, जो अभी आया था।"

ओह, भगवती हँस पड़ी—"वह तो अब नही आएगा।" क्षितिज की ओर दृष्टि जमाए हुए ही उन्होंने उत्तर दिया।

सुनकर जानकी बुरी तरह चौंक पडी—"यह कैसे जाना आपने भगवती ? क्या उधर आकाश मे लिखा है यह ? जल्दी बताइये !"

"पगली ! कही आकाश मे भी कुछ लिखा हुआ होता है ?"

"तब फिर कैसे कहा आपने ? वह तो फिर आने को कह गया था।"

"हाँ, कह तो गया था, पर आएगा कैसे बेचारा ?" अर्चनाकुमारी ने खिन्न और उदास होते हुए उसी भावपूर्ण स्वर से कहा।

जानकी भगवती की बातो मे उलझी हुई दिग्मूढ की तरह चली आई। किन्तु उसका भय समाप्त नही हुआ। अगले दिन जब सुबह होते ही उसने डाक बगले के उस कमरे मे, जिसमे वह अग्रेज ठहरा था, काफी हल चल देखी डॉक्टर को भी आते देखा तब उसका कुतूहल बढ गया।

बँगले के एक बैरे से उसने पूछ लिया—"यह डॉक्टर किसलिये आया है ?"

"कल रात साहब ज्यादा शराब पीकर मोटर चला रहा था अत एक्सीडेंट हो गया बहन जी ! दिमाग मे चोट आई है। अभी बेहोश पडा है।" कहता हुआ बैरा शीघ्रता से चला गया। पर जानकी भगवती की पिछले दिन की बातो का स्मरण कर विस्मय से हतबुद्धि की तरह वही खडी रह गई। कुछ क्षणो बाद ही वह तेजी से, लगभग दौडती हुई सी भगवती के समीप आकर बोली—

"भगवती ! कल वाला अंग्रेज साहव मोटर चलाते हुए एक्सीडेंट का शिकार हो गया । कैसे हुआ यह ?"

"कैसे क्या ? तुम्ही तो कह रही हो कि मोटर चलाते हुए हुआ ।"

"हां, मोटर चलाते हुए तो हुआ पर पर कुछ समझ मे ही नही आता ! आप समझाती क्यो नही ?"

"अपनी आत्मा की शक्ति को जगाओ जानकी ! धीरे-धीरे सव समझ मे आने लगेगा । अभी तो इतना ही समझ लो, कि कर्मफल सवको भोगने पडते है । कभी जल्दी और कभी देर से ।" □



५५

उत्तुंग शिखर से प्रेरणा



गुलमर्ग की अनुपम और नयनाभिराम सुषमा को देखकर पुन श्रीनगर होते हुए भगवती ने 'पहलगाँव' की ओर प्रस्थान किया। 'पहलगाँव' समुद्र की सतह से करीब सात हजार फीट की ऊँचाई पर लिद्दर घाटी के मध्य बसा हुआ अत्यन्त सुरम्य और सुन्दरतम स्थान है। जिधर भी दृष्टि उठती है, प्रकृति का अवर्णनीय सौन्दर्य दृष्टि-गोचर होता है।

पहलगाँव मे अत्यधिक वर्फ गिरती है। वर्ष मे तीन-चार महीने मौसम कुछ साफ रहता है। बाकी आठ-नौ महीनो तक पूरा पर्वत वर्फ से ढँका रहता है। जिन दिनो मौसम ठीक होता है उन तीन-चार महीनो मे ही यहाँ के निवासी अपनी दुकाने लगाकर या अन्य कोई काम करके पैसा इकट्ठा करते है और शेष नौ महीने घर मे बैठकर खाते हैं।

'हाथो' जाति के लोग यहाँ अधिक रहते हैं। इनका पहनावा बडा अजीब होता है। औरते केवल एक फिरन ही पहनती है, जो योगी-महात्माओ के चोगे जैसा बना हुआ होता है। इस जाति के व्यक्तियो के शरीर और वस्त्र अत्यन्त मैले और दुर्गन्ध पूर्ण होते है। नहाते तो ये छ महीने मे सिर्फ एक बार ही है। इनका कथन है, कि अगर वे इससे पहले स्नान करले तो बीमार पड जाते है। इसके

अलावा अत्यधिक शीत के कारण इन्हे हर समय एक अगीठी, जिसे 'कागडी' कहते हैं, अपनी छाती के पास रखनी पडती है। शरीर का वह भाग जलकर काला पड जाता है।

अर्चनाकुमारी जब पहलगांव पहुँची दिन के तीन बज चुके थे। एक साफ-सुथरे छोटे से मकान मे इन्हे ठहरने को स्थान मिल गया। कमरा एक ही था, पर बाहर का बरामदा काफी बडा और एक कमरा जितना सुविधाजनक था। सब भूखे थे। जल्दी ही भोजन से निवृत्त होकर बाहर बरामदे मे आकर प्रकृति का अवलोकन करने लगे। दो-तीन मकान पडौस मे और थे, जिनके बाहर कुछ लोग आपस मे जोर-जोर से बोल रहे थे। तू-तू मैं-मै के बाद उन्होने अपनी भाषा मे गालियाँ देना शुरु किया और उसके बाद हाथापाई की नौबत आ गई। झगडा भयानक रूप से बढा और लगा कि अभी दो-चार व्यक्तियो के सिर फूटेंगे या हाथ-पैर टूट जाएँगे। किन्तु उसी समय सध्या होने के साथ ही एक व्यक्ति ने आकर उन सब घरो के सामने रखी हुई दो-तीन टोकरियाँ उलटकर रख दी।

अत्यन्त विस्मय के साथ अर्चनाकुमारी तथा उनके सभी सह-यात्रियो ने देखा कि टोकरियो के उलटते ही झगडा एकदम शान्त हो गया, जैसे ठण्डे पानी के छीटे देते ही दूध का उफान। पाँच-सात मिनट बाद ही वे सब, जो एक दूसरे का सिर फोडने को तैयार थे, एक दूसरे का हाथ पकडे गोल घेरा बनाकर नाचने और गाने लग गये।

इस विचित्र घटना के विषय मे पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ प्रत्येक घर के बाहर बांस की बनी एक टोकरी रखी रहती है। सुबह उसे सीधी करके रख देते है और शाम को उलटी। जब तक वह

सीधी पडी रहती है, लोग आपस मे जितना चाहे झगड सकते है, पर टोकरी को उलटते ही सारा सघर्ष समाप्त हो जाता है। लडाई का कोई भी चिन्ह वाकी नही रहता।

इस विचित्र रिवाज के पीछे रही हुई ग्रामीणो की सरलता भगवती को अत्यन्त भली लगी। कितना कम कषाय होता है उन लोगो के दिलो मे। साधारणतया मनुष्य किसी से झगड बैठता है तो उससे पैदा हुआ वैर-विरोध वर्षो तक, और कभी-कभी तो जीवन के अन्त तक भी चलता रहता है। लाख मिटाने का प्रयत्न करने पर भी मेल नही होता। किन्तु विना पढे-लिखे उन ग्रामीणो के हृदयो मे से टोकरी उलटते ही सारा क्रोध-कषाय छू-मन्तर हो जाता है। कितनी सरल और भोली आत्मा है इनकी !

यही विचार भगवती के मस्तिष्क मे घूम रहे थे कि रात्रि के आठ वज गये। लोग नाचना-गाना वन्द करके भगवती के समीप आ, उनसे उपदेश देने का आग्रह करने लगे। उनमे हिन्दू कम थे, मुसलमान अधिक। एक सरीखी लगन और उत्साह से सवने भगवती की वताई हुई वातें सुनी और पुन जाकर नाच-गान मे मशगूल हो गये।

अगला दिन 'चन्दनवाडी' जाने के लिये नियत किया गया था। प्रात काल होते ही सवने जाने की तैयारी शुरू कर दी। चन्दनवाडी जाने का मार्ग विकट था और अधिकतर यात्री वहां घोडो से जाया करते थे। भगवती अर्चनाकुमारी भी सिर्फ अपनी शिष्याओ सहित ठाकुर को साथ लेकर पैदल जाने वाली थी और वाकी सभी का घोडो पर जाने का कार्यक्रम था। किन्तु जानकी मानी नही और वह भगवती के साथ पैदल ही चली। वाकी सभी स्त्रियां घोडो पर रवाना हो गईं।

सारा रास्ता नदी की एक सकरी घाटी मे से था। कही ऊँचा और कही नीचा। कही कच्ची सडक और कही पथरीली पगडडियाँ पैरो को वार-वार आघात पहुँचा रही थी। किन्तु मार्ग के दोनो ओर देवदास के वृक्ष और सौन्दर्य लुटाते हुए श्री-युक्त पहाड मार्ग की थकावट और कष्ट को तनिक भी महसूस नही होने देते थे। दोपहर तक सव लोग समुद्र की सतह से करीव नौ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित चन्दनवाडी पहुँच गये। घोडो पर जाने वाली महिलाएँ काफी देर पहले ही वहाँ पहुँच चुकी थी और भगवती के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। हर्ष-पूर्वक सवने पैदल आने वाले यात्रियो का स्वागत किया।

चन्दनवाडी मे विशेष चहल-पहल नही थी। एक-दो चाय की छोटी-छोटी दुकाने और एक-दो वैसे ही होटल वहाँ थे। प्राकृतिक दृश्य वहाँ का अत्यन्त मनोरम था। चारो ओर विछे हुए वर्फ पर निगाह हटाने को इच्छा नही होती थी। एक ओर 'शेपनाग' नाला चट्टानो से टकराता हुआ, और सम्पूर्ण वातावरण को अपनी ध्वनि से मुखरित करता हुआ तीव्रगति से वह रहा था तथा दूसरी ओर एक और नाला—जिसे 'खूनी नाला' कहा जाता है, शेपनाग से मिलने के लिये उछलता हुआ प्रवाहित हो रहा था। यद्यपि काश्मीर मे प्राकृतिक सौन्दर्य जगह-जगह विखरा पडा है, किन्तु चन्दनवाडी तो उसका खजाना ही है, ऐसा लगता था। वहाँ का अनूठा सौन्दर्य यात्रियो को मुग्ध किये विना नही रहता।

चन्दनवाडी की यात्रा करने वाले यात्री प्राय: भोर मे वहाँ जाकर साझ तक पुन पहलगाव लौट आया करते है। वहाँ ठहरने के लिये कोई सुविधाजनक स्थान नही है। इसके अलावा अत्यधिक ऊँचाई पर होने के कारण शीत का सवसे अधिक प्रकोप भी वही

पाया जाता है। किन्तु भगवती को आर्याओ सहित ग्यारह मील पैदल चलकर आना पडा था और शाम तक पुन इतना ही चलकर पहलगांव पहुँचना सम्भव नही था, अत एक दुकानदार से कहकर थोडा-सा स्थान उन्होंने प्राप्त किया। पर उस थोडी-सी जगह मे रात्रि को सब नही रह सकते थे, और घोडे भी साथ थे। अत भगवती ने सब स्त्रियो को शाम को पहलगांव लौट जाने का आदेश दिया। जानकी से कहा—

"तुम भी इन लोगो के साथ लौट जाओ जानकी!"

"नही भगवती!"

"नही भगवती क्या ? यहाँ कैसे रहोगी ?"

"जैसे आप रहेगी।"

"पर हम तो चाहे जितनी सर्दी हो, बर्दास्त कर लेते हैं, तुम से नही होगी।"

"नही होगी तो न सही।" जानकी ने सक्षिप्त उत्तर दिया।

"कहना सरल है पर रात होगी तब पता चलेगा! फिर क्या होगा ?"

"अब यह मैं क्या जानूं कि क्या होगा ?"

"यह क्या उलटी-सीधी बाते कर रही हो ?" भगवती नाराज हुई।

"उलटी बात मैं कर रही हूँ या आप भगवती ? आप जानती है कि मै आपको छोडकर एक कदम भी नही जाऊँगी। फिर क्यो बार-बार जाने को कह रही है ? जानकी ने अर्चनाकुमारी की सफेद चद्दर के छोर को अपनी अँगुली पर लपेटते हुए उत्तर दिया।

"और यात्रा समाप्त होने पर अपने घर जाओगी तब ?" अर्चनाकुमारी ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"जाना ही किसको है जो फिक्र की जाए।" जानकी ने गम्भीरता और दृढता से कहा।

"क्या कहा, जाओगी नही?" भगवती ने चकित होकर पूछा।

"नही।"

"तब क्या करोगी ?"

"आत्मा का कल्याण करूँगी।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यही कि मैं आपसे दीक्षा लूँगी, साध्वी बनूँगी।"

"भावुकता के प्रवाह मे बहकर कोई बात कहना कुछ अर्थ नही रखता जानकी! तुम जैसी हो, ठीक हो। साधु के प्रति स्नेह होने से ही साधु हो जाना चाहिये, यह शिक्षा तुम्हे किसने दी ?"

"किसी ने नही। मैं इसलिये साध्वी नही बनना चाहती भगवती कि मुझे आपसे स्नेह है। हाँ, अब तक इतना अवश्य समझ लिया है कि किसी अनन्त सुख और शातिमय लोक मे जाने के लिये अगर कोई मार्ग है तो वह सयम का ही। साधु जीवन अधिक से अधिक त्याग और अनासक्त भावो से भरा हुआ जीवन है और ऐसा जीवन बिताकर ही आत्मा इस ससार मे बार-बार जन्म लेने और बार-बार मरने के दुखो से बच सकती है।"

"यह सब सही है, पर सचमुच ही अगर तुम्हारी भावना विरक्तिमय है तो फिर दीक्षा ग्रहण कर मेरे पास रहने का आग्रह क्यो ?"

"मैं वहुत कमजोर हूँ भगवती ! आप तो जानती हैं कि एक साधारण मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति भी सुगमता से रास्ता काटने के लिये कोई साथी खोजता है। फिर साधना के इस कठिन राजमार्ग पर चलने के लिये अगर मैने किसी अत्यन्त सशक्त और महान आत्मा की खोज की, और उसके साथ चलना चाहा तो यह गलत हुआ क्या ? मुझे विश्वास है कि आपका सहारा पाकर मैं इस कठिनतम पथ पर चल सकूँगी। कभी मेरे कदम लडखडा गए तो आप मुझे सम्हाल लेगी।"

"यह ठीक है जानकी ! पर तुम जानती तो हो कि साधु जीवन कितना कष्टप्रद है। अनेको बार निर्दोष आहार न मिलने पर फाके करने पडते है, असह्य शीत और ताप सहन करना पडता है, कटकाकीर्ण मार्ग पर भी नगे पैर चलना होता है। तुम तो अभी दो कदम भी विना चप्पलो के ।"

भगवती अपनी वात पूरी भी न कर पाई थी कि उनकी विस्मित दृष्टि ने देखा कि जानकी ने अपनी दोनो चप्पले उछालकर कई सौ फीट गहरे गड्ढे की ओर फेंक दी है। वे हैरान होकर वोली—

"यह क्या किया ?"

"नये जीवन का प्रारम्भ।"

"तुम्हारी सभी वाते अनोखी होती है जानकी ! कोई भी गम्भीर काम ऐसी जल्दवाजी मे नही उठाया जाता।"

"यह तो इच्छाशक्ति पर निर्भर है भगवती ! इच्छाशक्ति निर्वल होने पर सरल कदम भी जल्द नही उठाया जाता और उसके

सबल होने पर कठिन से कठिन कदम भी मनुष्य क्षणमात्र मे उठा सकता है।"

"पर तुम्हारे माता-पिता, स्वजन परिजन क्या कहेगे ? एक बार तुम उनके पास जाओ तो सही !"

"मुझे एक बात बताइये भगवती ! आज अगर मेरा हार्टफेल हो जाए या कि इस पर्वतीय प्रदेश की यात्रा मे मेरा पैर फिसल जाए तो हजारो फीट नीचे लुटकने से पहले मैं माता-पिता से मिलने का समय पा सकूंगी ? क्या इसी समय उनसे मेरा इहलौकिक नाता समाप्त नही हो जाएगा ? माता-पिता के लिये मेरे हृदय मे अपार श्रद्धा और आदर है। किन्तु इस नश्वर-शरीर से तो उनका सम्बन्ध सिर्फ इसी जन्म का है। अत. मैं जन्म-जन्म के दुखो से छुटकारा पाने का प्रयत्न करने मे विलम्ब क्यो करूँ ?"

"मेरी समझ मे तो कुछ भी नही आता जानकी। मैं क्या कहूँ ?"

"कहने की आवश्यकता ही क्या है भगवती ? अब तक आपने मेरे निर्बल मन और ऐसे ही शरीर को देखा है अत मेरी बातें आपकी समझ मे नही आती, विश्वास भी नही होता होगा। किन्तु मेरी समझ मे अब तक कुछ आ गया है और ससार की अनेकानेक दूषित मनोवृत्तियो से हजारो फीट ऊपर प्रकृति की यह पावन और प्रेरणा-प्रद भूमि चदनवाडी इसकी साक्षी है। आज आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।" कहते हुए जानकी ने झुककर भगवती अर्चनाकुमारी के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया।

"यह क्या जानकी ! इस प्रकार निर्जन मे ...।"

"मैं समझ गई भगवती ! समाज की साक्षी से होने वाला

समारोह आप जब इच्छा हो कर लीजियेगा। पर मेरी भाव-दीक्षा तो आज हो चुकी। महिमामयी भगवती गिरिजाकुमारी जिस समय साधना के शिखर पर थी, आपसे उनका सहारा लेकर इस पथ पर चलना प्रारम्भ किया था। और आज जब कि आप इस पर्वतीय प्रदेश की ऊँचाई के समान ही आत्मोत्कर्ष की ऊँचाई पर है, मैं आपके सहारे से इस अग्नि-पथ पर चलना आरम्भ कर रही हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये।"

अगणित मानव हृदयो मे गौरवपूर्ण स्थान, उच्च स्थान प्राप्त परम यशस्विनी भगवती अर्चनाकुमारी भावनाओ के वेग मे बह चली। बिना कुछ कहे उन्होने शात-भाव से जानकी के झुके हुए मस्तक पर अपना वरदहस्त रख दिया। □

